केशव-ग्रंथावली

सम्पादक

विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

[खंड १]

हिंदुस्तानी एकेडेमी
उत्तरप्रदेश इलाहाबाद

केशव - ग्रंथावली

खंड २

(रामचंद्रिका, छंदमाला और शिखनख)

संपादक

श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र

हिंदी विभाग, काशी विश्वविद्यालय

हिन्दुस्तानी एकेडेमी

इलाहाबाद

तीसरे संस्करण का प्रकाशकीय वक्तव्य

'केशव-ग्रन्थावली' का तीसरा संस्करण पाठकों को उपलब्ध कराते हुए हमें गहरे सन्तोष और प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। जैसा कि प्रो० धीरेन्द्र वर्मा जी ने प्रथम संस्करण की भूमिका में कहा है, 'केशव-ग्रन्थावली' एक असाधारण कृति है जिसे केशवदास जी की अनेक उपलब्ध और प्राचीन-दुष्प्राप्य प्रतियों के आधार पर तैयार किया गया है।

पिछले दो संस्करणों का उपयोग व्यापक स्तर पर हुआ है, विशेषकर विश्वविद्यालयों में। हमें विश्वास है कि यह पुस्तक आगे भी पाठकों के लिए उतनी ही उपयोगी सिद्ध होगी।

अक्टूबर, १९९६
हिन्दुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद

रामकमल राय
(अध्यक्ष)

प्रकाशकीय

हिन्दुस्तानी एकेडेमी की एक योजना रही है कि हिन्दी के प्रमुख कवियों की समस्त रचनाओं के ऐसे संस्करण प्रकाशित किये जाएँ जिनके पाठ यथासंभव प्रामाणिक तथा सुसंपादित हों। इस योजना के अन्तर्गत एकेडेमी से 'जायसी-ग्रन्थावली' तथा 'तुलसी-ग्रन्थावली' (खंड १) का प्रकाशन हो चुका है। अब 'केशव-ग्रंथावली' इस क्रम की नई कड़ी के रूप में पाठकों के समक्ष है।

'केशव-ग्रंथावली' का संपादन अधिकारी विद्वान् श्री विश्वनाथ मिश्र ने अनेक नई और पुरानी छपी तथा हस्तलिखित पोथियों के आधार पर किया है जिसमें 'रसिकप्रिया', 'कविप्रिया', 'रामचंद्रचंद्रिका', 'छंदमाला', 'शिखनख', 'रतनबावनी', 'वीरसिंहदेवचरित', 'जहाँगीरजसचंद्रिका' तथा 'विज्ञानगीता' ये नौ रचनाएँ सम्मिलित हैं। पूरी ग्रंथावली के तीन खण्डों में प्रकाशन का आयोजन है। प्रथम खंड में केशव की दो रचनाएँ 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' प्रस्तुत की जा चुकी हैं। इस द्वितीय खंड में उनकी तीन रचनाएँ 'रामचंद्रचंद्रिका', 'छंदमाला' और 'शिखनख' प्रस्तुत हैं! 'छंदमाला' और 'शिखनख' दो ऐसी रचनाएँ हैं जिनका अभी तक हिंदी साहित्य-जगत् को कोई ज्ञान नहीं था।

आचार्य और कवि केशवदास हिंदी की विभूति हैं। दुःख है कि अभी तक इनके ग्रंथों का सुसंपादित संस्करण प्रकाश में नहीं आ सका था। आशा है प्रस्तुत ग्रंथावली के संपूर्ण होने पर हिंदी के एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति होगी।

धीरेंद्र वर्मा
(मंत्री तथा कोषाध्यक्ष)

हिंदुस्तानी एकेडेमी,
उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद
अप्रैल, १९५५

दूसरे संस्करण का प्रकाशकीय

हिन्दी के अधिकारी विद्वान् आचार्य श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र के इस ग्रंथ "केशव-ग्रंथावली" का दूसरा संस्करण प्रकाशित करते हुए हमें प्रसन्नता हो रही है। हिन्दुस्तानी एकेडेमी ने इस ग्रंथ का पहला संस्करण सन् १९५५ में प्रकाशित किया था।

यह ग्रंथ कई विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में निर्धारित है। विश्वास है यह संस्करण भी विद्वज्जनों, विद्यार्थियों और सुधी पाठकों के बीच समादृत होगा।

मई, १९७८
हिन्दुस्तानी एकेडेमी,
इलाहाबाद-२११००१

उमाशंकर शुक्ल
(सचिव तथा कोषाध्यक्ष)

ग्रंथ-सूची

संकेत

रामचंद्रचंद्रिका

दीन० १ — 'दीन' (लाला भगवानदीन) के संग्रह का प्राचीन हस्तलेख, लिपिकाल सं० १८३४।

दीन० २ — दीनजी के संग्रह का दूसरा हस्तलेख, लिपिकाल अज्ञात।

दीन० — दीन० १, दीन० २।

प्रताप० — प्रतापगढ़ से प्राप्त हस्तलेख, लिपिकाल सं० १८६६।

काशि० — काशिराज के सरस्वतीभंडार का हस्तलेख, लिपिकाल सं० १८८२।

सर० — सरस्वतीभंडार का दूसरा हस्तलेख, लिपिकाल सं० १८८८।

प्रकाशिका — प्रकाशिका टीका, श्रीजानकी प्रसादजी की, सं० १९७२ में लिखित।

कौमुदी — केशव-कौमुदी टीका, लाला भगवानदीनजी कृत।

अन्यत्र — अन्य संग्रहादि के हस्तलेख।

छंदमाला

[श्री वर्द्धमान जैन ग्रंथालय का हस्तलेख, लिपिकाल सं० १८३६]

चंद्रिका —रामचंद्रचंद्रिका।

शिखनख

बाल — बालकृष्णदासजी (ग्रंथस्वामी) का हस्लेख, सं० १७२४।

सुधा० — सुधासार संग्रह, नवीन कवि द्वारा संगृहीत।

अभय० — अभय जैन भांडार (बीकानेर) का हस्तलेख, लिपिकाल सं० १७५१।

वही — पूर्वगामी संकेत।

ष — ख।

\+ — हस्लेख में संशोधित पाठ।

÷ — हस्तलेख में मूल पाठ।

ग्रंथ-सूची

संकेत

रामचंद्रचंद्रिका

दीन० १—'दीन' (लाला भगवानदीन) के संग्रह का प्राचीन हस्तलेख, लिपिकाल सं० १८३४।

दीन २—दीनजी के संग्रह का दूसरा हस्तलेख, लिपिकाल अज्ञात।

दीन०—दीन० १, दीन० २।

प्रताप०—प्रतापगढ़ से प्राप्त हस्तलेख, लिपिकाल सं० १८६६।

काशि०—काशिराज के सरस्वतीभंडार का हस्तलेख, लिपिकाल सं० १८८२।

सर०—सरस्वतीभंडार का दूसरा हस्तलेख, लिपिकाल सं० १८८८।

प्रकाशिका—प्रकाशिका टीका, श्रीजानकीप्रसादजी की, सं० १८७२ में लिखित।

कौमुदी—केशव-कौमुदी टीका, लाला भगवानदीनजी कृत।

अन्यत्र—अन्य संग्रहादि के हस्तलेख।

छंदमाला

[श्री वर्द्धमान जैन ग्रंथालय का हस्तलेख, लिपिकाल सं० १८३६]

चंद्रिका—रामचंद्रचंद्रिका।

शिखनख

बाल०—बालकृष्णदासजी (ग्रंथस्वामी) का हस्तलेख, सं० १७२४।

सुधा०—सुधासर संग्रह, नवीन कबि द्वारा संगृहीत।

अभय०—अभय जैन भांडार (बीकानेर) का हस्तलेख, लिपिकाल सं० १७५१।

वही—पूर्वगामी संकेत।

ष—ख।

+—हस्तलेख में संशोधित पाठ।

रामचंद्रचंद्रिका

१

(दंडक)

बालक मृनालनि ज्यों तोरि डारै सब काल कठिन कराल त्यों अकाल दीह दुख कों।
बिपति हरत हठि पद्मिनी के पात सम पंक ज्यों पताल पेलि पठवै कलुष कों।
दूरि कै कलंक-अंक भव-सीस-ससि सम राखत है 'केसोदास' दास के बपुष कों।
साँकरे की साँकरनि सनमुख होत तोरै दसमुख मुख जोवैं गजमुख मुख कों ॥१॥
बानी जगरानी की उदारता बखानी जाइ ऐसी मति उदित उदार कौन की भई।
देवता प्रसिद्ध सिद्ध रिषिराज तपबृद्ध कहि कहि हारे सब कहि न काहू लई।
भावी भूत वर्तमान जगत बखानत है 'केसोदास' क्यों हू ना बखानी काहू पै गई।
पति बर्नैं चारमुख पूत बर्नैं पाँचमुख नाती बर्नैं षटमुख तदपि नई नई ॥२॥
पूरन पुरान अरु पुरुष पुरान परिपूरन बतावैं न बतावैं और उक्ति कों।
दरसन देत जिन्हैं दरसन समुझैं न नेति नेति कहैं बेद छाँडि भेद-जुक्ति कों।
जानि यह 'केसोदास' अनुदिन राम राम रढ़त रहत न डरत पुनरुक्ति कों।
रूप देहि अनिमाहि गुन देहि गरिमाहि नाम देहि महिमाहि भक्ति देहि मुक्ति कों ॥३॥

(सुगीत)

सनाढ्य जाति गुनाढ्य है जगसिद्ध सुद्ध सुभाउ।
कृस्नदत्त प्रसिद्ध हैं जहँ मिश्र पंडितराउ।
गनेस सो सुत पाइयो बुध कासिनाथ अगाध।
असेष सास्त्र विचारियो जिन जानियो मत साधु ॥४॥

(दोहा)

उपज्यो तिनके मंदमति सुत कवि 'केसवदास'।
रामचंद्र की चंद्रिका भाषा करी प्रकास ॥५॥
सोरह सै अट्ठावना कातिक सुदि बुधवार।
रामचंद्र की चंद्रिका तब लीनो अवतार ॥६॥
बालमीकि मुनि स्वप्न में दीनो दरसन चारु।
'केसव' यह तिनसों कह्यो क्यों पाऊँ सुखसारु ॥७॥

---

[१] त्यों—वै (काशि०)। राखत—देखत (दीन० २)। मुख—जगु (काशि०)। [२] उदित—केसव (दीन० २); कहो धौं (कौमुदी)। काहू०—काहू पै गई (दीन० २); केहूँ लई (कौमुदी)। [३] भेद—भ्रान (कौमुदी)। रढ़त—रटत (प्रकाशिका, कौमुदी); कहत (दीन० २)। [४] जहँ—महि (प्रकाशिका, कौमुदी)। [५] तिनके—तेहि कुल (प्रकाशिका, कौमुदी)। सुत सठ (कौमुदी)। करो—कियो (दीन० १)। [६] लीनो—कीनो (दीन० १)।

मुनि—(श्री)—सिद्धि । रिद्धि ॥८॥
(सार)—और नाम । कौन काम ॥९॥
राम नाम । सत्य धाम ॥१०॥
'केसव'—(रमण)—दुख क्यों टरिहै ।
मुनि—हरि जू हरिहै ॥११॥
मुनि—(तरणिजा) बरनिबो बरन सो । जगत को सरन सो ॥१२॥
(प्रिया)—सुखकंद हैं रघुनंदजू । जग यों कहै जगबंद जू ॥१३॥
(सोमराजी)—गुनौ एक रूपी, सुनो बेद गावैं । महादेव जाकों,सदा चित्त लावैं॥१४॥
(कुमारललिता)—बिरंचि गुन देखै । गिरा गुननि लेखै ।
अनंत मुख गावै । बिसेषहि न पावै ॥१५॥
मुनि (नगस्वरूपिणी)—भलो बुरो न तू गुनै । बृथा कथा कहै सुनै ।
न रामदेव गाइहै । न देवलोक पाइहै ॥१६॥

(षट्पद)

बोलि न बोल्यो बोल दयो फिर ताहि न दीनो ।
मारि न मारचो सत्रु क्रोध मन बृथा न कीनो ।
जुरि न मुरे संग्राम लोक की लीक न लोपी ।
दान सत्य सनमान सुजस दिसि बिदिसनि ओपी ।
मन लोभ मोह मद काम बस भयो न 'केसवदास' भनि ।
(सोइ) परब्रह्म श्रीराम हैं अवतारी अवतारमनि ॥१७॥

(दोहा)

मुनिपति यह उपदेस दै जबहीं भए अदस्ट ।
'केसवदास' तहीं करचो रामचंद्रजू इस्ट ॥१८॥

(गाहा)

रामचंद्र पदपद्मं वृंदारकवृंदाभिवंदनीयम् ।
केशवमतिभूतनयालोचनं चंचरीकायते ॥१९॥

(चतुष्पदी)

जिनको जसहंसा, जगतप्रसंसा, मुनिजनमानसरंता ।
लोचन-अनुरूपनि स्यामसरूपनि अंजनअंजित संता ।
कालत्रयदरसी निर्गुन-परसी होत विलंब न लागै ।
तिनके गुन कहिहौं सब सुख लहिहौं पाप पुरातन भागै ॥२०॥

(दोहा)

जागति जाकी ज्योति जग एकरूप स्वच्छंद ।
रामचंद्र की चंद्रिका बरनत हौं बहु छंद ॥२१॥

---

[८] यह छंद कई हस्तलेखों में नहीं है । [१०] इसके अनंतर 'प्रताप०' में यह छंद अधिक है—(मधु) हरिहरु–चित धरु । [१२] बरन–धरन (दीन० २) । [१७] संग्राम–रन माह (दीन० १) । [२०] जन–मन (प्रताप०) । पुरातन–पुरातम (दीन०) ।

(रोला)

सुभ सूरज-कुल-कलस नृपति दसरथ भए भूपति।
तिनके सुत सुनि चारि चतुर चितचारु चारुमति।
रामचंद्र भुवचंद्र भरत भारत-भुव-भूषन।
लछिमन अरु सत्रुघ्न दीह दानव-दल-दूषन ॥२२॥

(घत्ता)

सरजू-सरिता-तट नगर बसै बर, अवध नाम जसधाम धर।
अघओघबिनासी सब पुरबासी, अमरलोक मानहुँ नगर ॥२३॥

(षट्पद)

गाधिराज को पुत्र साधि सब सत्रु मित्र बल।
दान-कृपान-बिधान बस्य कीनो भुवमंडल।
कै मन अपने हाथ जीति जग इंद्रियगन अति।
तपबल याही देह भए क्षत्रिय तें रिषिपति।
तिहि पुर प्रसिद्ध 'केसव' सुमति काल अतीतागतति गुनि।
तहं अद्भुत गति पगु धारियो बिस्वामित्र पवित्र मुनि ॥२४॥

(पद्धटिका)

मुनि आए सरजू-सरित-तीर। तहँ देखे उज्जल अमल नीर।
नव निरखि निरखि दुति गति गभीर। कुछ बरनन लागे सुमति धीर ॥२५॥
अति निपट कुटिल गति जदपि आप। बहु देति सुद्ध गति छुवत आप।
कछु आपुन अध अध गति चलंति। फल पतितन कौं ऊरध फलंति ॥२६॥
मदमत्त जदपि मातंग संग। अति तदपि पतितपावन तरंग।
बहु न्हाइ न्हाइ जिहि जल सनेह। चलि जात स्वर्ग सूकर सदेह ॥२७॥

(नवपदी)

जहँ तहँ लसत महा मदमत्त। बर बानर बार न दल दत्त।
अंग अंग चरचे अति चंदन। मुंडन भुरके देखिय बंदन ॥२८॥

(दोहा)

दीह दीह दिग्गजन के 'केसव' मनहुँ कुमार।
दीन्हे राजा दसरथहिं दिगपालन उपहार ॥२९॥

(अरिल्ल)

देखि बाग अनुराग उपज्जिय। बोलत कल ध्वनि कोकिल सज्जिय।
राजति रति की सखी सुवेषनि। मनहुँ बहति मनमथ-संदेसनि ॥३०॥

---

[२२] भए–भुव (प्रताप०, काशि०)। सुनि–सुभ (दीन० २); भए (कौमुदी)। [२५] मुनि- पुनि (कौमुदी)। [२७] चलि–सब (सर०); सोइ (काशि०)। [२८] बर–बल (दीन०,)। भुरके०–देखि अभ्रक बर (दीन० २, काशि०)। [३०] बहति–कहति (दीन०, सर०)।

फूलि फूलि तरु फूल बढ़ावत। मोदत महामोद उपजावत।
उड़त पराग न चित्त उड़ावत। भ्रमर भ्रमत नहिं जीव भ्रमावत ॥३१॥

(पादाकुलक)

सुभ सर सोभै। मुनि-मन लोभै। सरसिज फूले। अलि रसभूले ॥३२॥
जलचर डोलैं। बहु खग बोलैं। बरनि न जाहीं। उर उरझाहीं ॥३३॥

(चतुष्पदी)

देखी बनवारी चंचल भारी तदपि तपोधन मानी।
अति तपमय लेखी गृहथित पेखी जगत दिगंबर जानी।
जग जदपि दिगंबर पुष्पवती नर निरखि निरखि मन मोहै।
पुनि पुष्पवती तन अति अति पावन गर्भसहित सब सोहै ॥३४॥
पुनि गर्भसँजोगी रतिरसभोगी जगजनलीन कहावै।
गुनि जगजनलीना नगरप्रबीना अति पति के मन भावै।
अति पतिहिं रमावै चित्त भ्रमावै सौतिन प्रेम बढ़ावै।
अब यों दिनरातिन अद्भुत भाँतिन कबिकुल कीरति गावै ॥३५॥

(हाकलिका)

संग लिये रिषि सिष्यन घने, पावक से तपतेजनि सने।
देखत बाग-तड़ागनि भले, देखन औधपुरी कहँ चले ॥३६॥

(मधुभार)

ऊँचे अबास, प्रति ध्वज अकास।
सोभा बिलास, सोभै प्रकास ॥३७॥

(आभीर)

अति सुंदर अति साधु, थिर न रहति पल आधु।
परम तपोमय मानि, दंडधारिनी जानि ॥३८॥

(हरिगीत)

सुभ द्रोन-गिरिगन-सिखर-ऊपर उदित ओषधि सी भनौ।
बहु बायु-बस बारिद बहोरहि अरुझि दामिनि-दुति मनौ।
अति किधौं रुचिर प्रताप पावक प्रगट सुरपुर कों चली।
यह किधौं सरित सुदेस मेरी करी दिवि खेलति भली ॥३९॥

---

[३१] तरु–तन (काशि०); मन (प्रताप०)। [३३] खग–बिधि (दीन०)। [३४] जग–पुनि (प्रताप०); दिन (काशि०)। तन–नर (अन्यत्र)। अति०–०पावन गुन (अन्यत्र)। सब–सुभ (सर०)। [३५] प्रबीना–नवीना (प्रताप०, काशि०)। पति०–पिय के जिय (प्रताप०); पिय कों जिय तें। (काशि०) गुनि–पुनि (अन्यत्र)। अब–सब (वही)। [३६] बाग०–सरिता उपवन (सर०)। [३७] प्रति०–बहु ध्वज प्रकास (प्रकाशिका, कौमुदी)। [३८] परम–सबनि (दीन०, प्रताप०, सर०)। [३९] ऊपर–पर अति (प्रताप०, सर०)। भनौ–गनौ (काशि०)। अति०–किधौं रुचिर चंड (प्रताप०, सर०)। यह–कहि (वही)। सरित०–सरिस सुदेवी मेरु दिवि (प्रताप०); यो सरिता सदेवी मेरु की (सर०)।

(दोहा)

जीति जीति कीरति लई सत्रुन की बहु भाँति।
पुर पर बाँधी सोभिजै मानौ तिनकी पाँति ॥ ४० ॥

(त्रिभंगी)

सम सब घर सौभैं मुनि-मन लोभैं रिपु-गन छोभैं देखि सबै।
बहु दुंदुभि बाजैं जनु घन गाजैं दिग्गज लाजैं सुनत जबै।
जहँ तहँ श्रुति पढ़हीं बिघन न बढ़हीं जय जस मढ़हीं सकल दिसा।
सबई सब बिधि क्षम बसत जथाक्रम देवपुरी सम दिवस निसा ॥ ४१ ॥
कबिकुलबिद्याधर सकल कलाधर राजराज वर बेष बने।
गनपति सुखदायक पसुपति लायक सूर सहायक कौन गनै।
सेनापति बुधजन मंगल गुरुगन धर्मराज मन बुद्धि घनी।
बहु सुभ मनसाकर करुनामय अरु सुरततरंगिनी सोभसनी ॥ ४२ ॥

(हीरक)

पंडितगन मंडितगुन दंडित मति देखियै।
क्षत्रियबर धर्मप्रबर क्रुद्ध समर लेखियै।
बैस्य सहित सत्य रहित पाप प्रगट मानियै।
सूद्र सकति बिप्र भगति जीव जगति जानियै ॥ ४३ ॥

(सिंहबिलोकित)

अति मुनि तन मन तहँ मोहि रह्यो।
कछु बुधि बल बचन न जाइ कह्यो।
पसु पंछि नारि नर निरखि तबै।
दिन रामचंद्र गुन गनत सबै ॥ ४४ ॥

(मरहट्टा)

अति उच्च अगारनि बनी पगारनि जनु चिंतामनि नारि।
बहु सत मखधूपनि धूपित अंगन हरि की सी उनहारि।
चित्री बहु चित्रनि परम बिचित्रनि 'केसवदास' निहारि।
जनु बिस्वरूप की अमल आरसी रची बिरंचि बिचारि ॥ ४५ ॥

(सोरठा)

जग जसवंत बिसाल, राजा दसरथ की पुरी।
चंद्रसहित सब काल, भालथली जनु ईस की ॥ ४६ ॥

---

[४१] सम०—घर घर सुभ (अन्यत्र)। [४२] मनसा०—सुमनसतरु (अन्यत्र)।

(कुंडलिया)

पंडित अति सिगरी पुरी मनहु गिरागति गूढ़।
सिंहचढ़ी जनु चंडिका मोहति मूढ़ अमूढ़।
मोहति मूढ़ अमूढ़ देवसँग दिति ज्यौं सोहै।
सब सिंगार सदेह मनो रति मन्मथ मोहै।
सब सिंगार सदेह सकल सुख सुषमा मंडित।
मनौ सची बिधि रची बिबिध बिधि बरनत पंडित ॥ ४७ ॥

(काव्य)

मूलन ही की जहाँ अधोगति 'केसव' गाइय।
होमहुतासन-धूम नगर एकै मलिनाइय।
दुर्गति दुर्गन ही जु कुटिल गति सरितन ही में।
श्रीफल को अभिलाष प्रगट कबिकुल के जी में ॥ ४८ ॥

(दोहा)

अति चंचल जहँ चलदलै बिधवा बनी न नारि।
मन मोह्यो रिषिराज को अद्भुत रूप निहारि ॥ ४९ ॥

(सोरठा)

नागर नगर अपार, महामोहतम-मित्र से।
तृस्नालता-कुठार लोभसमुद्र - अगस्त्य से ॥ ५० ॥

(दोहा)

बिस्वामित्र पवित्र मुनि 'केसव' बुद्धि उदार।
देखत सोभा नगर की गए राजदरबार ॥ ५१ ॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणि श्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्वि-
रचितायां विश्वामित्रस्याऽयोध्यागमनं नाम प्रथमः प्रकाशः ॥१॥

२

(हंस)

आवत जात, राज के लोग। मूरतिधारी, मानहु भोग ॥ १ ॥

(मालती)

तहँ दरबारी, सब सुखकारी। कृतयुग कैसे, जनु जन बैसे ॥ २ ॥

---

[४७] सिंह०—सिंहनि जुत (अन्यत्र)। ज्यौं—सी (अन्यत्र)। [४८] नगर—इहै (अन्यत्र)। [४९] मन०—मोहि रहे जू (अन्यत्र)।

(दोहा)

महिष मेष मृग बृषभ कहुँ भिरत मल्ल गजराज ।
लरत कहूँ पायक सुभट कहुँ नर्तत नटराज ॥३॥

(समानिका)

देखि देखिकै सभा । बिप्र मोहियो प्रभा ।
राजमंडली लसै । देवलोक कों हँसै ॥४॥

(मदनमल्लिका)

देस देस के नरेस । सोभिजै सबै सुबेस ।
जानियै न आदि अंत । कौन दास कौन संत ॥५॥

(दोहा)

सोभत बैठे तेहि सभा सात द्वीप के भूप ।
तहँ राजा दसरथ लसै देवदेव अनुरूप ॥६॥
देखि तिन्हैं तब दूरि तें गुदरानो प्रतिहार ।
आए बिस्वामित्रजू जनु दूजो करतार ॥७॥
उठि दौरे नृप सुनत ही जाइ गहे तब पाइ ।
लै आए भीतर भवन ज्यौं सुरगुरु सुरराइ ॥८॥

(सोरठा)

सभामध्य बैताल, ताहि समय सो पढ़ि उठ्यो ।
'केसव' बुद्धिबिसाल, सुंदर सूरो भूप सो ॥९॥

वैताल—(घनाक्षरी)

बिधि के समान हैं बिमानीकृतराजहंस बिबिध बिबुधजुत मेरु सो अचलु है ।
दीपति दिपति अति सातो दीप दीपियतु दूसरो दिलीप सो सुदक्षिना को बलु है ।
सागर उजागर की बहु बाहिनी को पति छनदानप्रिय किधौं सूरज अमलु है ।
सब बिधि समरथ राजै राजा दसरथ, भगीरथपथगामी गंगा कैसो जलु है ॥१०॥

(दोहा)

जद्यपि ईंधन जरि गए, अरिगन 'केसवदास' ।
तदपि प्रतापानलनि के, पल पल बढ़त प्रकास ॥११॥

(तोमर)

बहु भाँति पूजि सुराइ । कर जोरिकै परि पाइ ।
हँसिकै कह्यो रिषि मित्र । अब बैठु राज पवित्र ॥१२॥

---

[३] मेष—मेढ़ (सर०)। बृषभ०—बृषभ बहु (दीन०, प्रताप०)। सुभट—नटत (काशि०, सर०, प्रताप०)। [७] गुदरानो—गुदरन गो (सर०, प्रताप०)। दूजो—जग के (वही)। [९] बिसाल—उदार (वही)। [११] बढ़त—होत (प्रताप०)।

मुनि—(तोमर)

सुनि दान-मानस-हंस । रघुबंस के अवतंस ।
मन माहँ जो अति नेहु । इक बात माँगे देहु ॥१३॥

राजा—(अमृतगति)

सुमति महामुनि सुनियै । तन मन धन सब गुनियै ।
मन महँ होइ सु कहियै । धनि सु जु आपुन लहियै ॥१४॥

ऋषि—(दोधक)

राम गए जब तें बन माहीं । राकस बैर करैं बहुधा हीं ।
रामकुमार हमैं नृप दीजै । तौ परिपूरन जज्ञ करीजै ॥१५॥

राजा—(तोटक)

यह बात सुनी नृपनाथ जबै । सर से लगे आखर चित्त सबै ।
मुख तें कुछ बात न जाइ कही । अपराध बिना रिषि देह दही ॥१६॥

राजा—

अति कोमल 'केसव' बालकता । बहु दुष्कर राक्षसघालकता ।
हमहीं चलिहैं रिषि संग अबै । सजि सैन चलै चतुरंग सबै ॥१७॥

विश्वामित्र—(षट्पद)

जिन हाथन हठि हरषि हनत हरनी रिपुनंदन ।
तिन न करत संहार कहा मदमत्तगयंदन ।
जिन बेधत सुख लक्ष लक्ष नृपकुँवर कुँवरमनि ।
तिन बानन बाराह बाघ नहिं मारत सिंहनि ।
नृपनाथनाथ दसरत्थ सुनि अकथ कथा नहिं मानियै ।
मृगराज-राज-कुल-कलस कहँ बालक बृद्ध न जानियै ॥१८॥

(सुंदरी)

राजनि में तुम राज बड़े अति । मैं मुख माँगौं सुदेहु महामति ।
देव-सहायक हौ नृपनायक । है यह कारज रामहि लायक ॥१९॥

राजा—

मैं जु कह्यो रिषि देन सु लीजिय । काज करौ हठ भूलि न कीजिय ।
प्रान दिये धन जाहि दिये सब । 'केसव' राम न जाहिं दिये अब ॥२०॥

ऋषि—

राज तज्यो धन धाम तज्यो सब । नारि तजी सु न सोच तज्यो तब ।
आपनपौ जु तज्यो जगबंदह । सत्य न एक तज्यो हरिचंद्रह ॥२१॥

---

[१३] बात०—वस्तु माँगेहि (कौमुदी) । [१४] मन०—प्रधन सम हय (सर०) । [१७] चलै—चलौं (सर०); चल्यौ (प्रताप०) । [१८] सुनि०—अकथ कथा न बात यह (सर०) । नहिं—यह (काशि०) । [२०] केसव-केवल (दीन १) ।

राज वहै वह साज वहै पुर। नाम वहै वह धाम वहै गुर।
झूठे सों झूठहि बाँधत हौ मन। छाड़त हौ नृप सत्य सनातन ॥२२॥

(दोहा)

जान्यो बिस्वामित्र के, कोप बढ्यो उर आइ।
राजा दसरथ सों कह्यो, बचन बसिष्ठ बनाइ ॥२३॥

वसिष्ठ—(षट्पद)

इनहीं के तपतेज जज्ञ की रक्षा करिहैं।
इनहीं के तपतेज सकल राक्षसबल हरिहैं।
इनहीं के तपतेज तेज बढ़िहैं तन तूरन।
इनहीं के तपतेज होहिंगे मंगल पूरन।
कहि 'केसव' जयजुत आइहैं इनहीं के तपतेज घर।
नृप बेगि राम लछिमन दुवौ सौंपौ बिस्वामित्र-कर ॥२४॥

(सोरठा)

राजा और न मित्र, जानहु बिस्वामित्र से।
जिनको अमित चरित्र, रामचंद्रमय मानियै ॥२५॥

(दोहा)

नृप पै बचन बसिष्ठ को, कैसे मेट्यो जाइ।
सौंप्यो बिस्वामित्र-कर, रामचंद्र अकुलाइ ॥२६॥

(पंकजवाटिका)

राम चलत नृप के जुग लोचन। बारि भरित भए बारिद-रोचन ॥
पाइन परि रिषि के सजि मौनहिं। 'केसव' उठि गए भीतर भौनहिं ॥२७॥

(चामर)

बेदमंत्र-तंत्र सोधि अस्त्र सस्त्र दै भले।
रामचंद्र लक्ष्मनै सु बिप्र क्षिप्र लै चले।
लोभ क्षोभ मोह गर्व काम कामना हई।
नींद भूख प्यास त्रास बासना सबै गई ॥२८॥

(निशिपालिका)

कामबन राम सब बासतरु देखियो।
नैन सुखदैन मन मैनमय लेखियो।

---

[२२] नाम-बंस (दीन १, प्रताप०)। [२५] जिनको-इनको (सर०, प्रताप०)। मानियै-जानियै (कौमुदी)। [२६] पै-सों (सर०); ते (प्रताप०)। [२७] रोचन-मोचन (सर०)। [२८] तंत्र०-साधि-साधि (सर०)।

ईस जहँ कामतनु कै अतनु डारियो।
छोड़ि वह, जज्ञथल 'केसव' निहारियो ॥२९॥

(दोहा)

रामचंद्र लक्ष्मन सहित तन मन अति सुख पाइ।
देख्यो बिस्वामित्र को परम तपोबन जाइ ॥३०॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां रामचंद्रलक्ष्मणयोर्विश्वामित्रतपोवनगमनं नाम द्वितीय: प्रकाशः।

३

(षट्पद)

तरु तालीस तमाल ताल हिंताल मनोहर।
मंजुल बंजुल तिलक लकुच कुल नारिकेर बर।
एला ललित लवंग संग पुंगीफल सोहैं।
सारो सुककुल कलित चित्त कोकिल अलि मोहैं।
सुभ राजहंस कलहंस कुल नाचत मत्त मयूरगन।
अतिप्रफुलित फलित सदा रहै 'केसवदास' बिचित्र बन ॥१॥

(सुप्रिया)

कहुँ द्विजगन मिलि सुख श्रुति पढ़हीं। कहुँ हरि हरि हर हर रट रटहीं।
कहूँ मृगपति मृगसिसु पय पियहीं। कहुँ मुनिगन चितवत हरि हियहीं ॥२॥

(नराच)

बिचार्यमान ब्रह्म, देव अर्च्यमान मानियै।
अदीयमान दुख्ख, सुख्ख दीयमान जानियै।
अदंडमान दीन, गर्व दंडमान भेद वै।
अपठ्यमान पापग्रंथ, पठ्यमान बेद वै ॥३॥

(विशेषक)

साधु कथा कथियै दिन 'केसवदास' जहाँ।
निग्रह केवल है मन को दिन मान तहाँ।
पावन बास सदा रिषि को सुख कों बरषै।
को बरनै कबि ताहि बिलोकत ही हरषै ॥४॥

---

[२९] बास–बाम (सर०, प्रताप०)। वह–यह (सर०)।

[१] तिलक०–लकुच बकुल कुल (सर०, प्रताप०)। [२] हर०–कहुँ हर हर (सर०); हर हर हर (प्रताप०)। [३] गर्ब–वर्ग (सर०, प्रताप०)। [४] दिन–तहँ (काशि०); कहि (प्रताप०)। बास–बंस (सर०)। ही–जी (सर०, कौमुदी)। होम-यज्ञ (प्रताप०, सर०)।

(चंचला)

रक्षिबे कौं जज्ञकूल बैठे बीर सावधान।
होन लाग होम के जहाँ तहाँ सबै बिधान।
भीम भाँति ताड़का सुभंग लागि कर्न आइ।
बान तानि राम पै न नारि जानि छाँडि जाइ ॥५॥

ऋषि—(सोरठा)

करम करति यह घोर, बिप्रन कों दसहूँ दिसा।
मत्त सहज गज जोर, नारी जानि न छाँडिये ॥६॥

राम—(शशिवदना)

सुनि मुनिराई। जग सुखदाई।
कहि अब सोई। जेहि जस होई ॥७॥

ऋषि—(कुंडलिया)

सुता बिरोचन की हुती दीरघजिह्वा नाम।
सुरनायक वह संहरी परम पापिनी बाम।
परम पापिनी बाम अपर उपजी कपिमाता।
नारायन सो हती चक्र चिंतामनि-दाता।
नारायन सो हती सकल द्विजदूषनसंजुत।
त्यौं अब त्रिभुवननाथ ताड़का तारौ सह सुत ॥८॥

(दोहा)

द्विजदोषी न बिचारिये कहा पुरुष कह नारि।
राम बिराम न कीजिये बाम ताड़का तारि ॥९॥

(मरहट्ठा)

यह सुनि गुरु बानी, धनुगुन तानी, जानी द्विजदुखदानि।
ताड़का सँहारी, दारुन भारी, नारी अति बल जानि।
मारीच बिडारयो, जलधि उतारयो मारयो सबल सुबाहु।
देवन गुन परख्यो, पुष्पनि बरख्यो, हरख्यो अति सुरनाहु ॥१०॥

(दोहा)

पूरन जज्ञ भयो जहीं जान्यो बिस्वामित्र।
धनुषजज्ञ की सुभ कथा लागे सुनन बिचित्र ॥११॥

---

[६] गज–दस (प्रताप०)। [८] अपर–बहुरि (काशि०, कौमुदी)। तारौ–मारो (कौमुदी)। सह०–अदभुत (सर०)। [९] दोषी–द्वेषी (काशि०)। बाम–बान (प्रताप०, काशि०, सर०)। [१०] यह०–सुनि गुरुबर (प्रताप०)। [११] पूरन०–केसव पूरन जज्ञ जहँ (सर०)।

(चंचरी)

आइयो तेहि काल ब्राह्मन जज्ञ को थल देखिकै।
ताहि पूछत बोलिकै रिषि भाँति भाँति बिसेषिकै॥
संग सुंदर राम लक्ष्मन देखि देखि सु हर्षई।
बैठिकै सोइ राजमंडल बर्नई सुख बर्षई॥१२॥

ब्राह्मण—(शार्दूलविक्रीड़ित)

सीतासोभनब्याह-उत्सव - सभा-संभार-संभावना।
तत्तत्कार्य-समग्र-व्यग्र मिथिलाबासीजना सोभना।
राजाराजपुरोहितादि सुहृदा मंत्री महामंत्रदा।
नानादेससमागता नृपगना पूज्या परा सर्बदा॥१३॥

(दोहा)

खंडपरसु को सोभिजै सभामध्य कोदंड।
मानहु सेष असेषधर-धरनहार बरिबंड॥१४॥

(सवैया)

सोभित मंचन की अवली गजदंतमई छबि उज्जल छाई।
ईस मनौ बसुधा मैं सुधारि सुधाधर-मंडली मंडि जोन्हाई।
तामहँ 'केसवदास' बिराजत राजकुमार सबै सुखदाई।
देवनि स्यौं जनु देवसभा सुभ सीयस्वयंबर देखन आई॥१५॥

(दोहा)

नचति मंच-पंचालिका करसंकलित अपार।
नाचति है जनु नृपन की चित्तबृत्ति सुकुमार॥१६॥

(सोरठा)

सभामध्य गुनग्राम, बंदीसुत द्वै सोभहीं।
सुमति बिमति यहि नाम, राजन को बर्नन करहिं॥१७॥

सुमति—(दोहा)

को यह निरखत आपनैं पुलकित बाहु बिसाल।
सुरभि स्वयंबर जनु करी मुकुलित साख रसाल॥१८॥

बिमति—(सोरठा)

जेहि जसपरिमल-मत्त चंचरीक-चारन फिरत।
दिसि बिदिसिन अनुरक्त सु तौ मल्लिकापीड़ नृप॥१९॥

---

[१२] पूछत—बूझत (प्रताप०, सर०)। [१७] यहि—तेहि (प्रताप०); इन (सर०)। [१८] सुरभि—सीय (सर०)। जनु०—सोभिजै (वही)।

सुमति—(दोहा)

जाके सुख-मुखबास तें बासित होत दिगंत।
सो पुनि कहि यह कौन नृप सोभित सोभ अनंत ॥२०॥

विमति—(सोरठा)

राजराज-दिगबाम-भाल-लाल - लोभी सदा।
अति प्रसिद्ध जग नाम कासमीर को तिलक यह ॥२१॥

सुमति—(दोहा)

निज प्रताप दिनकर करत लोचन-कमल-प्रकास।
पान खात मुसकात मृदु को यह 'केसवदास' ॥२२॥

विमति—(सोरठा)

नृप - मानिक्य - सुदेस, दक्षिन - तिय - जिय - भावतो।
कटितट सुपट सुबेस, कल कांची सुभ मंडई ॥२३॥

सुमति—(दोहा)

कुंडल परसन मिस कहत कहौ कौन यह राज।
संभु सरासन-गुन करौं करनालंबित आज ॥२४॥

विमति—(सोरठा)

जानहि बुद्धिनिधान, मत्स्यराज यहि राज कों।
समर समुद्र-समान, जानत सब अवगाहि कै ॥२५॥

सुमति—(दोहा)

अंगराग-रंजित रुचिर भूषनभूषित देह।
कहत विदूषक सों कछू सो पुनि को नृप एह ॥२६॥

विमति—(सोरठा)

चंदन-चित्र-तरंग सिंधुराज यह जानिये।
बहुत बाहिनी संग मुकुतामाल बिसाल उर ॥२७॥

(दोहा)

सिगरे राजसमाज के कहे गोत-गुन-ग्राम।
देस स्वभाव प्रभाव अरु कुल बल बिक्रम नाम ॥२८॥

---

[२०] सो०–सु पुनि कहौ (प्रताप०, काशि०, सर०)। [२२] प्रकास–विकास (कौमुदी)। [२३] कटि०–कटिपट (प्रताप०, कौमुदी)। सुपट–पीत (प्रताप०); पाट (सर०)। [२५] बुद्धि–बिबिध (सर०)। यहि–जुव-(वही)।

(घनाक्षरी)

पावक पवन मुनि पन्नग पतंग पितृ जेते जोतिवंत जग ज्योतिषिन गाए हैं।
असुर प्रसिद्ध सिद्ध तीरथसहित सिंधु 'केसव' चराचर जे बेदन बताए हैं।
अजर अमर अज अंगी औ अनंगी सब बरनि सुनावै ऐसे कौने गुन पाए हैं।
सीता के स्वयंबर को रूप अवलोकिबे कौं भूपनको रूप धरि बिस्वरूप आए हैं ॥२९॥

(सोरठा)

कह्यो बिमति यह टेरि, सकल सभाहि सुनाइकै।
चहूँ ओर कर फेरि, सब ही कों समुझाइकै ॥३०॥

(गीतिका)

कोउ आजु राजसमाज में बल संभु को धनु कर्षिहै।
पुनि श्रवन के परिमान तानि सो चित्त में अति हर्षिहै।
वह राज होइ कि रंक 'केसवदास' सो सुख पाइहै।
नृपकन्यका यह तासु के उर पुष्पमालहि नाइहै ॥३१॥

(दोहा)

नेक सरासन-आसनै तजै न 'केसवदास'।
उद्यम कै थाक्यो सबै राजसमाज प्रकास ॥३२॥

(सुंदरी)

सक्ति करी नहिं भक्ति करी अब। सो न नयो पलु सीस नए सब।
देख्यो मैं राजकुमारन के बर। चाप चढ़्यो नहिं आप चढ़े खर ॥३३॥

(बिजय)

दिगपालन की भुवपालन की लोकपालन की किन मातु गई च्वै।
भाँड भए उठि आसन तें कहि 'केसव' संभुसरासन कों छ्वै।
काहू चढ़ायो न काहू नवायो न काहू उठायो न आँगुरहू द्वै।
कछु स्वारथ भो न भयो परमारथ आए ह्वै बीर चले बनिता ह्वै ॥३४॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्वि-
रचितायां श्रीस्वयंवरसभावर्णनं नाम तृतीयः प्रकाशः ॥३॥

[२९] मुनि–मनि (कौमुदी०)। पितृ–पक्षि (प्रताप०, सर०)। [३०] श्रौन-कर्न (प्रताप०, सर०)। [३१] पुष्पमालहि–हरषि माला (दीन०)। तानि–श्रानि (वही)! [३३] पलु–तिल (कौमुदी)। देख्यो–देखहु (प्रताप०); देखहि (सर०)। यह छंद 'दीन०२' में श्रौर है—

यह सुनि सकल उठे महराइ। धनुकहि के लग पहुँचे जाइ।
एकनि जाइ गहे कर कोस। एकनि के उर बाढ्यो रोस ॥

[३४] भाँड–कत भाँड (कौमुदी), सब भाँड (प्रताप०)। काहू–अरु काहू (कौमुदी); वह काहू (प्रताप०), सुकाहूँ (सर०)।

४

(दोहा)

सबही के समुझे सबन बल बिक्रम परिमान।
सभामध्य ताही समय आए रावन बान ॥१॥

(डिल्ल)

नर नारि तबै। भयभीत सबै। अचरज्जु यहै। सब देखि कहै ॥२॥

(दोहा)

है राकस दस सीस को दैयत बाहु हजार।
भयो सबन के चित्त भ्रम भय अद्भुत संचार ॥३॥

रावण—(विजोहा)

संभुकोदंड दै। राजपुत्री कितै। टूक द्वै तीन कै। जाउँ लंकाहि लै ॥४॥

विमति—(शशिबदना)

दससिर आवो। धनुष चढ़ावो। कछु बल कीजे। जग जस लीजे ॥५॥

बाण—(गीतिका)

दसकंठ रे सठ, छाँडि दे हठ, बार बार न बोलियै।
अब आजु राजसमाज में बल साजु चित्त न डोलियै।
गिरराज ते गुरु जानियै सुरराज को धनु हाथ लै।
सुख पाइ ताहि चढ़ाइकै घर जाहि रे जस साथ लै ॥६॥

(मंथान)

बानी कही बान। कीनी न सो कान।
अद्यापि आनी न। रे बंदि कानीन ॥७॥

बाण—(मालती)

जु पै जिय जोर। तजौ सब सोर। सरासन तोरि। लहौ सख कोरि ॥८॥

रावण—(दंडक)

बज्र को अखर्ब गर्ब गंज्यो, जेहि पर्बतारि जीत्यो है, सुपर्ब सर्ब भाजे लै लै अंगना।
खंडित अखंड आसु कीन्हो है जलेस-पासु, चंदन सी चंद्रिका सों कीन्हीं चंद बंदना।

---

[१] के-को (काशि०, सर०, कोमुदी); बिधि (प्रताप०)। ताही—वेही (सर०, प्रताप०)। [३] भयो- कियो (प्रताप०, काशि०; सर०, कोमुदी)। भ्रम—रस (वही)। [५] चढावो-उठावो (काशि०, कौमुदी)। [६] गिरराज०-सुरराज को गुर जानिये, गुरुराज को धनु हाथ लै (दीन०२)। [८] सुख—हित (प्रताप०, सर०)। कोरि—वोर (प्रताप०); जोरि (सर०)।

दंडक में कीन्हो कालदंडहू को मान खंड मानो कीन्ही काल ही की कालखंड खंडना।
'केसव' कोदंड बिषदंड ऐसो दंड अब मेरे भुजदंडन की बड़ी है बिडंबना ॥९॥

बाण—(तुरंगम)

बहुत बदन जाके। बिबिध बचन ताके।
रावण—बहुभुजजुत जोई। सबल कहिय सोई ॥१०॥

(दोहा)

अति असार भुजभार ही बली होहुगे बान।
बाण—मम बाहुन को जगत में सुनु दसकंठ बिधान ॥११॥

(सवैया)

हौं जबहीं जब पूजन जात पितापद पावन पाप प्रनासी।
देखि फिरौं सिगरे तबहीं तब सातौ रसातल के जे बिलासी।
लै अपने भुजदंड अखंड करौं छितिमंडल छत्रप्रभा सी।
जानै को 'केसव' केतिक बार मैं सेष के सीसन दीन्हि उसासी ॥१२॥

रावण—(कमला)

तुम प्रबल जौ हुते। भुजबलनि संजुते॥
पितहि भुव ल्यावते। जगत जस पावते ॥१३॥

बाण—(तोमर)

पितु आनियै केहि ओक। दिय दक्षिना सब लोक।
यह जानि रावन दीन। पितु ब्रह्म के रस लीन ॥१४॥

(सवैया)

कैटभ सो नरकासुर सो पल में मधु सो मुर सो जेहि मार्‌यो।
लोक चतुर्दस रक्षक 'केसव' पूरन बेद पुरान बिचार्‌यो।
श्रीकमलाकुचकुंकुममंडितपंडित देव अदेव निहार्‌यो।
सो कर माँगन कौं बलि पै करतारहु के करतार पसार्‌यो ॥१५॥

रावण—(दोहा)

हमै तुमै नहिं बूझियै बिक्रमबाद अखंड।
अब जु यहै कहि देहिगो मदनकदन-कोदंड ॥१६॥

---

[९] जेहि–जिहि (प्रताप०); जिन (सर०)। विषदंड०–बिषदंड ऐसो खंडे (काशि०, कौमुदी)। भुज–बाहु (प्रताप०)। बड़ी–बड़ीयै (सर०)। [११] असार–आसा (दीन० १), आरस (दीन० २)। [१२] सिगरे० तबहीं तब 'केसव' (प्रताप०);......रावन (काशि०, कौमुदी)। करौं–धरचो (प्रताप०); धरौं (सर०)। [१३] भुज०–बहुभुजनि (प्रताप०, सर०)। [१४] आनियै–राखियै (वही)। रस–पद (प्रताप०) [१५] जेहि–जिन (प्रताप०, सर०)। के–ते (प्रताप०); को (कौमुदी)।

(संयुता)

ब्रत बान रावन को सुन्यो । सिर राजमंडल में धुन्यो ।
विमति—जगदीस अब रक्षा करौ । बिपरीत बात सबै हरौ ॥१७॥

(दोहा)

रावन बान महाबली जानत सब संसार ।
जौ दोऊ धन कर्षिहैं ताको कहा बिचार ॥१८॥

बाण—(सवैया)

'केसव' और तें और भई गति जानि न जाइ कछु करतारी ।
सूरन के मिलिबे कहँ आइ मिल्यो दसकंठ सदा अबिचारी ।
बाढ़ि गयो बकबाद बृथा यह भूलि न भाट सुनावहि गारी ।
चाप चढ़ाइबो कीरति कौं यह राज करै तेरी राकुमारी ॥१९॥

रावण—(मधु)

मोकहँ रोकि सकै कहु को रे । जुद्ध जुरे जमहू कर जोरे ।
राजसभा तिनुका करि लेखौं । देखिकै राजसुता धनु देखौं ॥२०॥

(सवैया)

बान कह्यौ तव रावन सों अब बेगि चढ़ाउ सरासन कों ।
बातैं बनाइ बनाइ कहा कहै छोड़ि दै आसन बासन कों ।
जानत है किधौं जानत नाहिन तू अपने मदनासन कों ।
ऐसेहि कैसे मनोरथ पूजत पूजें बिना नृपसासन को ॥२१॥

(बंधु)

रावण—बान न बात तुम्हैं कहि आवै । बाण—सोई कहौ जिय तोहि जो भावै ?
रावण—का करिहौ हम यौंही बरैंगे ? बाण—हैहयराज करी सो करैंगे ॥२२॥

रावण —(दंडक)

भौंर ज्यौं भँवत भूत बासुकी गनेसजुत मानौ मकरंदबुंद माल गंगाजल की ।
उड़त पराग पट, नाल सी बिसाल बाहु, कहा कहौं 'केसोदास' सोभा पलपल की ।
आयुध सघन सर्बमंगला समेत सर्ब पर्बत उठाइ गति कीन्ही है कमल की ।
जानत सकल लोक लोकपाल दिगपाल जानत न बान बात मेरे बाहुबल की ॥२३॥

(मधुभार)

तजिकै सु रारि । रिस चित्त मारि ।
दसकंठ आनि । धनु छुयो पानि ॥२४॥

---

[१७] में–को (प्रताप०, सर०) । [१८] कहा–कौन (सर०) । [१९] जाइ–जात (प्रताप०) । चढ़ाइबो–चढ़ाइए (काशि०); चढ़ाइहैं (कौमुदी) । यह–वह (प्रताप०); अब (सर०) । तेरी–तव (प्रताप०) । [२१] बान–बेगि (कौमुदी) । [२३] सघन–सगन (प्रताप०, सर०) ।

विमति—

तुम बलनिधान । धनु अति पुरान ।
यौं सजहु अंग । नहि होहि भंग ॥२५॥

(सवैया)

खंडित मान भयो सबकौ नृपमंडल हारि रह्यो जगती को।
ब्याकुल बाहु निराकुल बुद्धि थक्यो बल बिक्रम लंकपती को।
कोटि उपाय किये कहि 'केसव' केहूँ न छाँडत भूमि रतीको।
भूरि बिभूति सुभाव प्रभावहि ज्यौं न चलै चित जोग-जती को ॥२६॥

(पद्धटिका)

धनु अति पुरान लंकेस जानि। यह बात बान सों कही आनि।
हौं पलक माहँ लेहौं चढ़ाइ। कछु तुमहूँ तौ देखौ उठाइ ॥२७॥

बाण—(दोहा)

मेरे गुरु को धनुष यह सीता मेरी माइ।
दुहू भाँति असमंजसै, बान चले सिर नाइ ॥२८॥

रावण—(तोटक)

अब सीय लिये बिन हौं न टरौं। कहुँ जाहुँ न तौ लगि नेम धरौं।
जब लौं न सुनौं अपने जन को। अति आरत सब्द हते तन को ॥२९॥

ब्राह्मण—(मोदक)

काहू कहूँ सर आसर मारिय। आरत सब्द अकास पुकारिय।
रावन के वह कान पर्‍यो जब। छोड़ि स्वयंबर जात भयो तब ॥३०॥

(दोहा)

जब जान्यो सबको भयो सब ही बिधि ब्रतभंग।
धनुष धर्‍यो लै भवन में राजा जनक अनंग ॥३१॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां बाणरावणयोर्वाग्विवादवर्णनं नाम चतुर्थः प्रकाशः ॥ ४ ॥

---

[२५] यौं—इमि (प्रताप०,); औ (कौमुदी)। [२६] उपाय०—विचार बिचारत (प्रताप०)। जोग—योग (दीन०)। [२७] तौ०—धौं देखहु आइ (सर०)। [२८] सिर—सुख पाइ (काशि०, सर०, कौमुदी)। [२९] हते०—सुनो तिनको (प्रताप०)। [३०] आसर—मासर (प्रताप०); मारिच (सर०)। [३१] अनंग—अभंग (दीन० २)।

५

ब्राह्मण—(तारक)

जब आनि भई सबकों दुचिताई। कहि 'केसव' काहू पै मेटि न जाई।
सिय संग लिये रिषि की तिय आई। इक राजकुमार महासुखदाई ॥१॥

(मोहन)

सुंदर बपु अति स्यामल सोहै। देखत सुर नर को मन मोहै।
लाइय लिखि सिय को बरु ऐसो। राजकुँअर यह देखिय जैसो ॥२॥

(तोटक)

रिषिराज सुनी यह बात जहीं। सुख पाइ चले मिथिलाहि तहीं।
बन राम सिला दरसी जबहीं। तिय सुंदर रूप भई तबहीं ॥३॥

(दोहा)

पूछी बिस्वामित्र सों रामचंद्र अकुलाइ।
पाहन तें तिय क्यौं भई कहिये मोंहि समुझाइ ॥४॥

विश्वामित्र—(सोरठा)

गौतम की यह नारि, इंद्रदोष दुर्गति गई।
देखि तुम्हें नरकारि परम पतित पावन भई ॥५॥

(कुसुमविचित्रा)

तेहि अति रूरे रघुपति देखे। सब गुन पूरे तन मन लेखे।
यह बरु माँग्यो दियो न काहू। तुम मम मन तें कतहुँ न जाहू ॥६॥

(कलहंस)

तहँ ताहि दै बरु कों चले रघुनाथ जू। अति सूर सुंदर यौं लसैं रिषिसाथ जू।
जनु सिंह के सुत दोउ सिद्धिहि श्री रए। बन जीव देखत यौं सबै मिथिला गए ॥७॥

---

[१] 'केसव'०—क्यौं हू सु (प्रताप०); कैसेहु (सर०)। [२] स्यामल—दिगंज (दीन० २)। लिखि०—आनिय लिखि (प्रताप०, काशि०, सर०)। ऐसो—जैसो (प्रताप०); तैसो (सर०)। राज०—राजकुमारहि यह देखिय तैसो (कौमुदी०); राजकुमार······(काशि०); रामकुमार देखिय······(सर०)। [३] दरसी—परसी (प्रताप०)। [४] प्रताप०, काशि०, सर० में नहीं है। [५] गई—मई (प्रताप०); मई (सर०)। मन—ही (प्रताप०)। कतहुँ—कबहुँ (प्रताप०, सर०)।

(दोहा)

काहू को न भयो कहूँ ऐसो सगुन न होत।
पुर पैठत श्रीराम के, भयो मित्र-उद्दोत ॥८॥

राम—(चौपाई)

कछु राजत सूरज अरुन खरे। जनु लक्ष्मन के अनुराग भरे।
चितवत चित्त कुमुदिनी त्रसै। चोर-चकोर-चिता सी लसै ॥९॥

लक्ष्मण—(षट्पद)

अरुन गात अतिप्रात पद्मिनी-प्राननाथ भय।
मानहु 'केसवदास' कोकनद कोक प्रेममय।
परिपूरन सिंदूर पूर कैधौं मंगलघट।
किधौं सक्र को छत्र मढ्यो मानिकमयूख-पट।
कैं श्रोनित कलित कपाल यह किल कापालिक काल को।
यह ललित लाल कैधौं लसत दिगभामिनि के भाल को ॥१०॥

(तोटक)

पसरे कर कुम्दिनि काज मनो। किधौं पद्मिनि कों सुखदेन घनो।
जनु रिक्ष सबै यहि त्रास भगे। जिय जानि चकोर फँदानि ठगे ॥११॥

राम—(चंचरी)

ब्योम में मुनि देखिजै अति लालश्री मुख साजहीं।
सिंधु में बड़वाग्नि की जनु ज्वालमाल बिराजहीं।
पद्मरागनि की किधौं दिवि धूरि पूरित सी भई।
सूर-बाजिन की खुरी अति तिक्षता तिनकी हई ॥१२॥

विश्वामित्र—(सोरठा)

चढ़ो गगन तरु धाइ, दिनकर बानर अरुनमुख।
कीन्हो झुकि झहराइ, सकल तारका कुसुम बिन ॥१३॥

लक्ष्मण—(दोहा)

जहीं बारुनी की करी रंचक रुचि द्विजराज।
तहीं कियो भगवंत बिन संपति सोभा साज ॥१४॥

(तोमर)

चहुँ भाग बाग तड़ाग। अब देखियै बड़ भाग।
फल फूल सों संजुक्त। अलि यौं रमैं जनु मुक्त ॥१५॥

---

[८] न होत–जु होत (सर०)। [९] चोर–अति चारु (प्रताप०)। [१०] प्रात–प्रीति (सर०)। किल–कलि (सर०)। [११] जिय–जन (प्रताप०); जनु (सर०)। [१२] देखिजै–सोभिजै (सर०)। मुख–सुख (प्रताप०, काशि०, सर०)। [१३] कीन्हो–दीन्हो (प्रताप०); कीनी (सर०)। कुसुम०कुसुम इन (प्रताप०)। [१४] कियो–करी (प्रताप०); करो (सर०)। [१५] चहुँ–बहु (प्रताप०)। सों०–सोभाजुक्त (प्रताप)।

राम—(दोहा)

तिन नगरी तिन नागरी प्रतिपद हंसक-हीन।
जलजहार सोभित न जहँ प्रगट पयोधर पीन ॥१६॥

(सवैया)

सातहु दीपन के अवनीपति हारि रहे जिय में जब जाने।
बीसबिसे ब्रतभंग भयो सु कहौ अब 'केसव' को धनु ताने।
सोक की आगि लगी परिपूरन आइ गए घनस्याम बिहाने।
जानकि के जनकादिक के सब फूलि उठे तरुपुन्य पुराने ॥१७॥

(दोधक)

आइ गए रिषिराजहि लीने। मुख्य सतानंद बिप्र प्रबीने।
देखि दुवौ भए पायनि लीने। आसिष सीरषबासु लै दीने ॥१८॥

विश्वामित्र—(सवैया)

'केसव' ये मिथिलाधिप हैं जग में जिन कीरति-बेलि बई है।
दान-कृपान-बिधानन सों सिगरी बसधा जिन हाथ लई है।
अंग छ-सातक आठक सों भव तीनिहु लोक में सिद्धि भई है।
बेदत्रयी अरु राजसिरी परिपूरनता सुभ जोगमई है ॥१९॥

जनक—(सोरठा)

जिन अपनो तन स्वर्न, मेलि तपोमय अग्नि में।
कीन्हो उत्तम बर्न, तेई बिस्वामित्र ये ॥२०॥

लक्ष्मण—(मोहन)

जन राजवंत। जग जोगवंत।
तिनको उदोत। केहि भाँति होत ॥२१॥

श्रीराम—(विजय)

सब क्षत्रिन आदि दै काहू छुई न छिये बिजनादिक बात डगै।
न घटै न बढ़ै निसिवासर 'केसव' लोकन को तमतेज भगै।
भवभूपन-भूषित होत नहीं मदमत्त गजादि मसी न लगै।
जलहू थलहू परिपूरन श्री निमि के कुल अद्भुत जोति जगै ॥२२॥

---

[१६] न०—हियें (प्रताप०); जहाँ (सर०)। [१७] धनु—न सु (सर०)। परि०—पुर पूरन (प्रताप०, सर०); उर में तब (अन्यत्र)। सब—तब (सर०)। [१८] प्रबीने—नबीने (सर०)। सीरष—श्रीरिषि (वही)। [१९] सों—कै (सर०)। सों—लों (वही)। में०—प्रसिद्ध (वही)। सुभ—सब (वही)। [२०] उत्तम—उज्जल (सर०)। [२१] जोग—ज्योति (सर०)। तिनको—तिनके (वही)। [२२] छिपे—छुए (काशि०, कौमुदी); लगै (सर०)। लोकन०—लोकन सोरह तेज भगै (दीन० २)।

जनक—(तारक)

यह कीरति और नरेसन सोहै। सुनि देव अदेवन को मन मोहै।
हम को बपुरा सुनियै रिषिराई। सब गाँउ छ-सातक की ठकुराई ॥२३॥

विश्वामित्र—(विजय)

आपने आपने ठौरनि तौ भुवपाल सबै भुव पालैं सदाई।
केवल नामहिं के भुवपाल कहावत हैं भुव पालि न जाई।
भूपन की तुम ही धरि देह बिदेहन में कल कीरति गाई।
'केसव' भूषन कों भवभूषन भू-तल तें तनुजा उपजाई ॥२४॥

जनक—(दोहा)

इहि बिधि की चित चातुरी तिनको कहा अकथ्य।
लोकनि की रचना रुचिर रचिबे कौं समरथ्थ ॥२५॥

जनक—(सवैया)

लोकन की रचना रचिवे कौं जहीं परिपूरन बुद्धि बिचारी।
ह्वै गई 'केसवदास' तहीं सब भूमि अकास प्रकासित भारी।
सुद्ध सलाक समान लसी अति रोषमई दृग दीठि तिहारी।
होत भए तब सूर सुधाधर पावक सुभ्र सुधा रँगधारी ॥२६॥

(दोहा)

'केसव' बिस्वामित्र के रोषमई दृग जानि।
संध्या सी तिहुँ लोक के किहिनि उपासी आनि ॥२७॥

जनक—(दोधक)

ये सुत कौन के सोभहिं साजैं। सुंदर स्यामल गौर बिराजैं।
जानत हौं जिय सोदर दोऊ। कै कमला-विमलापति कोऊ ॥२८॥

विश्वामित्र—(चौपाई)

सुंदर स्यामल राम सु जानौ। गौर सु लक्ष्मन नाम बखानौ।
आसिष देहु इन्हैं सब कोऊ। सूरज के कुलमंडल दोऊ ॥२९॥

(दोहा)

नृपमनि दसरथ नृपति के प्रगटे चारि कुमार।
राम भरत लक्ष्मन ललित अरु सत्रुघ्न उदार ॥३०॥

---

[२३] सुनि-मुनि (सर०)। [२४] तौ–तें (प्रताप०) भूषन–भूपनि (सर०)। भू०–भूतन (काशि०, कौमुदी)। तें०–तें तनया (सर०, कौमुदी)। [२६] रचिबे०–कहँ चित्त (प्रताप०, सर०)। बुद्धि-चित्त (सर०)। मई–रची (सर०)। दीठि-दीह (प्रताप०, सर०)। तब–सब (सर०)। [२७] मई–भरी (सर०)।

विश्वामित्र—(घनाक्षरी)

दानिन के सील पर दान के प्रहारी दिन, दानवारि ज्यों निदान देखिजै सुभाय के।
दीपदीप हू के अवनीपन के अवनीप, पृथु सम 'केसोदास' दास द्विज गाय के।
आनंद के कंद सुरपालक से बालक ये, परदारप्रिय साधु मन बच काय के।
देह धर्मधारी पै बिदेहराजजू से राज, राजत कुमार ऐसे दसरथ राय के ॥३१॥

(सोरठा)

जब तें बैठे राज, राजा दसरथ भूमि में।
सुख सोयो सुरराज, ता दिन तें सुरलोक में ॥३२॥

(स्वागता)

राजराज दसरथ्थ-तने जू। राम चंद भुवचंद बने जू।
त्यों बिदेह तुम हू अरु सीता। ज्यों चकोरतनया सुभगीता ॥३३॥

विश्वामित्र—(तारक)

रघुनाथ सरासन चाहत देख्यो। अति दुष्कर राजसमाजनि लेख्यो।
जनक—रिषि है वह मंदिर माँझ मँगाऊँ। गहि ल्यावहि हौं जनजूथ बुलाऊँ ॥३४॥

(पद्धटिका)

अब लोग कहा करिबे अपार। रिषिराज कही यह बारबार।
इन राजकुमारनि देहु जान। सब जानत हैं बल के निधान ॥३५॥

जनक—(दंडक)

वज्र तें कठोर है कैलास तें बिसाल कालदंड तें कराल सब काल काल गावई।
'केसव' त्रिलोक के बिलोकि हरि देव सब, छाड़ि चंद्रचूड़ एक और का चढ़ावई।
पन्नग प्रचंडपति प्रभु की पनच पान पर्बतारि पर्बतप्रभा न मान पावई।
बिनायक अनेक पै आवै ना पिनाक ताहि कामल कमलपानि राम कैसे ल्यावई ॥३६॥

विश्वामित्र—(दोहा)

राम हत्यो मारीच जेहि अरु तारका सुबाहु।
लक्ष्मन कों यह धनुष दै तुम पिनाक कौं जाहु ॥३७॥

जनक—(त्रिभंगी)

सिगरे नरनायक असुर-बिनायक रक्षसपति हिय हारि गए।
काहू न उठायो थल न छड़ायो टर्‌यो न टार्‌यो भीत भए।

---

[३१] दानिन–दानन (प्रताप०, सर०)। राजत–राघव (सर०)। [३३] तने–जने (प्रताप०, सर०)। [३४] ल्यावहि०–लाइवे कों (प्रताप०)। बुलाऊँ–पठाऊँ (वही)। [३६] अनेक–एक हूँ (कौमुदी०)। [३७] कौं–पह (प्रताप०)।

इन राजकुमारनि अति सुकुमारनि लै आए हौ पैज करै।
व्रतभंग हमारो भयो तुम्हारो रिषि तपतेज न जानि परै॥३८॥

विश्वामित्र—(तोमर)

सुनि रामचंद्र कुमार। धनु आनिये यहि बार।
पुनि बेगि ताहि चढ़ाउ। जस लोकलोक बढ़ाउ॥३९॥

जनक—(दोहा)

रिषिहि देखि हरषै हियो राम देखि कुभिलाइ।
धनुष देखि डरपै महा, चिंता चित्त डुलाई॥४०॥

(स्वागता)

रामचंद्र कटि सों पटु बाँध्यो। लीलही सों हर को धनु साध्यो।
नेकु ताहि करपल्लव सों छ्वै। फूल मूल जिमि टूक करयो द्वै॥४१॥

(सवैया)

उत्तमगाथ सनाथ जबै धनु श्रीरघुनाथजू हाथ कै लीनो।
निर्गुन तें गुनवंत कियो सुख 'केसव' संत अनंतन दीनो।
ऐंच्यो जहीं तबहीं कियो संजुत तिच्छ कटाक्ष नराच नवीनो।
राजकुमार निवारि सनेह सों संभु को साँचो सरासन कीनो॥४२॥

सतानंद–(दंडक)

प्रथम टंकारि झुकि झारि संसार-मद चंड कोदंड रह्यो मंडि नवखंड कों।
चालि अचला अचल घालि दिगपालबल पालि रिषिराज के बचन परचंड कों।
सोधु दै ईस कों बोधु जगदीस कों क्रोधु उपजाइ भृगुनंद बरिबंड कों।
बाँधि बर स्वर्ग कों साधि अपवर्ग धनुभंग को सब्द गयो भेदि ब्रह्मंड कों॥४३॥

जनक—(दोहा)

सतानंद आनंदमति तुम जु हुते उन साथ।
बरज्यो काहे न धनुष जब तोरयो श्रीरघुनाथ॥४४॥

सतानंद—(तोमर)

सुनि राजराज बिदेह। जब हौं गयो वहि गेह।
कछु मैं न जानी बात। कब तोरियो धनु तात॥४५॥

---

[३८] लै०—लै आए रिषि (दीन०१); लै आए जिन (दीन० २)। [३९] बढ़ाउ—पठाउ (प्रताप०)। [४०] महा—हिये (सर०)। [४१] मूल०-माल सम (सर०)। [४२] तें-तौ (सर०) अनंतन-असंतनि (प्रताप०)। [४३] चालि—चले (प्रताप०)। चंड—दंडि (सर०)। घालि-निछले (दीन० २); छंडि (प्रताप०); हालि (सर०)। बरि—बल (वही)। भेदि—बेधि (प्रताप०)। [४४] काहे०—तब काहे नहीं जब (सर०)। तोरयो—ऐंच्यो (वही)। [४५] वहि—उठि (सर०)।

(दोहा)

सीताजू रघुनाथ कों अमल कमल की माल।
पहिराई जनु सर्बनि की हृदयावलि-भूपाल ॥४६॥

(चित्रपद)

सीय जहीं पहिराई। रामहिं माल सुहाई।
दुंदुभि देव बजाए। फूल तहीं बरसाए ॥४७॥

इति श्रीमद्दिद्रजीतबिरचितायां समस्तलोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायां धनुषभंजनो नाम पञ्चमः प्रकाशः।

६

सतानंद—(तोटक)

बिनती रिषिराज की चित्त धरौ। चहुँ भैयन के अब ब्याह करौ।
अब बोलहु बेगि बरात सबै। दुहिता समदौ सुख पाइ अबै ॥१॥

(दोहा)

पठई तब ही लगन लिखि अवधपुरी सब बात।
राजा दसरथ सुनत सजि चाऱ्यो चलीं बरात ॥२॥

(मोटनक)

आए दसरथ्थ बरात सजे। दिगपाल गयंदनि देखि लजे।
चाऱ्यो दल दूलह चारु बने। मोहे सुर औरनि कौन गने ॥३॥

(तारक)

बनि चारि बरात चहूँदिसि आई। नृप चारि चमू अगवान पठाई।
जनु सागर कों सरिता पगु धारी। तिनके मिलिबे कहँ बाँह पसारी ॥४॥

(दोहा)

बारोठे को चारु करि कहि 'केसव' अनुरूप।
द्विज दूलह पहिराइयो पहिराए सब भूप ॥५॥

---

[१] बोलहु–बोलिये (दीन० २)। दुहिता०–बिटिआ···(दीन० १, प्रताप०); मिलि जाहि सबै (सर०)। अबै–तबै (वही)। [२] सजि–हो (प्रताप० काशि०, सर०, कौमुदी)। चाऱ्यो–चाह्यौ (प्रकाशिका)। [५] द्विज-नृप (प्रताप०,सर०)। पहिराइयो–पहिराइ कै (वही)।

(त्रिभंगी)

दसरथ्थ-संघाती सकल बराती बनि बनि मंडप माहँ गए।
आकासबिलासी प्रभाप्रकासी जलजगुच्छ जनु नखत नए।
अति सुंदर नारी सब सुखकारी मंगल गारी देन लगीं।
बाजे बहु बाजत जनु घन गाजत जहाँ तहाँ सुभ सोभ जगीं ॥६॥

(दोहा)

रामचंद्र सीतासहित सोभत हैं तेहि ठौर।
सुबरनमय मनिमय खचित सुभ सुंदर सिरमौर ॥७॥

(छप्पय)

बैठे मागध सूत विविध बिद्याधर चारन।
'केसवदास' प्रसिद्ध सिद्ध सव असुभनिवारन।
भरद्वाज जाबालि अत्रि गौतम कस्यप मुनि।
बिस्वामित्र पवित्र चित्रमति बामदेव पुनि।
सब भाँति प्रतिष्ठित निष्ठमति तहँ बसिष्ठ पूजत कलस।
सतानंद मिलि उच्चरत साखोच्चार सबै सरस ॥८॥

(अनुकूला)

पावक पूज्यो समिध सुधारी। आहुति दीनी सब सुखकारी।
दै तब कन्या बहु धन दीन्हा। भांवरि पारि जगत जस लीन्हो ॥९॥

(स्वागता)

राजपुत्रिकनि स्यों छबि छाए। राजराज सब डेरहि आए।
हीर चीर गज बाजि लुटाए। सुंदरीन बहु मंगल गाए ॥१०॥

(सोरठा)

बासर चौथे जाम, सतानंद आगें दए।
दसरथ नृप के धाम, आए सकल बिदेह बनि ॥११॥

(भुजंगप्रयात)

कहूँ सोभना दुंदुभी दीह बाजें। कहूँ भीम भंकार कर्नाल साजें।
कहूँ सुंदरी बेनु बीना बजावैं। कहूँ किन्नरी किन्नरी लै सुगावैं ॥१२॥

---

[६] जलज०–जनु जगच्छत्र नछत्र गए (सर०)। सुभ–सब (प्रताप०, सर०)। [७] सहित–बने (प्रताप, सर०)। खचित–सुखद (वही); सहित (कौमुदी)। [८] सब–अब (प्रताप०); सुभ (काशि०)। भाँति–जगत (प्रताप०, सर०)। सतानंद–सुभ सतानंद (कौमुदी)। [९] तब०–कन्या बहुतै (सर०)। पारि०–पारी जग (प्रताप०)। [११] आगें दए–आगू दिये (काशि०, प्रकाशिका, कौमुदी); अग्या दियो (प्रताप०)। [१२] सुंदरी–नवीनी (दीन० १)। लै सुगावैं–गीत गावैं (दीन० २, सर०)।

कहूँ नृत्यकारी नचैं सोभ साजैं। कहूँ भाँड बोलैं कहूँ मल्ल गाजैं ॥
कहूँ भाट भाट्यो करैं मान पावैं। कहूँ लोलिनी बेड़िनी गीत गावैं ॥१३॥
कहूँ बैल भैंस भिरैं भीम भारे। कहूँ एन एनीन के हेतकारे ॥
कहूँ बोक बाँके कहूँ मेष सूरे। कहूँ मत्त दंती लरैं लोहपूरे ॥१४॥

(दोहा)

आगे ह्वै दसरथ लिये भूपति आवत देखि।
राज राज मिलि भेटियो ब्रह्म ब्रह्मरिषि लेखि ॥१५॥

सतानंद—(शोभना)

सुनि भरद्वाज बसिष्ठ अरु जाबालि बिस्वामित्र।
सबै हौ तुम ब्रह्मरिषि संसार सुद्ध चरित्र।
कीन्ही जु तुम या बंस पै कहि एक अंस न जाइ।
स्वाद कहिबे कौं समर्थ न गूँग ज्यों गुर खाइ ॥१६॥

(सुखदा)

ज्यों अति प्यासो पावै मग में गंगजलु।
प्यास न एक बुझाइ, बुझै त्रैतापबलु।
त्यों तुम तें हमकों न भयो अब एक सुख।
पूजे मन के काम, जु देख्यो राममुख ॥१७॥

जनक—(दोहा)

सिद्ध समाधि सजैं अजहूँ न कहूँ जग जोगिन देखन पाई।
रुद्र के चित्त-समुद्र बसै नित ब्रह्महु पै बरनी नहिं जाई।
रूप न रंग न रेख बिसेष अनादि अनंत जु बेदन गाई।
'केसव' गाधि के नंद हमैं वह ज्योति सो मूरतिवंत दिखाई ॥१८॥

अन्यच्च—(तारक)

जिनके पुरिषा भुव गंगहि ल्याए। नगरी-सँग स्वर्ग सदेह सिधाए।
जिनके सुत पाहन तें तिय कीनी। हर को धनु भंग भ्रमे पुर तीनी ॥१९॥
जिन आपु अदेव अनेक सँहारे। सब काल पुरंदर के रखवारे।
जिनकी महिमा महि अंत न पायो। हम को बपुरा जस बेदन गायो ॥२०॥

---

[१३] भाँड—भाट (कौमुदी)। भाट०—भाँड़ भाड्यो (कौमुदी)। भिरैं—लरैं (सर०)। [१५] भेटियो-बैठियो (प्रताप०, काशि०, सर, कौमुदी, प्रकाशिका। [१६] अरु—मुनि (प्रताप०), यो (सर०)। पै—कों (प्रताप०, सर०)। [१७] पावै०—पाइ पियै मग (प्रताप०); माँगि नीर लहै (कौमुदी)। अब—कछु कौमुदी)। [१८] समाधि—समाजि (दीन० १)। नहिं—जो न (काशि०)। [१९] सँग—सुभ (कौमुदी)। भ्रमे भए (सर०)। अनेक— न नेक (वही)। [२०] महिमा०—महिमाहि अनंत पायो (काशि०, कौमुदी)। जस—सब (प्रताप०)। बेदन—देवन (कौमुदी)।

(तारक)

बिनती करियै जन जौ जिय लेखौ। दुख देख्यो ज्यों काल्हि त्यों आजहु देखौ।
यह जानि हिये ढिठई मुख भाषी। हम हैं चरनोदक के अभिलाषी ॥२१॥

(तामरस)

जब रिषिराज बिनै करि लीनो। सुनि सबके करुनारस भीनो।
दसरथ राय यहै जिय मानी। यह वह एक भई रजधानी ॥२२॥

दसरथ—(दोहा)

हमकों तुमसे नृपति की दासी दुर्लभ राज।
पुनि तुम दीन्ही कन्यका त्रिभुवन की सिरताज ॥२३॥

भरद्वाज—(तामरस)

सुख दुख आदि सबै तुम जीते। सुर नर को बपुरे बलरीते।
कुल महँ होइ बड़ो लघु कोई। प्रतिपुरुषानि बड़ो सु बड़ोई ॥२४॥

बसिष्ठ—(विजय)

एक सुखी इहि लोक बिलोकिय है उहि लोक निरै पगु धारी।
एक इहाँ दुख देखत 'केसव' होत उहाँ सुरलोकबिहारी।
एक इहाँऊ उहाँ अति दीन सु देत दुहूँ दिसि के जन गारी।
एकहि भाँति सदा सब लोकनि है प्रभुता मिथिलेस तिहारी ॥२५॥

जाबालि—(विजय)

ज्यों मनि में अति जोति हुती रबि तें कछु और महाछबि छाई।
चंदहि बंदत हैं सब 'केसव' ईस तें बंदनता अति पाई।
भागीरथी हुतियै अति पावन बावन तें अति पावनताई।
त्यों निमिबंस बड़ोई हुत्यो भई सीयसँ-जोग बड़ीयै बड़ाई ॥२६॥

विश्वामित्र—(मालिनी)

गुनगन-मनिमाला चित्त चातुर्यसाला। जनक सुखद गीता पुत्रिका पाइ सीता।
अखिल-भुवनभर्ता ब्रह्मरुद्रादि-कर्त्ता। थिरचर-अभिरामी कीय जामातु नामी ॥२७॥

(दोहा)

पूजि राजरिषि ब्रह्मरिषि दुँदुभि दीह बजाइ।
जनक कनकमंदिर गए गुरुसमेत सुख पाइ ॥२८॥

---

[२१] ज्यों—ज्यौं (काशि०); सु (सर०)। आजहु—आपुहि (दीन० २)। [२२] राम—राज (प्रताप०, सर०)। यहै जिय—महासुख (दीन० २)। [१४] आदि—आजु (प्रताप०) [२५] मिथिलेस—सब लोक (दीन० २)। [२६] महा—कछू (सर०)। बंदनता—बंदकता (प्रताप०, सर०)।

(चामर)

आसमुद्र के क्षितीस और जाति को गनै।
राजभौन भोज कों सबै जने गए बनै।
भाँति भाँति अन्न पान व्यंजनादि जेंवहीं।
देत नारि गारि पूरि भूरि भूरि भेंवहीं ॥२९॥

(हरिगीत)

अब गारि तुम कहँ देहिं हम कहि कहा दूलह रामजू।
कछु बाप प्रियपरदार सुनियत करी कहत कुबाम जू।
को गनै कितने पुरुष कीन्हे कहत सब संसार जू।
सुनि कुँवर चित दै बरनि ताको कहिय सब ब्यौहार जू ॥३०॥

बहु रूप स्यों नवयौबना बहु रतनमय बपु मानिये।
पुनि बसन रत्नाकर बन्यो अति चित्त चंचल जानिये।
सुभ सेष-फन-मनिमाल पलिका परति पढ़ति प्रबंध जू।
करि सीस पस्चिम पाइ पूरुब गात सहज सुगंध जू ॥३१॥

वह हरी हठि हिरनाक्ष दैयत देखि सुंदर देह सों।
बर बीर जज्ञ बराह बरहीं लई छीनि सनेह सों।
ह्वै गई बिह्बल अंग पृथु फिर सजे सकल सिंगार जू।
पुनि कछुक दिन बस भई ताके लियो सरबसु सार जू ॥३२॥

वह गयो प्रभु परलोक कीन्हो हिरनकस्यप नाथ जू।
तेहि भांति भाँतिन भोगियो भ्रमि पल न छोड्यो साथ जू।
वह असुर श्रीनरसिंह मारचो लई प्रबल छड़ाइकै।
लै दई हरि हरिचंद राजहिं बहुत जिय सुख पाइकै ॥३३॥

हरिचंद बिस्वामित्र कों दइ दुष्टता जिय जानिकै।
तेहि बरो बलि बरिबंड बरहीं बिप्र तपसी मानिकै।
बलि बाँधि छल बल लई बामन दई इंद्रहि आनिकै।
इंद्र तजि पति करचो अर्जुन सहसभुज पहिचानिकै ॥३४॥

---

[२९] जेंवहीं-को गनै (सर०)। भेंवहीं-भेवनै (वही)। [३०] कितने-जितने (प्रताप०, सर०)। सब-यह (वही)। [३१] परति-पौढ़ि (कौमुदी)। पढ़ति-करति (काशि०)। [३२] बरहीं-सोवत (दीन० २); तब वह (प्रताप०, सर०)। पृथु-पृथवी (दीन० १)। सरबसु-सब रस (दीन० १, प्रताप०, सर०)। प्रभु-पृथु (दीन० १)। [३४] दुष्टता०-दुष्टन मन (प्रताप०, सर०)। बल--करि (प्रताप०)। भुज--कर (सर०)।

तव तासु छबिमद छक्यो अर्जुन हत्यो रिषि जमदग्निजू।
परसुराम सो सकुल जारयो प्रबल बल की अग्निजू।
तेहि बैर तब तिन सकल क्षत्रिन मारि मारि बनाइकै।
इकईस बेरा दई बिप्रन रुधिरजल अन्हवाइकै ॥३५॥
वह रावरे पितु करी पत्नी तजी बिप्रन थूँकिकै।
अरु कहत हैं सब रावनादिक रहे ताकहँ ढूँकिकै।
यहि लाज मरियत ताहि तुमसों भयो नातो नाथजू।
अब और मुख निरखै न ज्यों त्यों राखिये रघुनाथजू ॥३६॥

(सोरठा)

प्रात भए सब भूप, बनि बनि मंडप में गए।
जहाँ रूप अनुरूप, ठौर ठौर सब सोभिजैं ॥३७॥

(नराच)

रची ब्रिरंचि बास सी निथंबराजिका भली।
जहाँ तहाँ बिछावने बने घने थली थली।
बितान सेत स्याम पीत लाल नीलिका रँगे।
मनो दुहूँ दिसान के समान बिंब से जगे ॥३८॥

(पद्धटिका)

गजमोतिन की अवली अपार। तहँ कलसनि पर उरमति सुढार।
सुभ पूरित रति जनु रुचिर धार। जहँ तहँ अकासगंगा उदार ॥३९॥
गजदंतन की अवली सुदेस। तहँ कुसमराज राजत सुबेस।
सुभ नृपकुमारिका करत गान। जनु देवनि के पुष्पक बिमान ॥४०॥

(तामरस)

इत उत सोभन सुंदरि डोलैं। अरथ अनेकनि बोलनि बोलैं।
सुख मुखमंडल चित्तनि मोहैं। मनहु अनेक कलानिधि सोहैं ॥४१॥
भृकुटि-बिलास प्रकासित देखे। धनुष-मनोज मनोमय लेखे।
चरचित हास चंद्रिकनि मानौ। सुख मुखबासनि बासित जानौ ॥४२॥

---

[३५] तिन-उन (प्रताप०); ही (काशि०)। इक०-इकबीस (कौमुदी)। बेर-बार सु (प्रताप०); बेरिनि (सर०)। [३६] अरु-अब (प्रताप०)। 'सर०' में इतना और है—बहु भाँति भाँतिन बरनिकै सब गारि गाइ सुनाइयो। श्रीरामचंद्ररु सहित सीता सुनत अति सुख पाइयो ॥ [३७] रूप-ठौर (सर०)। अनुरूप-बहुरूप (प्रताप०, सर०)। ठौर०-सबही बिधि (सर०)। [३८] बिरंचि-बिचित्र (दीन० १, प्रताप०, सर०)। नीलिका-नील के (कौमुदी)। [३९] अवली-दुलरी (दीन० २)। तहँ कलसनि०-कलसनि ऊपर सुरमनि सुढार (दीन० २)। [४१] सोभन-सोभित (काशि०)। [४२] मनो०-मनो बिधि (सर०)। मानौ-जानौ (प्रताप०, सर०)। जानौ-मानौ (वही)।

(दोहा)

अमल कपोलै आरसी, बाँहें चंपकमार।
अवलोकनै बिलोकिजै, मृगमदमय घनसार ॥४३॥
गति के भार महाउरै अंग अंस के भार।
'केसव' नखसिख सोभिजै सोभाई सिंगार ॥४४॥

(सवैया)

बैठे जराय-जरे पलिका पर रामसिया सबके मन मोहैं।
ज्योतिसमूह रहो मढ़िकै सुर भूलि रहे बपुरा नर को हैं॥
'केसव' तीनहु लोकन की अवलोकि बृथा उपमा कबि टोहैं।
सोभन सूरजमंडल माँझ मनौ कमला-कमलापति सोहैं ॥४५॥

(दोहा)

गंगाजल की पाग सिर सोहत श्रीरघुनाथ।
सिवसिर गंगाजल किधौ चंद्र चंद्रिका साथ ॥४६॥

(तोमर)

कछु भृकुटि कुटिल सुबेस। अति अमल सुमिल सुदेस।
बिधि लिख्यो सोधि सुतंत्र। जनु जयाजय के मंत्र ॥४७॥

(दोहा)

जदपि भृकुटि रघुनाथ की कुटिल देखियत जोति।
तदपि सुरासुर नरनि की निरखि सुद्ध गति होति ॥४८॥
श्रवन मकर कुंडल लसत मुख सुषमा एकत्र।
ससि-समीप सोहत मनो श्रवन मकर नक्षत्र ॥४९॥

(पद्धटिका)

अति बदन सोभ सरसी सुरंग। तहँ कमल नयन नासा तरंग।
जग जुवति-चित्त बिभ्रम-बिलास। तेई भँवर भँवत रस-रूप-आस ॥५०॥

(निशिपालिका)

सोभिजति दंतरुचि सुभ्र उर आनिये।
सत्य जनु रूप अनुरूपक बखानिये।
ओठरुचि-रेख सबिसेषु सुभ श्रीरये।
सोधि जनु ईस सुभ लक्षन सबै दये ॥५१॥

---

[४३] बाहैं–बाहू (काशि०); बाहुइ (कौमुदी)। [४४] अंस-अंग (काशि०)। [४५] सोभन–सोभत (प्रताप०)। [४६] किधौं–कियो (प्रताप)। [४७] जयाजय–मयाजय (सर०)। [४९] श्रवन०–श्रवनन्ह मकर नछत्र (सर०)। [५०] सोभ–जोति (दीन० २)। तहँ–जहँ (प्रताप०)। जग–जनु (काशि०); जन (कौमुदी)। बिभ्रम–नासा (दीन० २)। [५१] जनु०–अनुरूप जनु रूपक (प्रताप०, सर०)। सुभ०–सह है रयो (प्रताप०); सह हे रये (सर०)।

(दोहा)

ग्रीवा श्रीरघुनाथ की लसति कंबु-बरवेष ।
साधु मनो बच काय की, मानो लिखी त्रिरेख ॥५२॥

(सुंदरी)

सोभन दीरघ बाहु बिराजत । देव सिहात अदेव ति लाजत ।
बैरिन कौं अहिराज बखानहु । है हितकारिन की धुज मानहु ॥५३॥
यों उर में भृगुलात बखानहु । श्रीकर को सरसीरुह मानहु ।
सोहति है उर में मनि यों जनु । जानकि को अनुराग रह्यो मनु ॥५४॥

(दोहा)

सोहत जनरत राम उर देखत तिनको भाग ।
आइ गयो ऊपर मनो अन्तर को अनुराग ॥५५॥

(पद्धटिका)

सुभ मोतिन की दुलरी सुदेस । जनु वेदन के आखर सुबेस ।
गजमोतिन की माला बिसाल । मन मानहुँ संतन के रसाल ॥५६॥

(विशेषक)

स्याम दुवौ पग लाल लसै दुति यों तल की ।
मानहु सेवति जोति गिरा जमुनाजल की ।
पाटजटी अति सेत सु हीरन की अवली ।
देवनदी-कन मानहु सेवत भाँति भली ॥५७॥

(दोहा)

को बरनै रघुनाथ-छबि, 'केसव' बुद्धिउदार ।
जाकी सोभा सोभिजति, सोभा सब संसार ॥५८॥

(दंडक)

को है दमयंती इंदुमती रति रातिदिन,
होंहि न छबीली छिनछबि जौ सिंगारिये ।
'केसव' लजात जलजात जातवेद ओप,
जातरूप बापुरो बिरूप सो निहारिये ।

[५२] बर-के (प्रताप०, सर०) । [५३] ति-नि (प्रताप०); ते (काशि०); त (कौमुदी) । [५४] यों-ज्यों (सर०) । लात लता (वही) । [५५] जनरत-पनरत (प्रताप०), पानत (सर०) । अंतर०-उरअंतर (वही) । [५६] सुभ-अति (प्रताप०) । रसाल-मराल (काशि०) । [५७] सेवति-सोहति (सर०) । [५८] को-क्यौं (प्रताप०, सर०) । उदार--तुमार (प्रताप०) । सोभा-किरपा (कौमुदी) ।

मदन निरूपम निरूपन निरूप भयो,
चंद बहुरूप अनुरूपकै बिचारिये।
सीताजू के रूप पर देवता कुरूप को हैं,
रूप ही रूपक तौ वारि वारि डारिये।।५९।।

(गीतिका)

तहँ सोभिजैं सखि सुंदरी जनु दामिनी बपु मंडिकै।
घनस्याम कों जनु सेवहीं जड़ मेघ-ओघनि छंडिकै।
इक अंग चर्चित चारु चंदन चंद्रिका तजि चंद कों।
जनु राहु के भय सेवहीं रघुनाथ आनँदकंद कों।।६०।।

मुख एक है नत लोल-लोचन लोक-लोचन कों हरे।
जनु जानकी-सँग सोभिजै सुभ लाज देहनि कों धरे।
तहँ एक फूलन के बिभूषन एक मोतिन के किये।
जनु छीर-सागर देवता तनु छीर छीटन कों छिये।।६१।।

(सोरठा)

पहिरे बसन सुरंग, पावकजुत स्वाहा मनो।
सहज सुगंधित अंग, मानहु देवी मलय की।६२।।

(चामर)

मत्त दंतिराज राजि बाजिराज राजि कै।
हेम हीर हार मुक्त चीर चारु साजिकै।
वेष वेष बाहिनी असेष बस्तु सोधियो।
दायजो बिदेहराज भाँति भाँति को दियो।।६३।।

बस्त्र भौन स्यों बितान आसने बिछावने।
अस्त्र सस्त्र अंगत्रान भाजनादि को गने।
दासि दास बासि बास रोम पाट को कियो।
दायजो बिदेहराज भाँति भाँति को दियो।।६४।।

---

[५९] छिनछबि-छबि इन (काशि०)। निरूपम०-निरूप निरूपम तौ निरूप (प्रताप०); निरूपति न रूप मानि रूप (सर०)। को हैं-होत (सर०)। रूपक-रूप कों तौ (प्रताप०); रूप केतौ (सर०)। [६०] बपु-दुति (प्रताप०)। कों जनु-को तन (सर०, कौमुदी)। [६१] कों-कै (कौमुदी)। संग-सुभ (सर०)। देहनि-देहहि (कौमुदी)। कों-सों (सर०)। छीटनि-की छिटकनि (सर०)। [६३] राजि कै-साजिकै (प्रताप०)। साजिकै-भ्राजिकै (वही)। [६४] भाजनादि-भोजनादि (सर०)।

(दोहा)

जनकराइ पहिराइयो, राजा दसरथ साथ।
छत्र चमर गज बाजि दै आसमुद्र क्षितिनाथ ॥६५॥

(निशिपालिका)

दान दिय राइ दशरथ्थ सुख पाइकै।
सोधि रिषिब्रह्म रिषिराजन बुलाइकै।
तोषि जाचक सकल दादुर मयूर से।
मेघ जिमि बर्षि गज बाजि पयपूर से ॥६६॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिद्रजिद्विरचितायां श्रीसीतारामविवाहवर्णनं नाम षष्ठः प्रकाशः ॥

७

(दोहा)

बिस्वामित्र बिदा भए जनक फिरे पहुँचाइ।
मिले आगिली फौज कों परसुराम अकुलाइ ॥१॥

(चंचरी)

मत्त दंति अमत्त ह्वै गए देखि देखि न गाजहीं।
ठौर ठौर सुदेस 'केसव' दुंदुभी नहि बाजहीं।
डारि डारि हथ्यार सूरज जीव लै लय भाजहीं।
काटिकै तनत्रान एकनि नारि भेषन साजहीं ॥२॥

(दोहा)

बामदेव रिषि सों कह्यो, परसुराम रनधीर।
महादेव को धनुष यह कैं तोरयो बलबीर ॥३॥

---

[६५] जनकराइ–जनकराज (काशि०, सर०)। [६६] जाचक०–सब जाचकनि (प्रताप०)।

[२] एकनि- एक ते (काशि०); एकहि (कौमुदी)। [३] यह–कहि (प्रताप०, सर०)। कैं–को (कौमुदी)।

वामदेव—(दोहा)

महादेव को धनुष यह परसुराम रिषिराज।
तोरयो 'रा' यह कहत ही समुझयो रावनराज ॥४॥

परशुराम—(दोहा)

अति कोमल नृपसुतन की ग्रीवा दली अपार।
अब कठोर दसकंठ के काटहि कंठ कुठार ॥५॥

(विजय)

बाँधिकै बाँध्यो जु बालि बली पलना पर लै सुत के हित ठाटै।
हैहयराज लियो गहि 'केसव' आयो हो छुद्र जु छिद्रनि डाटै।
बाहर काढ़ि दियो बलिदासिन जाइ परयो जु पताल की बाटै।
तोकों कुठार बड़ाई कहा कहि ता दसकंठ के कंठनि काटै ॥६॥

(सोरठा)

जद्यपि है अति दीन, मोहि तऊ खल मारने।
गुरु-अपराधहि लीन, 'केसव' क्योंकरि छाँडियै ॥७॥

(चंद्रकला)

बर बान सिखीन असेष समुद्रहि सोखि सखा सुखहीं तरिहौं।
पुनि लंकहि औटि कलंकित कै फिरि पंक कनंकहि की भरिहौं।
सब भूँजिकै राकस खाकस कै दुख दीरघ देवन को हरिहौं।
सितिकंठ के कंठन को कठुला दसकंठ के कंठन कों करिहौं ॥८॥

(संयुक्ता)

परशुराम—यह कौन को दल देखियै ?
वामदेव— यह राम को प्रभु लेखियै।
परशुराम—कहि कौन राम बिचारियै ?
वामदेव—सर ताड़का जिहि मारियै ॥९॥

(त्रिभंगी)

परशुराम—ताड़का सँहारी, तिय न बिचारी, कौन बड़ाई ताहि हने।
वामदेव— मारीचहु तो सँग, प्रबल सकल खल, अरु सुबाहु काहू न गने।

---

[४] यह–मुनि (प्रताप०, सर०) । [५] काटहि–काटहु (काशि०, सर०, कौमुदी)। [६] के–सो (प्रताप०, सर०) । छिद्रनि–छिद्रहि (कौमुदी) । बाटै–हाटै (प्रताप०, सर०)। [७] तऊ०–तथापि सु (प्रताप० सर०)। क्यों०–कैसे (प्रताप०, सर०)। [८] पुनि–अरु (कौमुदी) । कै०–की पुनि (वही)। सब–मल (वही)। राकस०–राख सुखै करि । [९] यह राम–कह राम (प्रताप०); जहाँ राम (सर०)। बिचारियै–न जानियो (काशि०, कौमुदी)। जिहि०–जेहि मानियो (काशि०); जिनि मारिये (सर०); जिन मारियो (कौमुदी)।

करि क्रतु रखवारी, गुरु सुखकारी, गौतम की तिय सुद्ध करी।
जिन हर-धनु खंड्यो, रघुकुल मंड्यो सीय स्वयंवर माँझ बरी ॥१०॥

परशुराम—(दोहा)

हरहू होतो दंड द्वै धनुष चढ़ावत कष्ट।
देखौ महिमा काल की कियो सो नरसिसु नष्ट ॥११॥

(किरीट)

बोरौं सबै रघुबंस कुठार की धार में बारन बाजि सरत्थहि।
बान की बायु उड़ाइकै लक्षन लक्ष करौं अरिहा समरत्थहि।
रामहि बामसमेत पठै बन कोप के भार में भूँजौं भरत्थहि।
जौं धनु हाथ धरै रघुनाथ तौ आजु अनाथ करौं दसरत्थहि ॥१२॥

(सोरठा)

राम देखि रघुनाथ, रथ तें उतरे बेगि दै।
गहे भरथ को हाथ, आवत राम बिलोकियो ॥१३॥

परशुराम—(दंडक)

अमल सजल घनस्याम बपु 'केसोदास',
चंद्रहू तें चारु मुख सुषमा को ग्राम है।
कोमल कमलदल दीरघ बिलोचननि,
सोदर समान रूप न्यारो न्यारो नाम है।
बालक बिलोकियत पूरन पुरुष गुन,
मेरो मन मोहियत ऐसो एक धाम है।
बैर मानि बामदेवजू को धनु तोर्‌यो इन,
जानत हौं बीस बिसे रामबेष काम है ॥१४॥

भरत—(गीतिका)

कुसमुद्रिका समिधै श्रुवा कुस औ कमंडल कों लियें।
कटिमूल सुब्रन-तर्कसी भृगुलात सी दरसै हियें।
धनु बान तिक्ष कुठार 'केसव' मेखला मृगचर्म स्यों।
रघुबीर को यह देखिये रस बीर सात्विक धर्म स्यों ॥१५॥

---

[१०] क्रतु--मख (प्रताप०) । रघुकुल—जगयश (कौमुदी)। [११] देखौ—देखी (प्रताप०)। [१२] कोप—सोक (काशि०)। भूँजौं—भूजि (प्रताप०, सर०)। धरै—लियो (काशि०, सर०)। [१४] एक—रूप (कौमुदी)। मानि०—जियमानि बामदेव को धनुष तोरो (वही)। [१५] कटि—कर (काशि०, सर०)। सुब्रन—सर्धन (काशि०); सुभ्रस (प्रताप०); श्रोननि (कौमुदी)। दरसै—समझौ (सर०); समुझै (दीन० १, २)। स्यों—सो (काशि०, सर०)।

राम—(नराच)

प्रचंड हैहयाधिराज दंडमान जानिये। अखंड कीर्ति लेय भूमि देयमान मानिये।
अदेव देव जेय भीत रक्षमान लेखिये। अमेय तेज भर्गभक्त भार्गवेस देखिये ॥१६॥

(तोमर)

सह भर्थ लक्ष्मन राम। चहुँ कीन आनि प्रनाम।
भृगुनंद आसिष दीन। रन होहु अजय प्रबीन ॥१७॥
परशुराम— सुनि रामचंद्र कुमार। मन बचन कीर्ति उदार।
रामचंद्र— भृगुबंस के अवतंस। मनवृत्ति है केहि अंस ॥१८॥

परशुराम—(मदिरा)

तोरि सरासन संकर को सुभ सीय स्वयंबर माँझ बरी।
तातें बढ्यो अभिमान महा मन मेरियौ नेक न संक करी।
राम— सो अपराध परो हमसों अब क्यों सुधरै तुम ही धौं कहौ।
परशुराम— बाहु दै दोऊ कुठारहि 'केसव' आपने धाम को पंथ गहौ ॥१९॥

राम—(कुंडलिया)

टूटै टूटनहार तरु बायुहि दीजत दोष।
त्यों अब हर के धनुष को हम पर कीजत रोष।
हम पर कीजत रोष कालगति जानि न जाई।
होनहार ह्वै रहै मिटै मेटी न मिटाई।
होनहार ह्वै रहै मोह मद सब को छूटै।
होइ तिनूका बज्र बज्र तिनुका ह्वै टूटै ॥२०॥

परशुराम—(माधवी)

'केसव' हैहयराज को मास हलाहल कौरन खाइ लियो रे।
ता लगि मेद महीपन को घृत घोरि दियो न सिरानो हियो रे।
मेरो कह्यो करि कोप कराल जौ चाहत है बहुकाल जियो रे।
तौ लौं नहीं सुख जौ लहु तू रघुबंस को सोन सुधा न पियो रे ॥२१॥

---

[१७] कीन–किये (काशि०, सर०, कौमुदी)। [१८] कीर्ति–प्रकृति (सर०)। मन–मम (प्रताप०, सर०)। [१९] सुभ–सुख (सर०)। परो०–अगाध परो (प्रताप०); अगाध करयो (सर०)। धौं–तो (कौमुदी)। [२०] बायुहि–बातहि (प्रताप०, सर०)। पर–सह (सर०)। मेटी–केहूँ (सर०)। होइ०–ह्वै तिनुका सम (प्रताप०); ह्वै तिनुका ते (सर०)। ह्वै–सम (प्रताप०)। [२१] कोप०–मित्र कुठार (कौमुदी)। बहु–चिर (प्रताप०)। मेरो०–बीर षड़ानन को मद 'केसव' सो पल मैं करि पान लियो रे (काशि०)। लहु–लग (कौमुदी)। रघुबंस–रघुबीर (वही)।

भरत—(तन्वी)

बोलत कैसे, भृगुपति सुनिये, सो कहिये तन मन बनि आवै।
आदि बड़े हौ, बड़प्पन राखौ जातें सब जगजन सुख पावै।
चंदन हू मैं अति तन घरषे, आगि उठै यह गुनि सब लीजै।
हैहय मारे, नृपति सँघारे, यह जस लै किन जुग जुग जीजै ॥२२॥

परशुराम—(नराच)

भली कही भरथ्थ तैं उठाउ आगि अंग तें।
चढ़ाउ चोपि चाप आप बान लै निषंग तें।
प्रभाउ आपनो दिखाउ छोंडि बाल भाइ कै।
रिझाउ राजपुत्र मोंहि राम लै छड़ाइ कै ॥२३॥

(सोरठा)

लियो चाप जब हाथ, तीनहु भैयन रोष करि।
बरज्यो श्रीरघुनाथ, तुम बालक जानौ कहा ॥२४॥

राम—(दोहा)

भगवंतनि नहिं जीतिये कबहूँ कीन्हें सक्ति।
जीतिय एकै बात तें, कीन्हें केवल भक्ति ॥२५॥

(हरिगीत)

जब हन्यो हैहयराज इन बिन क्षत्र क्षितिमंडल करयो।
गिरिबेध षनमुख जीति तारकनंद को जब ज्यौ हरयौ।
सुत मैं न जायो राम सो यह कह्यो पर्बतनंदिनी।
वह रेनुका तिय धन्य धरनी में भई जगबंदिनी ॥२६॥

परशुराम—(तोमर)

सुनि राम सीलसमुद्र। तब बंधु हैं अति क्षुद्र।
मम बाड़वानल कोप। अब कियो चाहत लोप ॥२७॥

शत्रुघ्न—(दोधक)

हौ भृगुनंद बली जग माहीं। राम बिदा करिये घर जाहीं।
हौं तुमसों फिरि जुद्धहि माँडौं। क्षत्रियबंस को बैर लै छाँडौं ॥२८॥

---

[२२] तन०—जो तन मन भावै (प्रताप०)। जातें०—जातें तुम सब जग जसु पावौ (काशि०); जा हित तूं सब जग जस पावै (कौमुदी)। घरषे—घसिये (वही)। गुनि—मम मतु (प्रताप०)। नृपति०—नृपजन सँहरे सो (कौमुदी)। [२३] चोपि—खैंचि (प्रताप०)। लै—कों (प्रताप०, सर०)। [२४] जानो—जानत (कौमुदी)। [२५] बात—बार (प्रताप०)।

(तोटक)

यह बात सुनी भृगुनाथ जबै। कहि रामहि लै घर जाहु अबै।
इन पै जग जीवत जौ बचिहौं। रन हौं तुमसों फिरि कै रचिहौं ॥२९॥

परशुराम—(दोहा)

निज अपराधी क्यों हतौं गुरु-अपराधी छाँडि।
तातें कठिन कुठार अब रामहिं सों रन माँडि ॥३०॥

(माधवी)

भूतल के सब भूपन को मद भोजन तौ बहु भाँति कियोई।
मोद सों तारकनंद को मेद पछ्यावरि पान सिरायो हियोई।
खीर षड़ानन को मद 'केसव' सो पल में करि पान लियोई।
राम तिहारेइ कंठ को सोनित पान कों चाहै कुठार पियोई ॥३१॥

लक्ष्मण—(तोटक)

जिनको सु अनुग्रह बृद्धि करै। तिनको किमि निग्रह चित्त परै।
जिनके जग अक्षत सीस धरै। तिनको तन सक्षत कौन करै ॥३२॥

राम—(मदिरा)

कंठ कुठार परै अब हार कि फूलै असोक कि सोक समूरो।
कै चित्रसारि चढ़ै कि चिता, तन चंदन-चित्र कि पावक पूरो।
लोक में लोक बड़ो अपलोक, सु 'केसवदास' जु होउ सु होऊ।
बिप्रन के कुल कों भृगुनंदन सूर न सूरज के कुल कोऊ ॥३३॥

परशुराम—(विशेषक)

हाथ धरे हथियार सबै तुम सोभत हौ।
मारनहारहि देखि कहा मन छोभत हौ।
क्षत्रिय के कुल ह्वै किमि बैन न दीन रचौ।
कोटि करौ उपचार न कैसहु मीचु बचौ ॥३४॥

लक्ष्मण—

क्षत्रिय ह्वै गुरु लोगन को प्रतिपाल करैं।
भूलिहु तौ तिनके गुन औगुन जी न धरैं।
तौ हमकों गुरुदोष नहीं अब एक रती।
जौ अपनी जननी तुम ही सुख पाइ हती ॥३५॥

---

[३१] मद–मिरि (प्रताप०, सर०)। करि०–यह खाइ (प्रताप०)। कियोई–पियोई (कौमुदी)। [३२] परै–धरै (प्रताप० सर०)। [३३] चित्र-चारु (प्रताप०, सर०); चर्चि (कौमुदी)। बड़ो-बढ़ै (प्रताप०, सर०)। [३४] किमि०–कोउ दीन न बैन रचै (प्रताप०, सर०) [३५] तौ, जौ-त्यौं, ज्यौं (प्रताप०, सर०)।

परशुराम—(मदिरा)

लक्ष्मन के पुरिषान कियो पुरुषारथ सो न कह्यो परई।
बेष बनाइ कियो बनितानि को देखत 'केसव' ह्यौ हरई।
क्रूर कुठार निहारि तजे फल ताको यहै जु हियो जरई।
आजु तें 'केसव' ताकों महा धिक क्षत्रिय पै जु दया करई।।३६।।

(गीतिका)

तब एक बिंसति बेर मैं बिन क्षत्र की पृथिवी रची।
बहु कुंड सोनित सों भरे पितृ-तर्पनादि क्रिया सची।
उबरे जु क्षत्रिय क्षुद्र भूतल सोधि सोधि संघारिहौं।
अब बाल वृद्ध न ज्वान छाँड़हुँ धर्म निर्दय पारिहौं।।३७।।

राम—(दोहा)

भृगुकुल-कमल-दिनेस सुनि, जीति सकल संसार।
क्यों चलिहै इन सिसुन पै, डारत हौ जसभार।।३८।।

परशुराम—(सोरठा)

राम सबंधु संभारि, छोड़त हौं सर प्रानहर।
देहु हथ्यारनि डारि, हाथ-समेतनि वेगि दै।।३९।।

राम—(पद्धटिका)

सुनि सकल लोकगुरु जामदग्नि। तपबिसिष अनेकन की जु अग्नि।
सब बिसिष छाँडि सहिहौं अखंड। हरधनुष करचो जिन खंडखंड।।४०।।

परशुराम—(माधवी)

बान हमारेन के तनत्रान बिचारि विचारि विरंचि करे हैं।
गोकुल, ब्राह्मन, नारि, नपुंसक जे जग दीन स्वभाव भरे हैं।
राम कहा करिहौ तिनको तुम बालक देव अदेव डरे हैं।
गाधि के नंद तिहारे गुरू जिनतें रिषिवेष कियें उबरे हैं।।४१।।

राम—(छप्पय)

भगन भयो हरधनुष साल तुमकों अब सालै।
वृथा होइ बिधि-सृष्टि ईस आसन तें चालै।

---

[३६] 'केसव०'—तो कहँ बंधु (कौमुदी)। [३७] पितृ—पितु (कौमुदी)। ज्वान—तरुन (प्रताप०, काशि०)। [३८] पै—सिर (प्रताप, सर०)। [३९] सबंधु-सुबंधु (कौमुदी)। [४०] सब०—सबिसेष (प्रताप०, सर०)। जिन—हेम (प्रताप०)। [४१] बिचारि—ते पाँच (दीन० २); ति पंच (सर०)। करिहौ—सहिहौ (सर०)।

सकल लोक संघरै सेष सिर तें धर डारै।
सप्त सिंधु मिलि जाहिं होइ सब ही तम भारै।
अति अमल ज्योति नारायनी कहि 'केसव' बुझि जाइ बरु।
भृगुनंद सँभारु कुठार मैं कियो सरासनजुक्त सरु ॥४२॥

(स्वागता)

राम राम जब कोप करच्यो जू। लोकलोक भय भूरि भरच्यो जू।
बामदेव तब आपुन आए। रामदेव दोउन समझाए ॥४३॥

(दोहा)

महादेव कों देखिकै दोऊ राम बिसेष।
कीन्हो परम प्रनाम उन आसिष दियो असेष ॥४४॥

महादेव—(चतुष्पदी)

भृगुनंदन सुनिये, मन मँह गुनिये, रघुनंदन निरदोषी।
निजु ये अविकारी, सब सुखकारी, सबहीं बिधि संतोषी।
एकै तुम दोऊ, और न कोऊ, एकै नाम कहायो।
आयुर्बल खूट्यो, धनुष जू टूट्यो, मैं तन मन सुख पायो ॥४५॥

(पद्धटिका)

तुम अमर अनंत अनादि देव। नहिं वेद बखानत सकल भेव।
सबकों समान नहि वैर-नेह। सब भक्तन कारन धरत देह ॥४६॥
अब आपनपौ पहिचानि विप्र। सब करहु आगिलो काज क्षिप्र।
तब नारायन को धनुष जानि। भृगुनाथ दियो रघुनाथ पानि ॥४७॥

(मोटनक)

नारायन को धनु बान लियो। ऐंच्यो हँसि देवन मोद कियो।
रघुनाथ कह्यो अब काहि हनौं। त्रयलोक कँप्यौ भय मानि घनौं।
दिग्देव दहे बहु बात बहे। भूकंप भए गिरिराज ढहे।
आकास बिमान अमान छए। हा हा सबहीं यह सब्द रए ॥४८॥

परशुराम—(शशिवदना)

जगगुरु जान्यो। त्रिभुवन मान्यो।
मम गति मारौ। समय बिचारौ ॥४९॥

---

[४२] मयो०—कियो मव (कौमुदी)। सालै—सालौं (वही)। बृथा०—नष्ट करौं (वही)। चालै—चालौं। संघरै—संहरहुँ (वही)। डारै, मारै—डारौं, मारौं (काशि०, सर०, कौमुदी)। [४३] दोउन—दोउहि (प्रताप०); सु दोउ (काशि०); दोऊ (सर०)। [४४] दियो—दीन (कौमुदी)। [४६] अमर—अमल (काशि०, कौमुदी)। [४८] रघुनाथ—श्रीराम (प्रताप०, सर०)। रए—मए (सर०)। [४९] समय—हृदय (काशि०)।

(दोहा)

विषयी की ज्यों पुष्पसर गति कों हनत अनंग ।
रामदेव त्योंहीं करी परसुराम-गति भंग ॥५०॥

(चतुष्पदी)

सुरपुर-गति भानी, सासन मानी, भृगुपति को सुख भारौ ।
आसिष-रस-भीने, सब सुख दीने, अब दसकंठहि मारौ ।
अति अमल भए रबि, गगन बढ़ी छबि, देवन मंगल गाए ।
सुरकुल सब हरषे, पुष्पनि बरषे, दुंदुभि दीह बजाए ॥५१॥

(दोहा)

सोवत सीतानाथ के भृगु दीन्ही ही लात ।
भृगुकुलपति की गति हरी, मनो सुमिरि वह बात ॥५२॥

(मधुभार)

दसरथ जगाइ । संभ्रम भगाइ ।
चले रामराइ । दुंदभि बजाइ ॥५३॥

(विजय)

तारिका तारि सुबाहु सँघारि कै गौतम नारि के पातक टारे ।
चाप हत्यो हर को हँसि केसव देव अदेव हुते सब हारे ।
सीतहि ब्याहि अभीत चले गिरिगर्ब चढ़ भृगुनंद उतारे ।
श्रीगरुड़ध्वज को धनु लै रघुनंदन औधपुरी पगु धारे ॥५४॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां परशुरामसंवादवर्णनं नाम सप्तमः प्रकाशः ॥ ७ ॥

---

[५०] रामदेव०—रामचंद्रजू त्यौं करयो भृगुपति की (प्रताप०, सर०) । [५१] सुरपुर—सुरपति (कौमुदी) । सब०—यह बर दीनो (प्रताप०) । सुरकुल—सुरपुर (कौमुदी) । [५२] भृगु०—भृगु मुनि दीन्ही (कौमुदी); भृगुपति—दीन्ही (सर०) । हरी—हनी (प्रताप०, सर०) । मनो०—सुमिरि पाछिली बात (दीन० २) । [५४] हँसि—हठि (कौमदी) ।

८

(सुमुखी)

सब नगरी बहु सोभ रए। जहँ तहँ मंगलचार ठए।
बरनत हैं कबिराज घने। तन मन बुद्धि बिबेक सने ॥१॥

(मोटनक)

ऊँची बहुबर्न पताक लसैं। मानो पर दीपति सी दरसैं।
देवी गन ब्योम बिमान बसैं। सोभैं तिनके सुभ अंचल सैं ॥२॥

(दोहा)

कलभनि लीन्हें कोट पर खेलत सिसु चहुँ ओर।
अमल कमल ऊपर मनो चंचरीक चितचोर ॥३॥

(कलहंस)

पुर आठ आठ दरबार बिराजैं। जुत आठ आठ सेना बल साजैं।
रहै चार चार घटिका परिमानैं। घर जाहिं और जब आवत जानैं ॥४॥

(दोहा)

आठौ दिसि के सील गुन भाषा भेष बिचार।
बाहन बसन बिलोकिये 'केसव' एकहि बार ॥५॥

(कुसुमबिचित्रा)

अति सुभ बीथी रज परिहारी। मलयज लीपी पुहपनि धारी।
दुहु दिसि दीसैं सबरन माए। कलस बिराजैं मनिमय छाए ॥६॥

(तामरस)

घरघर घंटनि के रव बाजैं। बिचबिच संख जु झालरि साजैं।
पटह पखाउज आउझ सोहैं। मिलि सहनाइन सों मन मोहैं ॥७॥

(हीर)

सुंदरि सब सुंदर प्रति मंदिर पुर यों बनी।
मोहनगिरिसृंगनि पर मानहु महि मोहनी।

---

[१] रए–भए (प्रताप०, सर०)। ठए–छाए (प्रताप०)। [२] पुर–सब (प्रताप०)। ब्योम०–देखति ब्योम (सर०)। लसैं–बसैं (प्रताप०, सर०)। सुभ–मुख (कौमुदी)। [३] कलभनि–कलसनि (सर०)। ऊपर–पुरपर (प्रताप०, सर०)। [४] बल–पति (प्रताप०, काशि०)। जाति–जात (कौमुदी)। [६] परिहारी–परिहरे (काशि०, सर०, कौमुदी)। धारी–धरे (वही)। माए–भए (वही)। छाए–नए (वही)। [७] बाजैं–राजैं (प्रताप०)। जु–सु (प्रताप०, सर०)। साजैं–बाजैं (प्रताप०); राजैं (सर०)।

भूषनगन भूषित तन भूरि चितन चोरहीं।
देखत जनु रेखत तनु बान-नयन - कोरहीं ॥८॥

(सुंदरी)

संकर-सैल चढ़ी मन मोहति। सिद्धन की तनया जनु सोहति।
पद्मनि ऊपर पद्मिनि मानहु। रूपनि ऊपर दीपति जानहु ॥९॥
कीरतिश्री जयसंजुत सोहति। श्रीपति-मंदिर की मनमोहति।
ऊपर मेरु मनो मनरोचन। स्वर्नलता जनु रोचति लोचन ॥१०॥

(विशेषक)

एक लिये कर दर्पन चंदन चित्र करे।
मोहति है मन मानहु चंदन चंद्र धरे।
नैन बिसालनि अंबर लालनि ज्योति जगी।
मानहु रागिनि राजति है अनुराग रँगी ॥११॥
नील निचोलन कों पहिरे इक चित्त हरै।
मेघनि की दुति मानहु दामिनि देह धरै।
एकनि के तन सूक्षम सारि जराय जरी।
सूर-करावलि सी जनु पद्मिनि देह धरी ॥१२॥

(तोटक)

बरषै कुसुमावलि एक घनी। सुभ सोभन कामलता सी बनी।
बरषै फल फूलन लायक की। जनु हैं तरुनी रतिनायक की ॥१३॥

(दोहा)

भोर भए गज पर चढ़ें श्रीरघुनाथ बिचारि।
तिनहिं देखि बरनत सबै नगर नागरी नारि ॥१४॥

(तोटक)

तमपुंज लियो गहि भानु मनो। गिरि अंजन ऊपर सोम भनो।
मनमथ्थ बिराजत सोभ तरे। जनु भासत दानहि लोभ धरे ॥१५॥

(मरहट्टा)

आनंदप्रकासी सब पुरवासी करत ते दौरादौरि।
आरती उतारैं सरबसु वारैं अपनी अपनी पौरि।
पढ़ि मंत्र असेषनि करि अभिषेकनि आसिष दै सविसेष।
कुंकुम करपूरनि मृगमद चूरनि वर्षत वर्षा वेष ॥१६॥

---

[८] तनु–मनु (प्रताप०, सर०)। [१०] की–को (कौमुदी)। रोचति-लोचति (प्रताप०, सर०)। [१५] सोम०–सोभ सनै (सर०)। जनु०–जनु राजत काम सिंगार करे (दीन० १, सर०)। [१६] चूरनि–पूरनि (प्रताप०, सर०)।

(आभीर)—यहि बिधि श्रीरघुनाथ। गहे भरथ को हाथ।
पूजित लोक अपार। गए राज-दरबार ॥१७॥
गए एक ही बार। चारौ राजकुमार।
सहित वधून सनेह। कौसल्या के गेह ॥१८॥

(त्रिभंगी)

बाजे बहु बाजैं, तारनि साजैं, मुनि सुर लाजैं, दुख भाजैं।
नाचैं नवनारी, सुमन सिंगारी, गति मनुहारी, सुख साजैं।
वीनानि बजावैं, गीतनि गावैं, मुनिन रिझावैं, मन भावैं।
भूषन पट दीजै, सब रस भीजै, देखत जीजै, छबि छावैं ॥१९॥

(सोरठा)—रघुपति पूरन चंद, देखि देखि सब सुख मढ़ैं।
दिन दूने आनंद, ता दिन तें तेहि पुर बढ़ैं ॥२०॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां धनुषभंजनो नाम अष्टमः प्रकाशः।

९

(दोहा)—रामचंद्र लछिमन सहित घर राखे दशरथ्थ।
बिदा कियो ननसार कों संग सत्रुघ्न भरथ्थ ॥१॥

(तोटक)

दसरथ्थ महा मन मोद रए। तिन बोलि वसिष्ठहि मंत्र लए।
दिन एक कहौ सुभ सोभ रयो। हम चाहत रामहि राज दयो ॥२॥
यह बात भरथ्थ की मातु सुनी। पठऊँ बन रामहि बुद्धि गुनी।
तेहि मंदिर माँ नृप सों बिनयो। वर देहु हुतो हमकों जु दयो ॥३॥
नृप बात कही हँसि हेरि हियो। वर माँगि सुलोचनि मैं जु दियो।
कैकेयी—नृपता सु बिसेष भरथ्थ लहैं। बरषैं बन चौदह राम रहैं ॥४॥

(पद्धटिका)

यह बात लगी उर वज्रतूल। हिय फाट्यो ज्यों जीरन दुकूल।
उठि चले बिपिन कहँ सुनत राम। तजि तात मातु तिय बंधु धाम ॥५॥

---

[१९] छबि-हँसि लीजै (दीन०, प्रताप०, सर०)।

[२] वसिष्ठहि–बसिष्ठ सु (प्रताप०); वसिष्ठ सों (सर०, कौमुदी)। रयो-मयो (प्रताप०)।

[५] तिय–प्रिय (प्रताप०, सर०)।

(हरिलीला)

छूटे सबै सबनि के सुख क्षुत्पिपास। बिद्वद्बिनोद गुन गीतबिधान बास।
ब्रह्मादि अंत्यजनि अंत अनंत लोग। भूले असेष सबिसेषनि राग भोग।।६।।

(मोतियदाम)

गए तहँ राम जहाँ निज मात। कही यह बात की हौं बन जात।
कछू जिनि जी दुख पावहु माइ। सु देहु असीस मिलौं फिरि आइ।।७।।
कौशल्या—रहौ चुप ह्वै सुत क्यों बन जाहु। न देखि सकैं तिनके उर दाहु।
लगी अब बाप तुम्हारेहि बाइ। करैं उलटी बिधि क्यों कहि जाइ।।८।।

राम—(ब्रह्मरूपक)—अन्न देइ सीख देइ राखि लेइ प्रान जात।
राज बाप मोल लै करै जु पोषि दीह गात।
दास होइ पुत्र होइ सिष्य होइ कोइ माइ।
सासना न मानई तौ कोटि जन्म नर्क जाइ।।९।।

कौसल्या—(सारवती)

मोहि चलौ बन संग लियैं। पुत्र तुम्हैं हम देखि जियैं।
औधपुरी महँ गाज परै। कै अब राज भरथ्थ करै।।१०।।

राम—(तोमर)—तुम क्यों चलौ बन आजु। जिन सीस राजत राजु।
जिय जानियै पतिदेव। करि सर्व भाँतिन सेव।।११।।
पति देइ जौं अति दुख्ख। मन मानि लीजै सुख्ख।
सब जक्त जानि अमित्र। पति जानि केवल मित्र।।१२।।

(अमृतगति)—नित पतिपंथहि चलिये। दुखसुख कों दलु दलिये।
तन मन सेवहु पति कों। तब लहिये सुभ गति कों।।१३।।

(स्वागता)

जोग जाग ब्रत आदि जु कीजै। न्हान, गानगुन, दान जु दीजै।
धर्म कर्म सब निष्फल देवा। होंहि एक फल कै पतिसेवा।।१४।।
तात मातु जन सोदर जानौ। देवर जेठ सगे सब मानौ।
पुत्र पुत्रसुत श्री छबिछाई। हैं बिहीन भरता दुखदाई।।१५।।

(कुंडलिया)—नारी तजै न आपनो सपनेहूँ भरतार।
पंगु गुंग बौरो बधिर अंध अनाथ अपार।

---

[६] बिद्वद्बिनोद—बिद्याबिनोद (दीन० प्रताप०)। [७] तहँ—तब (प्रताप०,सर०)। [८] ह्वै—कै (प्रताप०, सर०)। [९] सिष्य-इष्ट (दीन० २)। तौ—सु (प्रताप०, सर०)। [१२] जक्त—जीव (प्रताप०)। [१३] नित पति—नितप्रति (प्रताप०, काशि०, सर०)। [१४] गुन—गन (प्रताप०, काशि); दिन (सर०)। [१५] जन—सुत (प्रताप०, सर०)। देवर०—देव जेठ सब संगिहु (कौमुदी); देवर जेठ सगे सो बखानौ (काशि०)।

अंध अनाथ अपार बृद्ध बावन अति रोगी।
बालक पंडु कुरूप सदा कुवचन जड़ जोगी।
कलही कोढ़ी भीरु चोर ज्वारी बिभिचारी।
अधम अभागो कुटिल कुपति पति तजै न नारी ॥१६॥

(पंकजवाटिका)

नारि न तजहि मरे भरतारहि। ता सँग सहहि धनंजय-झारहि।
जौं केहुँ मिसु करतार जियावत। तौ तेहि कहँ यह बात सुनावत ॥१७॥

(निशिपालिका)—गान बिन मान बिन हास बिन जीवहीं।
तप्त नहि खाहि जल सीतल न पीवहीं।
तेल तजि खेल तजि खाट तजि सोवहीं।
सीत जल न्हाइ नहि उष्न जल जोवहीं ॥१८॥

खाहि मधुरान्न नहिं पाँइ पनहीं धरैं।
काय मन बाच सब धर्म करिबो करैं।
कृच्छ उपवास सब इंद्रियन जीतहीं।
पुत्रसिख-लीन तन जौ लगि अतीतहीं ॥१९॥

(दोहा)—पतिहित पितु पर तनु तज्यो सती साखि दै देव।
लोकलोक पूजित भई, तुलसी पति की सेव ॥२०॥
मनसा बाचा कर्मना हमसों छाड़हु नेहु।
राजा कों बिपदा परी तुम तिनकी सुधि लेहु ॥२१॥

(पद्धटिका)—उठि रामचंद्र लछिमन समेत। तब गए जनकतनया-निकेत।
सुनि राजपुत्रिके एक बात। हम बन पठए हैं नृपति तात ॥२२॥
तुम जननि-सेव कहँ रहहु बाम। कै जाहु आजु ही जनक-धाम।
सुनि चंद्रबदनि गजगमनि ऐनि। मन रुचै सो कीजै जलजनैनि ॥२३॥

सीताजू—(नराच)—न हौं रहौं न जाउँ जू बिदेह-धाम कों अबै।
कही जु बात मातु पै सु आजु मैं सुनी सबै।
लगै क्षुधाहि माँ भली बिपत्ति मांझ नारियै।
पियास-त्रास नीर बीर जुद्ध में सँभारियै ॥२४॥

---

[१६] कुपति–कुमति (कौमुदी)। [१७] सहहि–सहति (प्रताप०, काशि०, सर०)। मिसु–बिधि (कौमुदो)। जियावत–जियावहि (कौमुदी)। सुनावत–जनावत (प्रताप०); चेतावत (सर०); बतावहि (कौमुदी)। [१८] खाहि०–खाय जल सीत नहि (कौमुदी)। नहि०–नित उत्सव न (दीन०, प्रताप०, सर०)। [२४] पै–सों (प्रताप०, सर०)।

लक्ष्मण—(सुप्रिया)

बन महँ विकट बिबिध दुख सुनियै। गिरि गहवर मग अगम ति गुनियैं।
कहुँ अहि हरि कहूँ निसिचर रहहीं। कहुँ दयदहन दुसह दुख दहहीं ॥२५॥

सीताजू—(दंडक)

'केसोदास' नींद भूख प्यास उपहास त्रास, दुख को निवास बिष मुखहू गह्यो परै।
वायु को बहन दिन दावा को दहन, बड़ी बाड़वा अनल ज्वालजाल में रह्यो परै।
जीरन जनमजात जोर जुर घोर परिपूरन प्रगट परिताप क्यों कह्यो परै।
सहिहौं तपन ताप पर के प्रताप रघुबीर को बिरह बीर मोसों न सह्यो परै ॥२६॥

राम—(विशेषक)—धाम रहौ तुम लक्ष्मन राज की सेव करौ।
मातनि के सुनि तात सुदीरघ दुक्ख हरौ।
आइ भरथ्थ कहाँ धौं करैं जिय भाइ गुनौ।
जौं दुख देइँ तौ लै उरगौ यह सीख सुनौ ॥२७॥

लक्ष्मण—(दोहा)—सासन मेटी जाइ क्यों, जीवन मेरे हाथ।
ऐसी कैसे बूझिये, घर सेवक बन नाथ ॥२८॥

(द्रुतविलंबित)

बिपिनमारग राम विराजहीं। सुखद सुंदरि सोदर भ्राजहीं।
बिबिध श्रीफल सिद्धि मनो फल्यो। सकल साधन सिद्धिहि लै चल्यो ॥२९॥

(दोहा)—राम चलत सब पुर चल्यो जहँ तहँ सहित उछाह।
मनो भगीरथ-पथ चल्यो, भागीरथी-प्रवाह ॥३०॥

(चंचला)—रामचंद्र धाम तें चले सुने जबै नृपाल।
बात को कहै सुनै सु ह्वै गए महा बिहाल।
ब्रह्मरंध फोरि जीव यों मिल्यो बिलोक जाइ।
गेह चूरि ज्यों चकोर चंद्र मैं मिलै उड़ाइ ॥३१॥

(चित्रपदा)—रूपहि देखत मोहैं। ईस कहौ नर को हैं।
संभ्रम चित्त अरूझैं। रामहि यों सब बूझैं ॥३२॥

(चंचरी)—कौन हौ कित तें चले कित जात हौ केहि काम जू।
कौन की दुहिता बहू कहि कौन की यह बाम जू।

---

[२५] ति–हिं (कौमुदी०)। रहहीं–करहीं (वही)। दहहीं–सरहीं (वही)। [२६] उपहास–उपवास (दीन० २, प्रताप०)। पर के–पति के (काशि०); राम के (दीन० २)। [२७] जिय०–यह बात (प्रताप०, सर०)। [२९] भ्राजहीं–साजहीं (प्रताप०, दीन० २); साथ ही (दीन० १, सर०)। सिद्धि–सिंधु (प्रताप०, सर०)। [३१] बिलोक–जु लोक (कौमुदी)। चूरि–दूरि (सर०); तूरि (कौमुदी)।

एक गाँउ रहौ कि साजन मित्र बंधु बखानियै।
देस के परदेस के किधौं पंथ की पहिचानियै ॥३३॥

(जगमोहन दंडक)

किधौं यह राजपुत्री बरही बरी है किधौं उपधि बर्यो है यहि सोभा अभिरत हौ।
किधौं रति रतिनाथ जस साथ 'केसोदास' जात तपोबन सिवबैर सुमिरत हौ।
किधौं मुनिसापहत किधौं ब्रह्मदोषरत, किधौं सिद्धिजुत सिद्ध परम बिरत हौ।
किधौं कोऊ ठग हौ ठगौरी लीन्हे किधौं तुम, हर हरि श्री हौ सिवा चाहत फिरत हौ ३४

(मत्तमातंगलीलाकर दंडक)

मेघ मंदाकिनी चारु सौदामिनी रूप रूरे लसैं देहधारी मनो।
भूरि भागीरथी भारती हंसजा अंस के हैं मनो, भाग भारे भनो।
देवराजा लिए देवरानी मनो पुत्रसंजुक्त भूलोक में सोहिये।
पक्ष दूसंधि संध्या सँधी है मनो लक्षिये स्वच्छ प्रत्यक्ष ही मोहिये ॥३५॥

(अनंगशेखर दंडक)

तड़ाग नीरहीन ते सनीर होत 'केसोदास' पुंडरीक झुंड भौंर मंडलीन मंडहीं।
तमाल बल्लरी समेत सूखि सूखिकै रहे ते बाग फूलि फूलिकै समूल सूल खंडहीं।
चितै चकोरनी चकोर मोर मोरनी समेत हंस हंसिनी सुकादि सारिका सबै पढ़ैं।
जहीं जहीं बिराम लेत रामजू तहीं तहीं अनेक भाँति के अनेक भोग भाग सों बढ़ैं ३६

(सुंदरी)

घाम को राम समीप महाबल। सीतहि लागत है अति सीतल।
ज्यों घनसंजुत दामिनि के तन। होत है पूषन के कर भूषन ॥३७॥
मारग की रज तापित है अति। 'केसव' सीतहि सीतल लागति।
प्यौ-पदपंकज ऊपर पाइनि। दै जु चलै तेहि तें सुखदाइनि ॥३८॥

(दोहा)—प्रतिपुर औ प्रतिग्राम की प्रतिनगरन की नारि।
सीताजू कों देखिकै बरनत हैं सुखकारि ॥३९॥

(प्रकर्ष दंडक)

वासों मृगअंक कहैं तोसों मृगनैनी सब, वह सुधाधर तुहूँ सुधाधर मानिये।
वह द्विवराज तेरे द्विजराजि राजै, वह कलानिधि तुहूँ कलाकलित बखानिये।
रत्नाकर के हैं दोऊ 'केसव' प्रकासकर, अंबरबिलास कुबलयहितू गानिये।
वाके अति सीतकर तुहूँ सीता सीतकर, चंद्रमा सी चंद्रमुखी सब जग जानिये ॥४०॥

---

[३३] रहौ–बसौ (प्रताप०, सर०)। [३४] श्री०–सिवा श्रीहि (प्रताप०, सर०); सिवा सिद्धि (दीन० २)। [३५] सँधी–सुधी (प्रताप०); सुधा (सर०)। [३६] तें–कें (प्रताप०, सर०)। [३७] महा–सबै (प्रताप०, सर०)। [३९] देखि०–निरखि मुख (प्रताप० सर०)। [४०] तुहूँ–तुहीं (प्रताप० सर०)।

अन्य उवाच—(मनहरण दंडक)

कलित कलंककेतु, केतुअरि, सेत गात, भोग जोग को अजोग रोग ही को थल सो।
पून्योई कों पूरन पै प्रतिदिन दूनो दीन, छिनछिन छीन होत छीलर को जल सो।
चंद सो जो बरनत रामचंद की दोहाई, सोई मतिमंद कबि 'केसव' कुसल सो।
सुंदर सुबास अरु कोमल अमल अति, सीताजू को मुख सखि केवल कमल सो ॥४१॥

अन्य उवाच

एकै कहैं अमल कमल मुख सीताजू को, एकै कहैं चंदसम आनंद को कंद री।
होइ जौ कमल तौ रयनि में न सकुचै री चंद जौ तौ बासर न होइ दुति मंद री।
बासर ही कमल रजनि ही में चंद, मुख बासर हू रजनि बिराजै जगबंद री।
देखे मुख भावै अनदेखई कमल चंद, तातें मुख मुखै सखी कमलै न चंद री।

(दोहा)—सीतानयन चकोर सखि, रबिबंसी रघुनाथ।
रामचंद्र सिय कमलमुख, भलो बन्यो है साथ ॥४३॥

(चंद्रकला)

बहु बाग तड़ाग तरंगिनि तीर तमाल की छाँह बिलोकि भली।
घटिका इक बैठत हैं सुख पाइ बिछाइ तहाँ कुस काँस थली।
मग को श्रम श्रीपति दूर करैं सिय को, सुभ बाकल अंचल सों।
श्रम तेऊ हरैं तिनको कहि 'केसव' चंचल चारु दृगंचल सों ॥४४॥

(सोरठा)—श्री रघुबर के इष्ट, अश्रुबलित सीता-नयन।
साँची करी अदृष्ट, झूठी उपमा मीन की ॥४५॥

(दोहा)—मारग यों रघुनाथजू, दुख सुख सबहीं देत।
चित्रकूट पर्बत गए, सोदर-सिया समेत ॥४६॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां रामस्य चित्रकूटगमनन्नाम नवमः प्रकाशः ॥

---

[४१] रोग०—जोग जोग हो के बलु सो (दीन० २)। प्रति०—प्रान दिन ऊनो ऊनो (कौमुदी)। कुसल—मुसल (वही)। [४२] सम—मय (प्रताप०, सर०)। भावै०—भावतो न देख्योहँ (प्रताप०, सर०)। [४४] बहु—कहुँ (कौमुदी)। सुभ—सुचि (प्रताप०, सर०)। सों—कै (वही)।

१०

(दोध)-आनि भरथ्थ पुरी अवलोकी। थावर जंगम जीव ससोकी।
भाट नहीं बिरदावलि साजैं। कुंजर गाजैं न दुंदुभि बाजैं ॥१॥
राजसभा न बिलोकिय कोऊ। सोक गहे तब सोदर दोऊ।
मंदिर मातु बिलोकि अकेली। ज्यों बिन बृक्ष बिराजति बेली ॥२॥

(तोटक)-तब दीरघ देखि प्रनाम कियो। उठि कै उन कंठ लगाइ लियो।
न पियो जल संभ्रम भूलि रहे। तब मातु सों बात भरथ्थ कहे ॥३॥

(चंद्रकला)

कहु मातु कहाँ नृप ? तात गए सुरलोकहि, क्यों ? सुत सोक लए।
सुत कौन सु ? राम, कहाँ हैं अबै ? बन लक्ष्मन सीय समेत गए।
बन काज कहा कहि ? केवल मो सुख, यामें कहा सुख तोकों भए।
तुमकों प्रभुता, धिक तोकों कहा अपराध बिना सिगरेई हए ॥४॥

(दोहा)— भर्ता-सुत-बिद्वेषिनी सब ही कों दुखदाइ।
यह कहि देखे भरथ तब कौसल्या के पाइ ॥५॥

(तोटक)-तब पाइनि जाइ भरथ्थ परे। उन भेंटि उठाइकै अंक भरे।
सिर सूँघि बिलोकि बलाइ लई। सुत तो बिन या बिपरीत भई ॥६॥

भरत—(तारक)

सुनु मातु भई यह बात अनैसी। जु करी सुत-भर्तृ-बिनासिनि जैसी।
यह बात भई अब जानत जाके। द्विजदोष परैं सिगरे सिर ताके ॥७॥

भरत—जिनके रघुनाथबिरोध बसै जू। मठधारिन के तिन पाप ग्रसै जू।
रसराम-रस्यो मन नाहिन जाका। रन में नित होइ पराजय ताका ॥८॥

कौसल्या-जनि सौंहैं करौ तुम पुत्र सयाने। अति साधु चरित्र तुम्हैं हम जाने।
सबकों सब काल सदा सुखदाई। जिय जानति हौं सुत ज्यों रघुराई ॥९॥

(चंचरी)—हाइहाइ जहाँ तहाँ सब ह्वै रही सिगरी पुरी।
धामधामनि सुंदरी प्रगटीं सबै जे हुतीं दुरी।
लै गए नृपनाथ कों सब लोग श्रीसरजूतटी।
राजपत्नि-समेत पुत्रनि बिप्रलाप-गटी रटी ॥१०॥

---

[२] सोक—सोच (प्रताप०, सर०)। [३] तब—पुनि (कौमुदी)। बात—बैन (वही)।
[४] केवल—केसव (दीन० २)। [६] या—ह्याँ (प्रताप०, सर०)। [७] अब—जिय (प्रताप०); कछु (सर०)। [९] हम—सब (प्रताप०, सर०)। [१०] सब—अति (प्रताप०, र०)। हुतीं—रहीं (कौमुदी)।

(सोमराजी)—करी अग्निअर्चा । मिटी प्रेतचर्चा ।
सबै राजधानी । भई दीन बानी ॥११॥

(कुमारललिता)—क्रिया भरथ कीनी । वियोगरस-भीनी ।
तजी गति नवीनी । मुकुंदपद-लीनी ॥१२॥

(तोटक)—पहिरे बकला सु जटा धरिकै । निज पाइन पथ चले अरिकै ।
तरि गंग गए गुह संग लिये । चित्रकूट विलोकत छाँडि दिये ॥१३॥

(मदनमोहन दंडक)

सब सारस हंस भए खग खेचर बारिद ज्यों बहु बारन गाजे ।
बन के नर बानर किन्नर बालक लै मृग ज्यों मृगनायक भाजे ।
तजि सिद्ध समाधिन 'केसव' दीरघ दौरि दरीन में आसन साजे ।
भूतल भूधर हाले अचानक आइ भरथ्थ के दुंदुभि बाजे ॥१४॥

(दोहा)—रामचंद्र लक्ष्मनसहित, सोभित सीतासंग ।
'केसवदास' सहास उठि, चढ़े धरनिधरसृंग ॥१५॥

लक्ष्मण—(मोहन)

देखहु भरथ चमू सजि आए । जानि अबल हमकों उठि धाए ।
हींसत हय बहु बारन गाजैं । दीरघ जहँ तहँ दुंदुभि बाजैं ॥१६॥

(तारक)—गजराजनि ऊपर पाखर सोहैं । अति सुंदर सीस-सिरी मन मोहैं ।
मनिघूँघुर घंटनि के रव बाजैं । तड़िताजुत मानहुँ बारिद गाजैं ॥१७॥

(मत्तगयंद)—जुद्ध कों आजु भरथ्थ चढ़े धुनि दुंदुभि की दसहूँ दिसि धाई ।
प्रात चली चतुरंग चमू बरनी सु न 'केसव' कैसेहु जाई ।
यों सबके तनत्रानिनि में झलकी अरुनोदय की अरुनाई ।
अंतर तें जनु रंजन कों रजपूतन की रज ऊपर आई ॥१८॥

(तोटक)—उड़िकै धर धूरि अकास चली । बहु चंचल बाजिखुरीन दली ।
भुव हालति जानि अकासहि ये । जनु थंभित ठौरनि ठौर किये ॥१९॥

(तारक)—रन राजकुमार अरूझहिंगे जू । अति सन्मुख घायनि जूझहिंगे ।
जनु ठौरनि ठौरनि भूमि नवीने । तिनके चढ़िबे कहँ मारग कीने ॥२०॥

सीताजू

(तोटक)—रहि पूरि बिमाननि ब्योमथली । तिनकों जनु टारन धुरि चली ।
परिपूरि अकासहिं धूरि रही । सु गयो मिटि सूरप्रकास सही ॥२१॥

---

[१२] गति—मति (प्रताप०, सर०) । [१४] आइ—आनि (प्रताप०, सर०) । [१५] सहित—दुवौ (प्रताप०, सर०) । [१८] ऊपर—बाहर (कौमुदी) । [१९] उड़ि—उठि (काशि०, सर०) । अकासहि—अकालहि (कौमुदी) । [२०] सन्मुख—सामुहे (दीन०, प्रताप०) । [२१] धूरि—भूमि (कौमुदी) । सही—मही (प्रताप०; तही (सर०) ।

(दोहा)—अपने कुल को कलह क्यों देखहिं रबि भगवंत।
यहै जानि अंतर कियो मानो मही अनंत ॥२२॥

(तोटक)—बहु तांमहँ दीह पताक लसैं। जनु धूम में अग्नि की ज्वाल बसैं।
रसना किधौं काल कराल घनीं। किधौं मीचु नचै चहुँ ओर बनीं ॥२३॥

(दोहा)—देखि भरथ की चल ध्वजा धूरनि में सुख देति।
जुद्ध जुरन कों मनहुँ प्रतिजोधनि बोले लेति ॥२४॥

लक्ष्मण—(मनहरण दंडक)

मारि डारौं अनुज समेत यहि खेत आजु मेटि डारौं दीरघ बचन निज गुर को।
सीतानाथ सीतासाथ बैठे देखि छत्रतर यहि सुख सोखौं सोक सबही के उर को।
'केसोदास' सबिलास बीसबिसे बास होइ कैकेई के अंगअंग सोक पुत्रजुर को।
रघुनाथजू को साज सकल छड़ाइ लेउँ भरथहि आजु राजु देउँ प्रेतपुर को ॥२५॥

(दोहा)—एक राज महँ प्रगट जहँ द्वै प्रभु 'केसवदास'।
तहाँ बसत है रैनिदिन मूरतिवंत बिनास ॥२६॥

(कुसुमविचित्रा)

तब सब सेना वहि थल राखी। मुनिजन लीने सँग अभिलाषी।
रघुपति के चरननि सिर नाए। उन हँसिकै गहि कंठ लगाए ॥२७॥

भरत (दोधक)–मातु सबै मिलिबे कहँ आईं। ज्यों सुत कों सुरभी सु लवाईं।
लक्ष्मन स्यौ उठिकै रघुराई। पाइनि जाइ परे दोउ भाई ॥२८॥
मातनि कंठ उठाइ लगाए। प्रान मनो मृत देहनि पाए।
आनि मिली तब सीय सभागी। देबर सासुन के पग लागी ॥२९॥

(तोमर)—तब पूछियो रघुराइ। सुख है पिता तन माइ।
तब पुत्र को मुख जोइ। क्रम तें उठीं सब रोइ ॥३०॥

(दोधक)—आँसुनि सों सब पर्वत धोए। जंगम को जड़ जीवनि रोए।
सिद्धवधू सिगरी सुनि आईं। राजवधू सबई समुझाईं ॥३१॥

(सुखदा)—धरि चित्त धीर। गए गंगतीर। सुचि ह्वै सरीर। पितु तर्पि नीर ॥३२।

भरत—(तारक)

घर कों चलिये अब श्रीरघुराई। जन हौं तुम राज सदा सुखदाई।
यह बात कही जल सों गल भीनो। उठि सोदर पाँव परे तव तीनो ॥३३॥

---

[२५] मेटि०–मेटि पारौं (कौमुदी) दीरघ–केवल (प्रताप०); केसव (दीन०, सर०)। रघुनाथ–रघुराज (काशि०, सर०)। प्रेत–जम (वही)। [२७] सब–उन (प्रताप०, सर०)। चरननि–पायनि (वही)। [२८] सु लवाईं–अलवाईं (प्रताप०, सर०)। दोउ०–रघुराई (प्रताप०); अकुलाई (सर०)। [३१] जंगम०–जड़ जंगम को जीवहु (कौमुदी); जीव कहा जड़ जंगम (प्रताप०)।

श्रीराम—(दोधक)

राज दियो हमकों बन रूरो। राज दियो तुमकों अब पूरो।
सो हमहूँ तुमहूँ मिलि कीजै। बाप को बोल न नेकहु छीजै ॥३४॥

(दोहा)—राजा को अरु बाप को बचन न मेटै कोइ।
जौ न मानिये भरत तौ मारे को फल होइ ॥३५॥

भरत (स्वागता)—मद्यपान रत स्त्रीजित होई। सन्निपातजुत बातुल जोई।
देखि देखि तिनकों सब भागै। तासु बैन हनि पाप न लागै ॥३६॥
ईस ईस जगदीस बखान्यो। बेदवाक्यबल तें पहिचान्यो।
ताहि मेटि हटिकै रहिहौं जौ। गंगतीर तन कों तजिहौं तौ ॥३७॥

(दोहा)—मौन गही यह बात कहि छोड्यो सबै बिकल्प।
भरथ जाइ भागीरथी तीर करयो संकल्प ॥३८॥

(इंद्रबज्रा)—भागीरथी रूप अनूपकारी। चंद्राननी लोचन-कंजधारी।
बानी बखानी सुखतत्व सोध्यो। रामानुजै आनि प्रबोध बोध्यो ॥३९॥

(उपेंद्रवज्रा)—अनेक ब्रह्मादि न अंत पायो। अनेकधा बेदन गीत गायो।
तिन्हैं न रामानुज बंधु जानौ। सुनौ सुधी केवल ब्रह्म मानौ ॥४०॥
निजेच्छया भूतल देहधारी। अधर्मसंहारक धर्मचारी।
चले दसग्रीवहि मारिबे कों। तपी ब्रती केवल पारिबे कों ॥४१॥
उठौ हठी होहु न काज कीजै। कहैं कछू राम सो मानि लीजै।
अदोष तेरी सुत मातु सोहै। सो को जु माया इनकी न मोहै ॥४२॥

(दोहा)—यह कहिकै भागीरथी, 'केसव' भई अदृष्ट।
भरथ कह्यो तब राम सों देहु पादुका इष्ट ॥४३॥

(उपेंद्रवज्रा)—चले बली पावन पादुका लै। प्रदक्षिना रामसियाहि कों दै।
गए ते नंदीपुर बास कीनो। सबंधु श्रीरामहि चित्त दीनो ॥४४॥

(दोहा)—'केसव' भरथहि आदि दै देस नगर के लोग।
बन-समान घरघर बसे सकल बिगतसंभोग ॥४५॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां
भरतस्य चित्रकूटागमनं नाम दशमः प्रकाशः ॥१०॥

---

[३४] अब–सब (प्रताप०); परि (कौमुदी)। [३०] पहिचान्यो–सब जानो (प्रताप०, सर०)। [४०] अनेक–अनंत दीन०, प्रताप०, सर०)। ब्रह्म–बिष्नु (दीन० २)। [४१] ब्रती–जपी (प्रताप०, सर०)। [४२] को जु–कौन (कौमुदी)। [४५] देस–सकल (कौमुदी)।

११

(रथोद्धता)—चित्रकूट तब रामजू तज्यो। जाइ जज्ञथल अत्रि को भज्यो।
राम लक्ष्मनसमेत देखियो। आपनो सफल जन्म लेखियो ॥१॥

अत्रि—(चंद्रवर्त्म)

स्नान दान तप जप जो करियो। सोधि सोधि व्रत जो उर धरियो।
जोग जाग हम जा लग गहियो। रामचंद्र सबको फल लहियो ॥२॥

(वंशस्थविल)—अनेकधा पूजन अत्रिजू करच्यो। कृपालु ह्वै श्रीरघुनाथजू धरच्यो।
पतिव्रता देवि महर्षि की जहाँ। सुबुद्धि सीता सुखदा गई तहाँ ॥३॥

(दोहा)—पतिव्रतन की देवता अनुसूया सुभगाथ।
सीताजू अवलोकियो जरा-सखी के साथ ॥४॥

(चतुष्पदी)—सिर सेत बिराजै, कीरति राजै, जनु 'केसव' तपबल की।
तनु बलित पलित जनु, सकल बासना, निकसि गई थलथल की।
काँपति सुभ ग्रीवाँ, सब अंग सीवाँ, देखत चित्त भुलाहीं।
जनु अपने मन प्रति, यह उपदेसति, या जग में कछु नाहीं ॥५॥

(प्रमिताक्षरा)

हरुवाइ जाइ सिय पाँइ परी। रिषिनारि सूँघि सिर गोद धरी।
बहु अंगराग अंगअंग रए। बहु भांति ताहि उपदेस दए ॥६॥

(स्रग्विणी)

राम आगे चले मध्य सीता चली। बंधु पाछे भए सोभ सोभै भली।
देखि देही सबै कोटिधा कै भनो। जीव जीवेस के बीच माया मनो ॥७॥

(मालती)-विपिन बिराध बलिष्ठ देखियो। नृपतनया भयभीत लेखियो।
तब रघुनाथ बान कै हयो। निज निरबान-पंथ कों ठयो ॥८॥

(दोहा)—रघुनायक सायक धरे सकल लोक-सिरमौर।
गए कृपा करि भक्तिबस रिषि अगस्ति के ठौर ॥९॥

(वसंततिलक)

श्रीराम लक्ष्मन अगस्ति सनारि देख्यो। स्वाहासमेत सुभ पावकरूप लेख्यो।
साष्टांग क्षिप्र अभिबंदन जाइ कीन्हो। सानंद आसिष असेष रिषीस दीन्हो ॥१०॥

---

[२] व्रत०—मन जो उर (काशि०, सर०); उर माँझ जु (कौमुदी)। [६] सिय—पगु सीय (प्रताप०, सर०)। गोद—अंक भरी (वही)। बहु०—अरु भाँति भाँति (वही)। [८] नृप०—अपनो जनम सुफल कै (दीन० २)। ठयो—गयो (प्रताप०, सर०)।

वैठारि आसन सबै अभिलाष पूजे। सीतासमेत रघुनाथ सवंधु पूजे।
जाके निमित्त हम जज्ञ जज्यो सु पायो। ब्रह्मांडमंडन स्वरूप जु वेद गायो ॥११॥

अगस्त्य—(पद्धटिका)

ब्रह्मादि देव जब बिनय कीन। तट छीरसिंधु के परम दीन।
तुम कह्यो देव अवतरहु जाइ। सुत ह्वै दसरथ को होत आइ ॥१२॥
हम तबतें मन आनंद मानि। मग चितवत तव आगमन जानि।
ह्याँ रहिजे करिजे देवकाजु। मम फूलि फल्यो तपवृक्ष आजु ॥१३॥

राम (पृथ्वी)—अगस्ति रिषिराजजू बचन एक मेरो सुनौ।
प्रसस्त सब भाँति भूतल सुदेस जी में गुनौ।
सनीर तरुखंडमंडित समृद्ध सोभा धरैं।
तहाँ हम निवास कों बिमल पर्नसाला करैं ॥१४॥

अगस्त्य—(पद्मावती)

जद्यपि जग करता, पालक हरता, पूरन वेदन गाए।
तदपि कृपा करि, मानुषवपु धरि, थल पूछन हमसों आए।
सुनि सुरबरनायक, रक्षसघायक; रक्षहु मुनि जस लीजै।
सुभ गोदावरितट, बिसद पंचवट, पर्नकुटी तहँ कीजै ॥१५॥

(दोहा)—'केसव' कहे अगस्ति के पंचवटी के तीर।
पर्नकुटी पावन करी, रामचंद्र रनधीर ॥१६॥

(त्रिभंगी)—फलफूलनि पूरे, तरुवर रूरे कोकिलकुल कलरव बोलैं।
अति मत्त मयूरी, पियरस पूरी, बनवन प्रति नाचति डोलैं।
सारी सुक पंडित, गुनगनमंडित, भावनमय अरथ बखानैं।
देखे रघुनायक, सीय सहायक, मनहु मदन रति मधु जानैं ॥१७॥

लक्ष्मण—(दुर्मिला)

सब जाति फटी दुख की दुपटी कपटी न रहै जहँ एक घटी।
निघटी रुचि मीचु घटी हूँ घटी जगजीव जतीन की छूटी चटी।

---

[१२] होत–होव (कौमुदी)। [१३] तव–बन (कौमुदी) तप–नय (काशि०)। [१४] कों–की (कौमुदी)। [१५]पूरन–परिपूरन(प्रताप०,काशि०,सर०,कौमुदी)। तदपि–अति तदपि (काशि०, कौमुदी); अब तदपि (सर०)। मानुष–माया (प्रताप०, सर०)। रक्षहु०–रक्षहु मुनिजन (कौमुदी); सब रक्षहु मुनि (प्रताप०)। तहँ तहँ प्रभु (सर०; कौमुदी)। [१७] अरथ-वचन (प्रताप०, सर०)।

अघओघ की बेरी कटी बिकटी निकटी प्रकटी गुरुज्ञान-गटी ।
चहुँ ओरनि नाचति मुक्तिनटी गुन धूरजटी जटी पंचवटी ॥१८॥

(हाकलिका)—सोभत दंडक की रुचि बनी । भाँतिन भाँतिन सुंदर घनी ।
सेव बड़े नृप की जनु लसै । श्रीफल भूरि भाव जहँ बसै ॥१९॥
बेर भयानक सी अति लगै । अर्कसमूह जहाँ जगमगै ।
नैननि कों बहु रूपनि ग्रसै । श्रीहरि की जनु मूरति लसै ॥२०॥

राम—(दोधक)

पांडव की प्रतिमा सम लेखौ । अर्जुन भीम महामति देखौ ।
है सुभगा सम दीपति पूरी । सिंदुर कों तिलकावलि रूरी ॥२१॥

सीता—

राजति है यह ज्यों कुलकन्या । धाइ बिराजति है संग धन्या ।
केलिथली जनु श्रीगिरिजा की । सोभ धरे सितिकंठप्रभा की ॥२२॥

राम—

अति निकट गोदावरी पापसंहारिनी । चल तरंगतुंगावली चारु संचारिनी ।
अलि कमल सौगंध लीला मनोहारिनी । बहुनयन देवेस-सोभा मनोधारिनी ॥२३॥

(दोधक)—रीति मनो अबिबेक की थापी । साधुन की गति पावत पापी ।
कंजज की मति सी बड़भागी । श्रीहरिमंदिर सों अनुरागी ॥२४॥

(अमृतगति)—निपट पतिव्रतधरनी । मग-जन को सुखकरनी ।
निगति सदा गति सुनिये । अगति महापति गुनिये ॥२५॥

(दोहा)—बिषमय यह गोदावरी अमृतनि के फल देति ।
'केसव' जीवनहार को दुख असेष हरि लेति ॥२६॥

(त्रिभंगी)—जब जब धरि बीना प्रकट प्रबीना बहु गुनलीना सुख सीता ।
पिय जियहि रिझावै दुखनि भजावै बिबिध बजावै गुनगीता ।
तजि मतिसंसारी बिपिनबिहारी सुखदुखकारी घिरि आवैं ।
तबतब जगभूषन रिपुकुलदूषन सबकों भूषन पहिरावैं ॥२७॥

---

[१८] जतीन–जटीन (दीन०, प्रताप०, सर०) । चटी–तटी (कौमुदी) । जटी–यह (प्रताप०); बन (कौमुदी) । [१९] रुचि–बहू (प्रताप०, सर०) । [२०] लसै–बसै (काशि०) । [२१] कों–सों (सर०); औ (कौमुदी) । [२२] राजति–सोहति (प्रताप०, सर०) । [२३] निकट–निकट सुबेस (प्रताप०, सर०) । चल–तरलतर (वही) । अलि०–अमल कमल सुभ्र (प्रताप०) । देवेस–सुरेस (प्रताप०, सर०) । [२५] मगजन–मगजग (प्रताप०), जगजन (काशि०, सर०) । सुख०–दुखहरनी (काशि०) । निगति–निगम (काशि०) । महापति–महागति (प्रताप०); महामति (सर०) । [२७] गुन–रस (प्रताप०, सर०) । रिपुकुल–रिपुदल (प्रताप०, सर०) ।

(तोटक)—कबरी कुसुमालि सिखीन दई। गजकुंभनि हारनि सोभ भई।
मुकुता सुक-सारिक-नाक रचे। कटि-केहरि किंकिनि सोभ सचे ॥२८॥
दुलरी कल कोकिलकंठ बनी। मृग खंजन अंजन भाँति घनी।
नृपहंसनि नूपुर सोभ भिरी। कलहंसनि कंठनि कंठसिरी ॥२९॥
मुखबासनि बासित कीन तबै। तृन गुल्म लता तरु सैल सबै।
जलहूँ थलहूँ यदि रीति रमैं। बनजीव जहाँ तहँ संग भ्रमैं ॥३०॥

(दोहा)—सहज सुगंध सरीर की दिसि बिदिसनि अवगाहि।
दूती ज्यों आई लियें 'केसव' सूपनखाहि ॥३१॥

(मरहट्टा)—एक दिन रघुनायक, सीय सहायक, रतिनायक अनुहारि।
सुभ गोदावरितट, बिसद पंचबट, बैठे हुते मुरारि।
छबि देखतहीं मन, मदन मथ्यो तन, सूर्पनखा तेहि काल।
अति सुंदर तनु करि, कछु धीरज धरि, बोली बचन रसाल ॥३२॥

सूर्पणखा—(मत्तगयंद)

किन्नर हौ नररूप बिचक्षन जक्ष कि स्वच्छ सरीरनि सोहौ।
चित्त चकोर के चंद किधौं मृगलोचन चारु बिमाननि रोहौ।
अंग धरे कि अनंग हौ 'केसव' अंगी अनेकन के मन मोहौ।
बीर जटान धरे धनुबान लिये वनिता बन में तुम को हौ ॥३३॥

राम—(मनोरमा)

हम हैं दसरथ्थ महीपति के सुत। सुभ राम सु लक्ष्मन नामनि संजुत।
यह सासन दै पठए नृप कानन। मुनि पालहु मारहु राकस के गन ॥३४॥

सूर्पणखा—

नृप रावन की भगिनी गनि मोकहँ। जिहि की ठकुराइति तीनहु लोकहँ।
सुनिजै दुखमोचन पंकजलोचन। अब मोहि करो पतिनी मनरोचन ॥३५॥

(तोमर)—तब यों कह्यो हँसि राम। अब मोहि जानि सबाम।
तिय जाइ लक्ष्मन देखि। सम रूप जौबन लेखि ॥३६॥

सूर्पणखा—(दोधक)

राम सहोदर मो तन देखौ। रावन की भगिनी जिय लेखौ।
राजकुमार रमौ सँग मेरे। होहिं सबै सुख संपति तेरे ॥३७॥

---

[२९] भाँति–सोम (कौमुदी)। घनी–ठनी (काशि०); मनी (सर०)। नृप–पग (प्रताप०)। [३१] सुगंध–सुबास (प्रताप०, सर०)। दिसि०–बन उपबन (दीन० २)। [३२] बिसद-बिमल (कौमुदी)। तनु–बपु (प्रताप०, सर०)। [३३] अनेकन–अनंगनि (प्रताप०, सर०)। [३४] यह०–हौं सिख (दीन० २); नृप सासन लै (सर०)। मारहु–घालहु (कौमुदी)।

लक्ष्मण—(दोधक)

वै प्रभु हौं जन जानि सदाई। दास भए महँ कौनि बड़ाई।
जौ भजिये प्रभु तौ प्रभुताई। दासि भए उपहास सदाई ॥३८॥

(मल्लिका)—हास के बिलास जानि। दीह मानखंड मानि।
भक्षिबे कौं चित्त चाहि। सामुहें भई सियाहि ॥३९॥

(तोमर)—तब रामचंद्र प्रबीन। हँसि बंधु त्यों दृग दीन।
गुनि दुष्टता सह लीन। श्रुति नासिका बिनु कीन ॥४०॥

(दोहा)—सोनछिछि छूटत बदन भीम भई तेहि काल।
मानो कृत्या कुटिल जुत पावकज्वाल कराल ॥४१॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां शूर्पणखाश्रवणनासिकाछेदननामैकादशः प्रकाशः ॥११॥

१२

(तोटक)—गइ सूपनखा खरदूषन पै। सजि ल्याई तिन्हैं जगभूषन पै।
सर एक अनेक ते दूरि किये। रबि के कर ज्यों तमपुंज पिये ॥१॥

(मनोरमा)

बृष के खरदूषन ज्यों खर दूषन। तब दूरि किये रबि के कुलभूषन।
गदसत्तु त्रिदोष ज्यों दूरि करै बर। त्रिसिरा-सिर त्यों रघुनंदन के सर ॥२॥

(दोहा)—खरदूषन सों जुद्ध बड़ भयो अनंत अपार।
सहस चतुर्दस राकसन मारत लगी न बार ॥३॥
गई अंध दसकंध पै खरदूषनहि जुझाइ।
सूपनखा लखि मन सिया बेष सुनायो जाइ ॥४॥

(दंडक)

मयकी सुता धौं को है मोहनी ह्वै मोहै मन आजुलौं न सुनी सु तौ नैननि निहारिये।
देहदुति दामिनीहू नेह कामकामिनीहू, एक लोम ऊपर पुलोमजा बिचारिये।
भाग पर कमला सुहाग पर बिमलाहू, बानी पर बानी 'केसोदास' सुखकारिये।
सातदीप सातलोक सातहु रसातल की तीयन की गीता सबै सीता पर वारिये ॥५॥

---

[३८] महँ–तोहि (प्रताप०); तुम (सर०)। [४०] बंधु–अनुज (प्रताप०, काशि०, सर०)।

[२] बृष–बिधि (दीन० २)। तब–सब (कौमुदी)। [५] ह्वै–हि (प्रताप०); (हू सिर०)। मन–ऐसी (प्रताप०, सर०)। नेह–मोह (प्रताप०)। गीता–गोत (कौमुदी)।

(मनोरमा)

भजि सूपनखा गइ रावन पै तब। त्रिसिरा-खरदूषन नास करो सब।
तब सुपनखा मुख बात सबै सुनि। उठि रावन गो जहँ मारिच हो मुनि ॥६॥

(दोधक)—रावन बात कही सिगरी त्यों। सूपनखाहिं विरूप करी ज्यों।
राकस राम अनेक सँघारे। दूषन स्यौं त्रिसिरा खर मारे ॥७॥

तू अब होहि सहायक मेरो। हौं बहुतै गुन मानिहौं तेरो।
जौ हरि सीतहि ल्यावन पैहैं। वै भ्रमि सोकनहीं मरि जैहैं ॥८॥

मारीच—(दोधक)

रामहि मानुष कै जनि जानौ। पूरन चौदह लोक बखानौ।
जाहु जहाँ तिय लै सु न देखौं। हौं हरि कों जलहू थल लेखौं ॥९॥

रावण—(सुंदरी)

तू अब मोहि सिखावत है सठ। मैं बस जक्त कियो अपनी हठ।
बेगि चलै अब देहि न ऊतर। देव सबै जन एक नहीं हर ॥१०॥

(दोहा)—जानि चल्यो मारीच मन मरन दूहूँ बिधि आसु।
रावन के कर नरक है हरिकर हरिपुरवासु ॥११॥

राम—

राजसुता एक मंत्र सुनौ अव। चाहत हौं भुवभार हर्‌यो सब।
पावक में निज देहहि राखहु। छाय-सरीर मृगैं अभिलाषहु ॥१२॥

(चामर)

आइयो कुरंग एक चारु हेम हीर को। जानकी समेत चित्त मोहि राम बीर को।
राजपुत्रिका समीप साधु बंधु राखकै। हाथ चाप बान लै गए गिरीस नाखिकै ॥१३॥

(दोहा)—रघुनायक जबहीं हन्यो, सायक सठ मारीच।
'हा लछिमन' यह कहि गिरो, श्रीपति के स्वर नीच ॥१४॥

(निशिपालिका)

राजतनया तबहिं बोल सुनि यों कह्यो। जाहु चलि देवर न जात हम पै रह्यो॥
हेममृग होहिं नहिं रैनिचर जानियो। दीन स्वर राम केहि भाँति मुख आनियो १५

[६] सबै–जवै (कौमुदी)। मुनि–पुनि (प्रताप०, सर०)। [७] सूप०–सूपनखा सु (प्रताप०, सर०)। राकस–एकहि (कौमुदी)। स्यौं–त्यौं (प्रताप०)। [८] जौ–हौं (प्रताप० सर०)। [९] तिय–सिय (कौमुदी)। [१०] जक्त०–लोक करे (कौमुदी)। हर–हरि (दीन० २)। [११] है–निजु (प्रताप०, सर०)। [१४] सठ–एक (प्रताप०); सो (सर०)। श्रीपति–रघुपति (सर०)। [१५] जात–जाइ (प्रताप, सर०)।

लक्ष्मण—(निशिपालिका)

सोच अति पोच उर मोचि दुखदानिये । मातु यह बात अवदात मम मानिये ।
रैनिचर छद्म बहु भाँति अभिलाषहीं । दीन स्वर राम कबहूँ न मुख भाषहीं ॥१६॥

(चंचला)

पक्षिराज जक्षराज प्रेतराज जातुधात । देवता अदेवता नृदेवता जिते जहान ।
पर्बतारि अर्ब खर्ब सर्ब सर्बथा बखानि। कोटि कोटि सूर चंद्र रामचंद्र-दास मानि ॥१७॥

(चामर)

राजपुत्रिका कह्यो सु और को कहै सुनै । कान मूँदि बार बार सीस बीसधा धुनै ।
चापकीय रेख खाँचि देव साखि दै चलै । नाखिहैं ते भस्म होहिं जीव जे बुरे भले ॥१८॥

(चामर)—छिद्र ताकि छुद्रबुद्धि लंकनाथ आइयो ।
भक्षु जानि जानकी सु भीख कौं बुलाइयो ।
सोच पोच मोचिकै सकोच भीम भेष को ।
अंतरिक्ष ही हरी ज्यों राहु चंद्ररेख को ॥१९॥

(दंडक)

धूमपुर के निकेत मानो धूमकेतु की सिखा कै धूमजोनिमध्य रेखा सुधाधाम की ।
चित्र की सी पुत्रिका कै रूरे बगरूरे माहि, संबर छड़ाइ लई कामिनी कै काम की ।
पाखंडी की श्रद्धा कै मठेसबस एकादसी, लीनी कै स्वपचराज साखा सुद्ध साम की ।
'केसव' अदृष्टसाथ जीवजोति जैसी तैसी, लंकनाथ हाथ परी छायाजाया राम की।२०।

सीता—(वसंततिलका)

हा राम हा रमन हा रघुनाथ धीर । लंकाधिनाथबस जानहु मोहि बीर ।
हा पुत्र लक्ष्मन छुड़ावहु वेगि मोहि । मार्तंडबंसजस की सब लाज तोहि ॥२१॥
पंछी जटायु यह बात सुनंत धाइ । रोक्यो तुरंत बल रावन दुष्ट जाइ ।
कीन्हो प्रचंड रथ छत्रध्वजाबिहीन । छोड्यो बिपक्ष तब भो जब पक्षहीन ॥२२॥

(संयुक्ता)—दसकंठ सीतहि लै चल्यो । अति वृद्ध गीधहि यों दल्यो ।
चित जानकी अध कों कियो । हरि तीन-द्वै अवलोकियो ॥२३॥
पद पद्म की सुभ घूँघरी । मनिनील हाटक सों जरी ।
जुत-उत्तरीय विचारिकै । भुव डारि दी पग टारिकै ॥२४॥

(दोहा)—सीता के पदपद्म के नूपुर-पट जनि जानु ।
मनहुँ करयो सुग्रीव-घर राजश्री-प्रस्थानु ॥२५॥

---

[१६] मम–उर (प्रताप०); मन (सर०)। [१९] हरी–करी (काशि०)। [२०] श्रद्धा–सिद्धि (कौमुदी)। [२१] रघुनाथ–जगनाथ (प्रताप०, सर०, दीन०)। [२२] बस–रथ (प्रताप०)। प्रचंड–तुरंग (सर०)। रथ–रन (कौमुदी)। तब–जब (प्रताप०)। जब–निजु (वही)। [२५] इसके अनंतर सर० में यह दोहा अधिक है—
सोदर सहित बिलोकियो रघुपति सूनो सद्म । सुमता सों न सुगंधजुत ज्यों पद्मा बिनु पद्म ॥

जद्यपि श्रीरघुनाथजू सम सर्बंग सर्बज्ञ।
नर कैसी लीला करत जेहि मोहत सब अज्ञ ॥२६॥

राम–(दुर्मिला)

निज देखौं नही सुभ गीतहि सीतहि कारन कौन कहौ अबहीं।
अति मो हित कै बन माँझ गई सुर-मारग में मृग मारयो जहीं।
कटु बात कछू तुमसों कहि आई किधौं तेहि त्रास डेराइ रहीं।
अब है यह पर्नकुटी किधौं और किधौं वह लक्ष्मन होइ नहीं ॥२७॥

(दोधक)—धीरज सों अपनो मन रोक्यो। गीध जटायु परयो अवलोक्यो।
छत्रध्वजा रथ देखिकै बूझयो। गीध कहौ रन कौन सों जूझयो ॥२८॥

(जटायु)—राघव लै गयो रावन सीता। हा रघुनाथ रटै सुभगीता।
मैं बिनु छत्रध्वजा रथ कीनो। ह्वै गयो हौं बल-पक्ष-बिहीनो ॥२९॥
मैं जग में सब तें बड़भागी। देहदसा तव कारन लागी।
जो बहु भाँतिन बेदनि गायो। रूप सो मैं अवलोकन पायो ॥३०॥

राम (दोधक)–साधु जटायु सदा बड़भागी। तो मन मो बपु सों अनुरागी।
छूटो सरीर सुनी यह बानी। रामहि में तब जोति समानी ॥३१॥

(तोटक)—दिसि दक्षिन कों करि दाह चले। सरिता गिरि देखत वृक्ष भले।
बन अंध कबंध बिलोकतहीं। दोउ सोदर खैंचि लिये तबहीं ॥३२॥
जब खैंचेहि कौं जिय बुद्धि गुनी। दुहुँ बाननि लै दोउ बाहु हनी।
वह छाँडिकै देह चल्यो जबहीं। यह ब्योम में बात कही तबहीं ॥३३॥

कबंध (मोटनक)—पीछे मघवा मोहि साप दई। गंधर्ब तें राक्षस-देह भई।
फिरिकै मघवा सह जुद्ध भयो। उन क्रोध कै सीस पै बज्र हयो ३४

(दोहा)—गयो सीस गड़ि पेट में परयो धरनि पर आइ।
कछु करुना जिय में भई दीन्ही बाहु बढ़ाइ ॥३५॥
बाहु दई द्वै कोस की 'आवै तेहि गहि खाउ।
रामरूप सीता-हरन उधरहु गहन उपाउ ॥३६॥

गंधर्व—सुरसरि तें आगे चले मिलिहैं कपि सुग्रीव।
दैहैं सीता की खबर बाढ़ै सुख अति जीव ॥३७॥

---

[२७] निज–निजु (प्रताप०)। डेराइ–दुराइ (कौमुदी)। [३०] मैं जग–हौं जग (प्रताप०, सर०)। कारन–कारज (वही)। [३१] छूटो–छूटि (प्रताप०, सर०)। तब–यह (सर०)। [३२] दोउ०–सुरलोक गयो सर लागतहीं (दीन०, प्रताप०, सर०)। [३३] संख्या ३३ से ३७ तक 'दीन०, प्रताप०, सर०' में नहीं है। खैंचेहि–खैंत्रेहि (कौमुदी)। [३४] पै–मैं (काशि०)।

(तोटक)—सरिता इक 'केसव' सोभरई। अवलोकि तहाँ चकवा-चकई।
उर में सियप्रीति समाइ रही। तिनसों रघुनायक बात कही ॥३८॥
अवलोकत हे जबहीं जबहीं। दुख होत तुम्हें तबहीं तबहीं।
वह बैर न चित्त कछू धरिये। सिय देहु बताइ कृपा करिये ॥३९॥
ससि के अवलोकन दूर किये। जिनके मुख की छबि देखि जिये।
कृति चित्त चकोर कछूक धरौ। सिय देहु बताइ सहाइ करौ ॥४०॥

लक्ष्मण—(चंद्रकला)

कहि 'केसव' जाचक के अरि चंपक सोक असोक लिये हरिकै।
लखि केतक केतकि जाति गुलाब ते तीक्षन जानि तजे डरिकै।
सुनि साधु तुम्हें हम बूझन आए रहे मन मौन कहा धरिकै।
सिय को कछु सोधु कहौ करुना करुनामय सों करुना करिकै ॥४१॥

राम (नराच)—हिमांसु सूर सो लगै सो बात बज्र सो बहै।
दिसा लगै कृसानु ज्यों बिलेप अंग को दहै।
विसेप कालराति सी कराल राति मानिये।
वियोग सीय को न, काल लोकहार जानिये ॥४२॥

(पद्धटिका)—यहि भाँति विलोकि सकल ठौर। गए सबरी पै दोउ देवमौर।
लियो पादोदक तेहि पद पखारि। पुनि अर्घादिक दीन्हे सुधारि ॥४३॥
हर देत मंत्र जिनको बिसाल। सुभ कासी में पुनि मरनकाल।
ते आए मेरे धाम आज। सब सफल करन जप-तप-समाज ॥४४॥
फल भोजन कौ तेहि धरे आनि। भये जज्ञपुरुष अतिप्रीति मानि।
तिन रामचंद्र-लक्ष्मन-स्वरूप। तब धरे चित्त जगजोति-रूप ॥४५॥

(दोहा)—सबरी पावकपंथ तब, हरपि गई हरिलोक।
बननि विलोकत हरि गए, पंपातीर ससोक ॥४६॥

(तोटक)—अति सुंदर सीतल सोभ बसै। जहँ रूप अनेकनि लोभ लसै।
वहु पंकज पक्षि विराजत हैं। रघुनाथ विलोकत लाजत हैं ॥४७॥

[३८] रई—मई (प्रताप० सर०)। [४०] छबि०—रुचि पीकै (प्रताप०, सर०)। [४१] सोक—कोप (दीन०, प्रताप०)। जाति०—जाल गुलाल (प्रताप०, सर०)। कहौ—करौ (प्रताप०)। करुना०—करुना हे करुना (कौमुदी)। [४२] दिसा—निसा (प्रताप०, सर०)। [४३] पुनि—अरु (प्रताप०); तब (सर०); दीन्हे—कीनो (प्रताप०); आसन (सर०)। [४६] बननि—कानन (सर०)। ससोक—असोक (प्रताप०, सर०)। [४७] सोभ०—सुभ्र लसै (प्रताप०)। रूप—भाँति (दीन०)। अनेकनि—समूहनि (प्रताप०)। लोभ०—सोभ बसै (प्रताप०, सर०, दीन०)।

सिगरी रितु सोभित सुभ्र जहीं। लह ग्रीषम पै न प्रबेस सही।
नव नीरज नील तहाँ सरसैं। सिय के सुभ लोचन से दरसैं ॥४८॥

(विजय)—सुंदर सेत सरोरुह में करहाटक हाटक की दुति को है।
तापर भौर भलो मनरोचन लोक-बिलोचन की रुचि रोहै।
देखि दई उपमा जलदेबिन दीरघ देवनि के मन मोहै।
केसव 'केसवराय' मनो कमलासन के सिर ऊपर सोहै ॥४९॥

लक्ष्मण—(दुर्मिला)

मिलि चक्रिन चंदन बात बहै अति मोहत न्यायनहीं मति कों।
मृगमित्र बिलोकत चित्त जरै लिये चंद्र निसाचर-पद्धति कों।
प्रतिकूल सुकादिक होंहि सबै जिय जानै नहीं इनकी गति कों।
दुख देत तड़ाग तुम्हैं न बनै कमलाकर ह्वै कमलापति कों ॥५०॥

(दोहा)–रिष्यमूक पर्बत गए 'केसव' श्रीरघुनाथ।
देखे बानर पंच बिभु मानो दक्षिन हाथ ॥५१॥

(कुसुमविचित्रा)—तब कपि राजा रघुपति देखे। मन नर-नारायन सम लेखे।
द्विजबपु धरि तहँ हनुमत आए। बहु बिधि दै आसिष मन भाए ॥५२

हनुमान—सब बिधि रूरे मन महँ को हौ। तन-मन-सूरे मनमथ मोहौ।
सिरसि जटा बालक-बपुधारी। हरिहर मानौ बिपिनबिहारी ॥५३॥
परम बियोगी सम रसभीने। तन-मन एकै जुग तन कीने।
अब तुम को, का लगि वन आए। केहि कुल हौ कौनहिं पुनि जाए ॥५४॥

राम (चंचरी)—पुत्र श्रीदसरथ्थ के बन राजसासन आइयो।
सीय सुंदरि संग ही बिछुरी सु सोधु न पाइयो।
रामलक्ष्मन-नामसंजुत सूरवंस बखानिये।
रावरे वन कौन हौ केहि काज क्यों पहचानिये ॥५५॥

हनुमान (दोहा)—या गिरि पर सुग्रीव नृप, ता संग मंत्री चारि।
बानर लई छड़ाइ तिय, दीन्हो बालि निकारि ॥५६॥

(दोधक)—वा कहँ जौ अपनो करि जानौ। मारहु बालि बिनै यह मानौ।
राज दै देहु जो वाकी तिया कों। तौ हम देहिं बताइ सिया कों ॥५७॥

---

[४८] जहीं—जहाँ (प्रताप० सर०)। सही—तहाँ (वही)। नील—नीर (काशि०, कौमुदी)। [५०] जरै—दहै (प्रताप०, सर०)। [५२] मन०—तनमन (प्रताप०, सर०)। धरि०—धारी (प्रताप०); करिकै (सर०); कै श्री (कौमुदी)। [५५] बन—तुम (प्रताप०, सर०)। काज—भाँति (दीन०, प्रताप० सर०)। [५७] दै०—देउ दै वाकि (कौमुदी)।

लक्ष्मण—आरत की प्रभु आरति टारौ। दीन अनाथन कों प्रतिपारौ।
थावर जंगम जीव जु कोऊ। संमुख होत कृतारथ सोऊ ॥५८॥
बानर ह्वै हनुमान सिधारयो। सूरज को सुत पाइनि पारयो।
राम कह्यो उठि बानरराईं। राजसिरी सखि स्यों तिय पाई ॥५९॥

(दोहा)—उठे राज सुग्रीव तब, तन-मन अति सुख पाइ।
सीताजू के पटसहित, नूपुर दीन्हो आइ ॥६०॥

(तारक)—रघुनाथ जबै पट-नूपुर देखे। कहि 'केसव' प्रान-समानहि लेखे।
अवलोकत लक्ष्मन के कर दीन्हे। उन आदर सों सिर मानिकै लीन्हे॥६१॥

(दंडक)

पंजर की खजरीट नैनन को किधौं मीन मानस को 'केसोदास' जलु है कि जारु है।
अंगको कि अंगराग गेंडुआ कि गलसुई कैधौं कटिजेब ही को उरको कि हारु है।
बंधन हमारो कामकेलि को कि ताड़िबे को ताजनो कि बिजन कि चामर बिचारु है।
मान की जमनिका की कंजमुख मूँदिबे को सीताजू को उत्तरीय सब सुखसारु है॥६२॥

(स्वागता)—बानरेंद्र तव यों हँसि बोल्यो। भीतिभेद जिय को सब खोल्यो।
आगि बारि परतक्ष करी जू। रामचंद्र हँसि बाँह धरी जू ॥६३॥
सूरपुत्र तब जीवन जान्यो। बालिजोर बहु भाँति बखान्यो।
नारि छीनि जेहि भाँति लई जू। सो असेष बिनती बिनई जू ॥६४॥
एक बार सर एक हनौ जौ। सात ताल बलवंत गनौं तौं।
रामचंद्र हँसि बान चलायो। ताल बेधि फिरिकै कर आयो ॥६५॥

सुग्रीव—(तारक)

यह अद्भुत कर्म न और पै होई। सुर सिद्ध प्रसिद्धन में तुम कोई।
निकरी मन तें सिगरी दुचिताई। तुम सो प्रभु पायो सदा सुखदाई ॥६६॥

(विजय)—बावन को पद लोकन मापि ज्यों बावन के बपु माहँ सिधायो।
'केसव' सूरसुताजल सिंधुहि पूरिकै सूरहि को पद पायो।

[५८] प्रभु–तुम (प्रताप०); हम (सर०)। कोऊ–कोई (प्रताप०, सर०)। सोऊ-होई (वही)। [५९] सखि–सख (कौमुदी)। [६०] उठे०–उठि राजा (दीन०, प्रताप०, सर०)। दीन्हो०–दीन्हे लाइ (कौमुदी)। [६१] नूपुर–भूषन (दीन०, प्रताप०, सर०)। अवलोकत–अवलोकन (कौमुदी)। मानि–लाइ (वही)। [६२] कटि०–कोट जीव (कौमुदी); कटिजेब कहो (प्रताप०); कटिजेवर (सर०)। काम–कोप (दीन०, सर०)। कि बिजन०–बिचार को कि बि न (प्रकाशिका, कौमुदी); बिचार को कि चमर (काशि०)। [६४] यों–ही (कौमुदी)। परतक्ष–जब साखि (वही)। [६५] जौ–जू (प्रताप०) तौ–जू (वही)। [६६] हँसि–तब (प्रताप०, सर०)। पायो–पाइ (काशि०)· पाये (कौमुदी)।

काम के वान त्वचा सब भेदिकै काम पै आवत ज्यों जग गायो।
राम को सायक सातहु तालन वेधिकै रामहि के कर आयो ॥६७॥

(सोरठा)—जिनके नाम विलास, अखिल लोक वेधत पतित।
तिनको 'केसवदास', सात ताल वेधत कहा ॥६८॥

राम—(तारक)

अति संगति बानर की लघुताई। अपराध बिना वध कौनि वड़ाई।
अब है कछु मोमन ऐसियै इच्छा। हनि वालिहि देउँ तुम्हैं नृपसिक्षा ॥६९॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां
सीताहरणरामसुग्रीवमैत्रीवर्णनन्नाम द्वादश प्रकाशः ॥१२॥

१३

(पद्धटिका)—रविपुत्र बालि सों होत जुद्ध। रघुनाथ भए मन माहँ क्रुद्ध।
सर एक हन्यो उर मित्र काम। तब भूमि गिरचो कहि राम राम ॥१॥
कछु चेत भए तें वलनिधान। रघुनाथ विलोके हाथ बान।
सुभ चीर जटा सिर स्याम गात। वनमाल हिये उर विप्रलात ॥२॥

बालि—तुम आदि मध्य अवसान एक। जग मोहत हौ बपु धरि अनेक।
तुम सदा सुद्ध सवकों समान। केहि हेतु हत्यो करुनानिधान ॥३॥

राम—सुनि बासवसुत बल-बुद्धिनिधान। मैं सरनागत-हित हते प्रान।
यह सांटो लै कृष्णावतार। तब ह्वैहौ तुम संसार-पार ॥४॥
रघुबीर रंक तैं राज कीन। जुवराज-विरद अंगदहि दीन।
तब किष्किंधा तारा-समेत। सुग्रीव गए अपने निकेत ॥५॥

---

[६७] सिधायो—समायो (कौमुदी)। कै—यों (प्रताप०, सर०)। भेदि—वेधि (कौमुदी); छेदि (सर०)। वेधि—भेदि (प्रताप०, सर०)। [६८] वेधत—वेधन (कौमुदी); भेदन (प्रताप०, सर०)।

[२] भए—भयो (काशि०, सर०)। तें०—बलबुधि (दीन०१); तब वल (दीन०२)। हाथ—धरे (दीन० २)। सुभ—सिर (सर०); प्रति (दीन० १)। सिर—अरु (प्रताप०);

(दोहा)—कियो नृपति सुग्रीव हति बालि बली रनधीर ।
गए प्रवर्षन अद्रि कों लक्ष्मन स्यौं रघुबीर ॥६॥

(त्रिभंगी)—देख्यो सुभ गिरिबर, सकल सोमधर, फूल बरन बहु फरनि फरे ।
संग सरभ रिक्षजन, केसरि के गन, मनहु धरनि सुग्रीव धरे ।
संग सिवा बिराजै, गजमुख गाजै, परभृत बोलै चित्त हरे ।
सिर सुभ चंद्रकधर, परम दिगंबर, मानो हर अहिराज धरे ॥७॥

(तोमर)—सिसु सौ लसै सँग धाइ । बनमाल ज्यों सुरराइ ।
अहिराज सो यहि काल । बहु सीस सोभनि माल ॥८॥

राम (स्वागता)—चंद मंददुति बासर देखौ । भूमिहीन भुवपाल बिसेषौ ।
मित्र देखि यह सोहत है यों । राजसाज बिनु सींतहि हौं ज्यों ॥९॥

(दोहा)—पतिनी पति बिनु दीन अति, पति पतिनी बिनु मंद ।
चंद बिना ज्यों जामिनी ज्यों बिनु जामिनि चंद ॥१०।

(स्वागता)—देखि राम बरषा रितु आई । रोम रोम बहुधा दुखदाई ।
आसपास तम की छबि छाई । राति द्यौस कछु जानि न जाई ॥११॥
मंद मंद धुनि सों घन गाजैं । तूर तार जनु आवझ बाजैं ।
ठौर ठौर चपला चमकै यों । इंद्रलोक-तिय नाचति है ज्यों ॥१२॥

(मोटनक)—सोहैं घन स्यामल घोर घनै । मोहैं तिनमें बकपाँति मनै ।
संखावलि पी बहुधा जल स्यौं । मानौ तिनकों उगिलैं बलस्यों ॥१३॥
सोभा अति सक्रसरासन में । नाना दुति दीसति है घन में ।
रत्नावलि सी दिविद्वार भनौ । वर्षागम बाँधिय देव मनौ ॥१४॥

(तारक)—घन घोर घने दसहू दिसि छाए । मघवा जनु सूरज पै चढ़ि आए ।
अपराध बिना क्षिति के तन ताए । तिन पीड़न पीड़ित ह्वै उठि धाए ॥१५॥
अति गाजत बाजत दुंदुभि मानौ । निरघात सबै पबिपात बखानौ ।
धनु है यह गौरमदाइन नाहीं । सरजाल बहै जलधार वृथाहीं ॥१६॥
भट चातक दादुर मोर न बोलें । चपला चमकै न फिरैं खंग खोले ।
दुतिवंतन कों बिपदा बहु कीन्हीं । धरनी कहँ चंद्रवधू धरि दीन्ही ॥१७॥

---

[६] कों–स्यौं (प्रताप०, सर०)। स्यौं–श्री (प्रताप०, काशि०, सर०)। [७] सोमधर–कलाधर (दीन० १)। बरन-वृंद (प्रताप०)। फरनि–बरनि (सर०)। धरनि-चरन (कौमुदी)। धरे-परे (वही)। धरे गरैं (प्रताप०)। [८] लसै–लगै (प्रताप०)। [१४] रत्नावलि-हारावलि (प्रताप०,)। [१५]

तरुनी यह अत्रि रिषीस्वर की सी । उर में हम चंद्रप्रभा सम दीसी ।
बरषा न सुनौ किलकै किल काली । सब जानत हैं महिमा अहिमाली ॥१८॥

(घनाक्षरी)

भौंहैं सुरचाप चारु प्रमुदित पयोधर, भूषन जराइ जोति तड़ित रलाई है ।
दूरि करी सुखमुख सुषमा ससी की नैन अमल कमलदल दलितनिकाई है ।
'केसोदास' प्रबल करेनुकागमनहर मुकुत-सुहंसक-सबद सुखदाई है ।
अंबर बलित मति मोहै नीलकंठजू की कलिका कि बरषा हरषि हिय आई है ॥१९॥

(तारक)—अभिसारिनी सी समझौ परनारी । सतमारग-मेटन कों अधिकारी ।
मति लोभ-महामद-मोह-छई है । द्विजराज सुमित्र प्रदोषमई है ॥२०॥

(दोहा)—बरनत केसव सकल कवि बिषम गाढ़ तम-सृष्टि ।
कुपुरुषसेवा ज्यों भई संतत मिथ्या दृष्टि ॥२१॥

राम—(चंद्रकला)

कलहंस कलानिधि खंजन कंज कछू दिन 'केसव' देखि जिये ।
गति आनन लोचन पाइनि के अनुरूपक से मन मानि लिये ।
यहि काल कराल ते सोधि सबै हठिकै बरषा मिस दूरि किये ।
अब धौं बिनु प्रान प्रिया रहिहैं कहि कौन हितू अवलंबि हिये ॥२२॥

(दोहा)—बीते बरषाकाल यों आई सरद सुजाति ।
गए अंध्यारी होति ज्यों चारु चाँदनी-राति ॥२३॥

(मोटक)—दंतावलि कुंद समान गनौ । चंद्रानन कुंतल भौंर घनौ ।
भौंहैं धनु खंजन नैन मनौ । राजीवनि ज्यों पद पानि भनौ ॥२४॥
हारावलि नीरज हीयं रमैं । है लीन पयोधर अंबर मैं ।
पाटीर जुन्हाइहि अंग धरै । हँसी गति 'केसव' चित्त हरै ॥२५॥
श्रीनारद की दरसै मति सी । लोपै तमता अपकीरति सी ।
मानौ पतिदेवन की रति कौं । सन्मारग की समझौ गति कौं ॥२६॥

(दोहा)—लक्ष्मन दासी बृद्ध सी आई सरद सुजाति ।
मनहु जगावन कों हमहि वीते बरषा राति ॥२७॥

---

[१८] चंद्रप्रभा–चंद्रकला (काशि०); चंद्रमुखी (सर०) सम–इमि (प्रताप०); मय (सर०) । किल–कल (कौमुदी); यह (सर०) । महिमा-सहसा (दीन० २) । [२०] कों–की (कौमुदी) । [२१] मिथ्या–निःफल (प्रताप०, सर०, दीन० १) [२४] भौंर–चौंर (काशि० सर०) । [२५] है–जनु (कौमुदी) । [२६] तमता०–तमताप अकीरति (कौमदी); तमता तप कीरति (सर०) । कों–सी (कौमदी) ।

(कुंडलिया)—तातें नृप सुग्रीव पै जैये सत्वर तात।
कहियो बचन बुझाइकै कुसल न चाहौ गात।
कुसल न चाहौ गात चहत हौ बालिहि देख्यो।
करहु न सीतासोध कामबस राम न लेख्यो।
राम न लेख्यो चित्त लही सुख-संपति जातें।
मित्र कह्यो गहि बांह कानि कीजत है तातें ॥२८॥

(दोहा)—लक्ष्मन किष्किंधा गए, बचन कहे करि क्रोध।
तारा तब समझाइयो, कीन्हो बहुत प्रबोध ॥२९॥

(दोधक)—बोलि लए हनुमान तबै जू। ल्यावहु बानर बोलि सबै जू।
बार लगै न कहूँ बिरमाहीं। एकु न कोउ रहै घर माहीं ॥३०॥

(त्रिभंगी)—सुग्रीव-सँघाती, मुखदुति राती, 'केसव' साथहि सूर नए।
आकासबिलासी, सूरप्रकासी, तबहीं बानर आइ गए।
दिसि दसि अवगाहन, सीतहि चाहन, जूथप जूथ सबै पठाए।
नल नील रिक्षपति, अंगद के संग, दक्षिन दिसि कों बिदा भए ॥३१॥

(दोहा)—बुधि-बिक्रम-ब्यवसायजुत साधु समुझि रघुनाथ।
बल अनंत हनुमंत के मुँदरी दीन्ही हाथ ॥३२॥

(हीरक)—चंडि बरनि, छंडि धरनि, मंडि गगन धावहीं।
तक्षिन हुइ दक्षिन दिसि लक्षिन नहिं पावहीं।
धीरधरन बीरबरन सिंधुतट सुभावहीं।
नाम परम, धाम धरम, रामकरम गावहीं ॥३३॥

अंगद (अनुकूला)—सीय न पाई अवधि विनासी। होहु सबै सागरतटवासी।
जो घर जैये सकुच अनंता। मोहि न छोड़ै जनकनिहंता ॥३४॥

(हनुमान)—अंगद रक्षा रघुपति कीनी। सोध न सीता जल थल लीनी।
आलस छाड़ौ कृत उर आनौ। होहु कृतघ्नी जिनि, सिख मानौ ॥३५॥

[२८, २९, ३०] दीन०, प्रताप० और सर०, में नहीं हैं। लहो-चही (काशि०)। हनुमान-हनुमंत (वही)। [३१] साथहि-सायुध (प्रताप०, सर०); आयुध (दीन० १) सूर०-सूरप्रभाती (दीन० २, सर०)। के संग-संगति (प्रताप०)। [३३] चंडि०-चडचरन (दीन०, काशि०, कौमुदी)। मंडि-मगर (दीन० २); मार्ग (दीन० १)। तक्षिन-दक्षिनु (दीन०, सर०)। हुइ-के (दीन०)। लक्षिन-लक्ष्य (काशि०); लक्ष्मि (सर०); लक्ष्यहि (कौमुदी)। [३५] कीनी-कीन्हो (काशि०, कौमुदी)। लीनी-लीन्हो (वही)। आनौ-धारौ (दीन० २)। जिनि-जिय

अंगद—(दंडक)

जीरन जटायु गीध धन्य एक जिन रोकि रावन बिरथ कीन्हो सहि निज प्रानहानि।
हुते हनुमंत बलवंत तहाँ पाँच जन, दीन्हे हुते भूषन कछूक नररूप जानि।
आरत पुकारत ही राम राम बार बार, लीन्हो न छड़ाइ तुम सीता अति भीत मानि।
गाइ द्विजराज तिय काज न पुकार लागै भोगवै नरक घोर चोर को अभयदानि।३६

(दोहा)—सुनि संपाति सपक्ष ह्वै रामचरित सुख पाइ।
सीता लंका माँझ है खगपति दई बताइ॥३७॥

(दंडक)

हरि कैसो बाहन कि बिधि कैसो हेमहंस लीक सी लिखत नभ पाहन के अंक कों।
तेज को निधान राममुद्रिकाबिमान कैधों लक्ष्मन को बान छूट्यो रावन निसंक कों।
गिरिगजगंड तें उड़ान्यो सुबरन अलि सीतापद-पंकज सदा कलंक रंक कों।
हवाई सी छुटी 'केसोदास' आसमान में कमान कैसो गोला हनुमान चल्यो लंक कों।

(दोहा)—बीच गए सुरसा मिली और सिंहिका नारि।
लीलि लियो हनुमंत तेहि कढ़े उदर कहँ फारि॥३८।

(दोहा)—उदधि नाकपतिसत्रु को उदित जानि बलवंत।
अंतरिक्षहीं लक्षि पद-अक्ष छुयो हनुमंत॥४०॥

(तारक)—कछु राति गए करि दंस दसा सी पुर माँझ चले बनराजिबिलासी।
जबहीं हनुमंत चले तजि संका। मग रोकि रही तिय ह्वै तब लंका।४१

लंका—कहि मोहि उलंघि चले तुम को हौ। अति सूक्षम रूप धरे मन मोहौ।
पठए केहि कारन कौन चले हौ। नर हौ किधौं कोउ सुरेस भले हौ।४२

हनुमान—

हम बानर हैं रघुनाथ पठाए। तिनकी तरुनी अवलोकन आए।

लंका—हति मोहि महामति भीतर जैये।
हनुमान—तरुनीहि हते कब तें सुख पैये।४३॥

लंका—तुम मारेहि पै पुर पैठन पैहौ। हठ कोटि करौ घरहीं फिरि जैहौ।
हनुमंत बली तेहि थापर मारी। तजि देह भई तबहीं बर नारी॥४४॥

लंका—(तामरस)

धनदपुरी हउँ रावन लीनी। बहुबिधि पावन के रस भीनी।
चितचतुरानन चिंतन कीन्हो। बरु करुना करि मोकहँ दीन्हो॥४५॥

---

[३६] जिन–जिहि (प्रताप० सर०)। तहाँ–जहँ (वही)। [३७] राम०–रामचरन चित्त लाइ (प्रताप०)। [३९] उदधि–मैनाक (दीन०, प्रताप०, सर०)। [४१] तजि–करि (दीन० २)। [४२] सुरेस–नरेस (दीन० १)। [४३] लौं–तें (सर०); कै (प्रताप०)। [४४] बली–हठी (दीन० २, प्रताप०)। तेहि–उठि (दीन० २)। [४५] हउँ–जब

जब दसकंठ सिया हरि लैहैं। हरि हनुमंत बिलोकन ऐहैं।
जब वह तोहि हतै तजि संका। तब प्रभु होइ बिभीषन लंका ॥४६॥

चलन लगौ जबहीं तब कीजौ। मृतक सरीरहि पावक दीजौ।
यह कहि जात भई वह नारी। सब नगरी हनुमंत निहारी ॥४७॥

तब हरि रावन सोवत देख्यो। मनिमय पालिक की छबि लेख्यो।
तहँ तरुनी बहु भाँतिन गावैं। बिच बिच आवझ बीत बजावैं ॥४८॥

मृतक चिता पर मानहु सोहै। चहुँ दिसि प्रेतबधू मन मोहै।
जहँ जहँ जाइ तहाँ दुख दूनो। सिय बिन है सिगरो पुर सूनो ॥४६॥

(भुजंगप्रयात)

कहूँ किंनरी किंनरी लै बजावैं। सुरी आसुरी बाँसुरी गीत गावैं।
कहूँ जक्षिनी पक्षिनी लै पढ़ावैं। नगीकन्यका पन्नगी कों नचावैं ॥५०॥

पियै एक हाला गुहै एक माला। बनी एक बाला नचै चित्रसाला।
कहूँ कोकिला कोक की कारिका कों। पढ़ावै सुवा लै सुकी सारिका कों ॥५१॥

फिर्‌यो देखिकै राजसाला सभा कों। रह्यो रीझिकै बाटिका की प्रभा कों।
फिर्‌यो ओर चौहूँ चितै सुद्धगीता। बिलोकी भली सिसुपामूल सीता ॥५२॥

धरे एक बेनी मिली मैल सारी। मृनाली मनो पंक तैं काढ़ि डारी।
सदा रामनामै ररै दीन वानी। चहूँ ओर हैं राकसी दुख्खदानी ॥५३॥

ग्रसी बुद्धि सी चित्तचितानि मानौ। किधौं जीभ दंतावली में बखानौ।
किधौं घेरिकै राहु नारीन लीनी। कला चंद्र की चारु पीयूष-भीनी ॥५४॥

किधौं जीव की जोति मायान लीनी। अबिद्यान के मध्य बिद्या प्रबीनी।
मनो संबर-स्त्रीन में कामबामा हनूमान ऐसी लखी रामरामा ॥५५॥

तहाँ देवद्वेषी दसग्रीव आयो। सुन्यो देवि सीता महा दुख्ख पायो।
सबै अंग लै अंग ही में दुरायो। अधोदृष्टि कै अश्रु धारा बहायो ॥५६॥

---

[४६] ऐहैं–जैहै (दीन०, सर०)। तजि–प्रति (सर०)। [४७] जबहीं–तबही (प्रताप०, सर०)। तब–यह (वही)। जात–जाति (कौमुदी) [४८] हरि–तहँ (प्रताप०,)। देख्यो पायो (दीन०, प्रताप०, सर०)। पालिक पलिका (प्रताप०, कौमुदी)। लेख्यो-छायो (दीन०, प्रताप०, सर०)। तहँ-बहु (सर०)। [४६] चहुँ दिसि बहु बिधि (सर०)। प्रेतबधू०–प्रेतबधूनि बिमोहै (प्रताप०, सर०)। तहाँ–तही (सर०)। सिगरो०–सिगरे घर सूने (वही)। [५०] लै–कों (प्रताप०, सर०)। [५१] सुवा लै–कहू ते (सर०)। [५३] पंक०–पंकसोकाधिकारी (प्रताप०, सर०)। नामै–रामै (प्रताप०)। [५५] अबिद्यान–कुबिद्यान (सर०)। मध्य–बीच (प्रताप०)। हनूमान–हनूमंत (प्रताप०, सर०)। [५६] द्वेषी–दोषी (प्रताप०, सर०)। बहायो–न्हवायो (प्रताप०, सर०)।

रावण—

सुनौ देवि मोपै कछू दृष्टि दीजै। इतो सोच तौ रामकाजै न कीजै।
बसै दंडकारन्य देखै न कोऊ। जु देखै महा बावरो होइ सोऊ ॥५७॥
कृतघ्नी कुदाता कुकन्याहि चाहै। हितू नग्न-मुंडीनहीं को सदा है।
अनाथै 'सुन्यो मैं अनाथानुसारी। बसैं चित्त दंडी जटी मुंडधारी ॥५८॥

तुम्हैं देखि दूषैं हितू ताहि मानै। उदासीन तोसों सदा ताहि जानै।
महा निर्गुनी नाम ताको न लीजै। सदा दास मोपै कृपा क्यों न कीजै ॥५९॥

अदेवीनि देवीनि की होहु रानी। करैं सेव बानी मघौनी मृडानी।
लियैं किंनरी किंनरी गीत गावैं। सुकेसी नचैं उर्बसी मान पावैं ॥६०॥

(मालिनी)

तृन बिच देइ बोली सीय गंभीर बानी। दसमुख सठ को तू कौन की राजधानी।
दसरथसुतद्वेषी रुद्र ब्रह्मा न भासै। निसिचर बपुरा तू क्यों न स्यौं मूल नासै ६१

अति तनु धनुरेख नेक नाकी न जाकी। खल सर-खरधारा क्यों सहै तिक्ष ताकी।
बिड़कन घन घूरे भक्षि क्यों बाज जीवै। सिवसिर ससिश्री कों राहु कैसे सु छीवै।
उठि उठि सठ ह्याँ तें भागु तौलौं अभागे। मम बचन बिसर्पी सर्प जौलौं न लागे।
बिकल सकुल देखौं आसु ही नास तेरो। निपट मृतक तोकों रोष मारै न मेरो ॥६३॥

(दोहा)—अवधि दई द्वै मास की कह्यो राकसिन बोलि।
ज्यों समुझै समुझाइयो जुक्तिछुरी सों छोलि ॥६४॥

(चामर)—देखि-देखिकै असोक राजपुत्रिका कह्यो।
देहि मोहि आगि तैं जु अंग आगि ह्वै रह्यो।
ठौर पाइ पौनपुत्र डारि मुद्रिका दई।
आसपास देखिकै उठाइ हाथ कै लई ॥६५॥

(तोमर)—जब लगी सियरी हाथ। यह आगि कैसी नाथ।
यह कह्यो लखि तब ताहि। मनिजटित मुँदरी आहि ॥६६॥
जब बाँचि देख्यो नाउ। मन परयो संभ्रम भाउ।
आबाल तें रघुनाथ। यह धरी अपने हाथ ॥६७॥

---

[५७] मोपै—मोतें (प्रताप०, सर०)। [५८] अनाथै—अनाथै (दीन० १); अनर्थै (दीन०, २; अनाथ्वै (प्रताप०)। [५९] देवि—देखि (दीन०)। सदा—सबै (दीन०, प्रताप०, सर०)। मोपै—मैहों (प्रताप०); मोको (सर०)। [६०] अदेवीनि०—अदेवीनृदेवीन (कौमुदी), सेव०-सेवकानी (प्रताप०)। मघौनी—मवानी (दीन० १, सर०)। [६१] सठ को—बपुरा (दीन०); कहि को (प्रताप०)। द्वेषी—द्रोही (प्रताप०); दोषी (सर०)। [६२] बिड़कन०—बिडक-घननि (प्रताप०, सर०)। राहु—दुष्ट (सर०)। सर खर—खँग सर (सर०); खरग (दीन०)। [६५] तैं जु—आनि (सर०)। पुत्र—पूत (सर०, कौमुदी)। अंग—देह (दीन० २)। [६७] भाउ—काम (दीन० १); ठाउ (दीन० २)।

बिछुरी सु कौन उपाउ। केहि आनियो यहि ठाउँ।
सुधि लहौं कौन प्रभाउ। अब काहि बूझन जाउँ ॥६८॥

चहुँ ओर चितै सत्रास। अवलोकियो आकास।
तरुसाख बैठो नीठि। तब परयो बानर दीठि ॥६९॥

तब कह्यो को तूँ आहि। सुर असुर मो तन चाहि।
कै जक्ष पक्ष-बिरूप। दसकंठ बानर-रूप ॥७०॥

कहि आपनो तू भेद। नतु चित्त उपजत खेद।
कहि बेगि बानर पाप। नतु तोहि दैहौं साप ॥७१॥

तब बृक्षसाखा झूमि। कपि उतरि आयो भूमि।
संदेस चित महँ चाइ। तब कही बात बनाइ। ७२॥

(पद्धटिका)—कर जोरि कह्यो हौं पौनपूत। जिय जननि जानि रघुनाथदूत।
रघुनाथ कौन, दशरथ्थनंद। दशरथ्थ कौन, अजतनयचंद ॥७३॥

केहि कारन पठए यहि निकेत। निज देन लेन संदेस हेत।
गुन रूप सील सोभा सुभाव। कछु रघुपति के लक्षन बताउ ॥७४॥

(हनुमान)—अति जदपि सुमित्रानंद भक्त। अति सेवक हैं अति सूर सक्त।
अरु जदपि अनुज तीनौ समान। पै तदपि भरत भावत निदान ॥७५॥

ज्यों नारायनउर श्री बसंति। त्यों रघुपतिउर कछु दुति लसंति।
जग जितने हैं सब भूमिभूप। सुर असुर न पूजें रामरूप ॥७६॥

सीता—(निशिपालिका)

मोहि परतीति यहि भाँति नहिं आवई। प्रीति कहि धौं सु नर-बानरनि क्यों भई।
बात सब बर्नि परतीति हरि त्यों दई। आँसु अन्हवाइ उर लाइ मुँदरी लई ॥७७॥

(दोहा)—आँसु बरषि हियरा हरषि सीता सुखद सुभाइ।
निरखि निरखि पियमुद्रिकहि बरनति है बहु भाइ ॥७८॥

---

[६८] प्रभाउ–उपाउ (प्रताप०, काशि०)। बूझन–पूछन (प्रताप०, सर०)। [६९] ओर–घा (दीन०); दिसि (प्रताप०, सर०) तरु–तहँ (कौमुदी)। [७०] पक्ष०–जक्ष पक्ष (प्रताप०, काशि०, सर०)। [७१] नतु–अति (सर०)। [७२] तब–डरि (सर०, कौमुदी)। उत्तरार्ध 'प्रताप०, काशि०, सर०' में नहीं है। [७३] हौं०–मैं बायुपूत (प्रताप०, सर०)। [७४] बताउ-सुनाउ (कौमुदी)। [७५] सेवक हैं–केसव कहि अति (प्रताप०); केसव सेवक (दीन० २)। अस–अति (प्रताप०)। [७६] न पूजें–समान न (सर०)। [७७] नहिं आवई–उपजै नई (प्रताप०, सर)। दई–भई (सर०)। [७८] हियरा०–हियरे हरषि (कौमुदी); हिय हरषि कछु (प्रताप०, सर०)। सुखद०–सुखदुख पाइ (प्रताप०)।

(पद्धटिका)—यह सूरकिरन तम-दुख्खहारि। ससिकला किधौं उर-सीतकारि।
कल कीरति सी सुभ सहिननाम। कै राज्यश्री यह तजी राम ॥७९॥

कै नारायन-उर सम लसंति। सुभ अंकन ऊपर श्री बसंति।
बर बिद्या सी आनंददानि। जुतअष्टापद मन सिवा मानि ८०

जनु माया अक्षरसहित देखि। कै पत्री निस्चयदानि लेखि।
पियप्रतीहारिनी सी निहारि। 'श्रीरामो जय' उच्चारकारि॥८१॥

पिय पठई मानो सखि सुजान। जगभूषन को भूषन-निधान।
निज आई हमकों सीख देन। यह किधौं हमारो मरम लेन।८२।

(दोहा)—सुखदा सिखदा अर्थदा, जसदा रसदातारि।
रामचंद्र की मुद्रिका, किधौं परम गुरु नारि ॥८३॥

बहुबर्ना सहजप्रिया, तमगुनहरा प्रमान।
जगमारगदरसावनी, सूरजकिरन समान ॥८४॥

श्रीपुर में बनमध्य हौं तूँ मग करी अनीति।
कहि मुँदरी अव तियन की को करिहै परतीति ॥८५॥

(पद्धटिका)—कहि कुसल मुद्रिके रामगात। पुनि लक्ष्मनसहित समान तात।
यह ऊतरु देति न बुद्धिवंत। केहि कारन धौं हनुमंत संत ॥८६॥

हनुमान (दोहा)—तुम पूँछत कहि मुद्रिके मौन होति यहि नाम।
कंकन की पदबी दई तुम बिन याकहँ राम ॥८७॥

(दंडक)

दीरघ दरीन बसैं 'केसोदास' केसरी ज्यों, केसरी कों देखि बनकरी ज्यों कँपत हैं।
बासर की संपति उलूक ज्यों न चितवत, चकवा ज्यों चंद चितै चौगुनो चँपत हैं।
केका सुनि ब्याल ज्यों बिलात जात घनस्याम, घनन की घोरन जवासो ज्यों तपत हैं।
भौर ज्यों भँवत बन जोगी ज्यों जगत रैनि, साकत ज्यों नाम राम तेरोई जपत हैं।

हनुमान—(वारिधर)

राजपुत्रि यक बात सुनौ पुनि। रामचंद्र मन माहँ कही गुनि।
राति दीह जमराज-जनी जनु। जातनानि तन जानत कै मनु ॥८९॥

---

[७९] तजी–तजो (काशि०)। [८२] निज–जनु (सर०)। [८४] बर्ना०–बानी श्रम (प्रताप०]। हरा–हारि (प्रताप०); हरन (सर०)। [८५] यह छंद 'दीन०, प्रताप०, सर०' में नहीं है। [८६] पुनि–सुभ (कौमुदी); सुनि (प्रताप०, सर०)। धौं–कहि (प्रताप०, सर०)। [८८] केसरी–केहरि (प्रताप०, सर०)। चितै–चाइ (दीन० २)। केका–केकी (दीन०, सर०)। [८९] राजपुत्रि०–राजसुता इक मंत्र (दीन० १)। सुनौ०–कहौं सुनि (दीन० १, प्रताप०)।

(दोहा)—दुख देखे सुख होहिगो, सुख्ख न दुख्खबिहीन।
जैसे तपसी तप तपै, होत परमपद लीन ॥९०॥
बरषा-बैभव देखिकै देखी सरद सकाम।
जैसे रन में कालभट भेटि भेटियत बाम ॥९१॥

सीता—दुख्ख देखिकै देखिहौं तब सुख आनंदकंद।
तपन-ताप तपि द्यौस निसि जैसे सीतल चंद ॥९२॥
अपनी दसा कहा कहौं दीपदसा सी देह।
जरत जाति बासर निसा 'केसव' सहित सनेह ॥९३॥

हनुमान—सुगति सुकेसि सुनैनि सुनि सुमुखि सुदंति सुश्रोनि।
दरसावैगो बेगिहीं तुमकों सरसिज-जोनि ॥९४॥

(हरिगीतिका)—कछु जननि दै परतीति जासों रामचंद्रहि आवई।
सुभ सीस की मनि दई यह कहि सुजस तव जग गावई।
सब काल ह्वैहौ अमर अरु तुम समर जयपद पाइहौ।
सुत आजु तें रघुनाथ के तुम परम भक्त कहाइहौ ॥९५॥
कर जोरि पग परि तोरि उपबन कोरि किंकर मारियो।
पुनि जंबुमाली मंत्रिसुत अरु पंच मंत्रि सँघारियो।
रन मारि अक्षकुमार बहु बिधि इंद्रजित सों जुद्ध कै।
अति ब्रह्मअस्त्र प्रमान मानि सो बस्य भो मन सुद्ध कै ॥९६॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां हनुमद्बंधनन्नाम त्रयोदशः प्रकाशः ॥१३॥

---

[९०] सुख्ख०—सुख नहिं (कौमुदी)। तपै—करत (प्रताप०)। [९२] निसि०—की तजै ज्यों (दीन० २)। [९३] जरति—घटति (दीन०)। [९४] सुमुखि०—सुदंति सुश्रोनि सुबैन (दीन० २)। जोनि—ऐन (दीन० २)। [९५] जासों—जातें। (प्रताप०); जैसे (सर०)। तब—तिहु (प्रताप०); यह (सर०)। जग—पुर (प्रताप०)। ह्वैहौ—ह्वजो (दीन०); ह्व जनु (सर०)। अरु०—अति अरु (प्रताप०, सर०) जस—पद (सर०)। [९६] अस्त्र-अत्र (प्रताप०)। ९६ के स्थान पर दीन० १ में निम्नलिखित अंश है—

(हरिगीतिका)

कर जोरि पग परि तोरि उपबन कोरि किंकर मारियो।
पौढ़ियो जब जंबुमाली दूत जाय पुकारियो।
उठि धाइयो मन क्रोध अति करि सोधु कपि जब पाइयो।
वह आइयो तेहि ठौर तबही संक उर नहिं लाइयो ॥

१४

रावण (विजय)—रे कपि कौन तूँ ? अक्ष को घातक दूत बली रघुनंदन जू को।
को रघुनंदन रे ? त्रिसिरा-खर-दूषन-दूषन भूषन भू को।
सागर कैसे तरयो ? जस गोपद, काज कहा ? सियचोरहिं देखो।
कैसे बँधाय ? जु सुंदरि तेरी छुई दृग सोवत पातक लेखो।।१।।

रावण—(चामर)

कोरिकोरि जातनानि फोरिफोरि मारिये। काटिकाटि फारि बाँटिबाँटि माँसु डारिये।
खाल खैंचि खैंचि हाड़ भूँजिभूँजि खाहु रे। पौरि टाँगि रुंडमुंड लै उड़ाइ जाहु रे

अति जोर स्यों हनुमंत देखि अनंत बानन मारियो।
मन मानियो नहिं छोभ कपि तब सकल सैन सँघारियो।
पुनि जंबुमाली सों भिरयो लइ बाहु जुगल उखारिकै।
मठ बैठिकै अभिलाष सों पुर में ते दीनी डारिकै।।
परियो ते रावन की सभा तेहि काल तेहि पहिचानियो।
(पुनि) पंचसुत मत्रीन के तिन सीस आयसु मानियो।
तनत्रान कसि हँसि बान धनु तेहि काल लेइ गए तहाँ।
रन दूतपूत समेत स्यों बर जंबुमालि परयो जहाँ।।
बरषै सु बान समान घन तन भेदियो हनुमंत कौ।
तब धाइयो कपि नाद करि रोकै कहा मयमंत कौ।
घननाल लै सिगरे हए उरसाल रावन के भयो।
तेहि काल अक्षकुमार बोलि प्रहस्त कों आयसु दयो।।

(नराच)

जुरे प्रहस्त हस्त लै हथ्यार दिव्य आपने। कुमार अक्ष तिक्ष बान छाइयो घने घने।
कपीस जुद्ध क्रुद्ध भो सँघारि अक्ष डारियो। प्रहस्त सीस मैं तबै प्रहारि मुष्ट मारियो।।

(दोहा)—मारो अक्ष सुनो जहीं रावन अति पछिताइ।
इंद्रजीत सों या कही बानर जियत न जाइ।।

(तोटक)—घननाद गयो सजिकै जबहीं। हमुमंत सों जुद्ध जुरे तबहीं।
बलवंत गुन्यो वह हेरि हियो। मन में गुनि एक उपाय कियो।।

(तोमर)—तब इंद्रजीत बिलोकि। बिधिपास दीन्ही मोकि।
कपि ब्रह्मतेजहि जानि। तिन सीस लीन्ही मानि।।

[१] सोवत जोवत (प्रताप०)। [२] फारि–अंग (प्रताप०); छाँटि (सर०)। बाँटि बाँटि–छाँटि छाँटि (दीन०)। हाड़–मास (सर०)। पौरि–खोरि (काशि०)।

विभीषण—

दूत मारिये न राजराज छोड़ि दीजई। मंत्रि मित्र पूँछिकै सो और दंड कीजई।
एक रंक मारि क्यों बड़ो कलंक लीजई। बुंद सूखि गो कहा महासमुद्र छीजई ॥३॥

तूल तेल बोरि बोरि जोरि जोरि बाससी। लै अपार रार ऊन दून सूत सों कसी।
पूँछ पौनपूत की सँवारि बारि दी जहीं। अंग को घटाइ कै उड़ाइ जात भो तहीं ॥४

(चंचरी)—धामधामनि आग की बहु ज्वालमाल बिराजहीं।
पौन के झकझोर तें झँझरी-झखोरन भ्राजहीं।
बाजि बारन सारिका सुक मोर जोरन भाजहीं।
क्षुद्र ज्यों बिपदाहि आवत छोड़ि जात न लाजहीं ॥५॥

(भुजंगप्रयात)

जटी-अग्निज्वाला अटा सेत हैं यों। सरत्काल के मेघ संध्यासमै ज्यों।
लगी ज्वालधूमावली नील राजैं। मनो स्वर्न की किंकनी नाग साजैं ॥६॥
लसैं पीत छत्री मढ़ीज्वाल मानौ। ढके ओढ़नी लंक बक्षोज जानौ।
जरैं जूह नारी चढ़ीं चित्रसारी। मनो चेटका में सती सत्यधारी ॥७॥
कहूँ रैनिचारी गहे ज्योति गाढ़े। मनो ईस रोषाग्नि में काम डाढ़े।
कहूँ कामिनी ज्वालमालानि भोरैं। तजैं लाल सारी अलंकार तोरैं ॥८॥
कहूँ भौन राते रचैं धूम छाहीं। ससी सूर मानो लसैं मेघ माहीं।
जरै सस्त्रसाला मिली गंधमाला। मलैअद्रि मानो लगी दावज्वाला ॥९॥
चलीं भागि चौंहूँ दिसा राजरानो। मिलीं ज्वालमाला फिरैं दुखदानी।
मनो ईसबानावली लाल लोलैं। सबै दैत्य-जायान के संग डोलैं ॥१०॥

(विजय)—लंक लगाइ दई हनुमंत बिमान बचे अति उच्चरुखी ह्वै।
पाचि फटैं उचटैं बहुधा मनि रानि रटैं पानी पानी दुखी ह्वै।
कंचन को पघिलो पुर पूर पयोनिधि में पसरे ति सुखी ह्वै।
गंग हजारमुखी गुनि 'केसो' गिरा मिली मानो अपारमुखी ह्वै ॥११॥

(दोहा)—हनुमत लाई लंक सब बच्यो बिभीषन-धाम।
जनु अरुनोदय बेर में पंकज पूरब जाम ॥१०॥

---

[३] राजराज–सुराज (दीन०)। [४] रार–टाट (सर०)। सूत–पूछि (प्रताप०)। उड़ाइ०–सो जात भयो मौतहीं (दीन० १); छुड़ाइ० (प्रताप०, सर०)। [५] भ्राजहीं–छाजहीं (प्रताप०); झाकहीं (दोन० १, सर०)। [६] धूमावली–धामावली (प्रताप०, सर०)। [७] चेटका–चित्तिका (प्रताप०); चेतिका (सर०)। [१०] ज्वाल–दाव (सर०)। राजधानी–राजरानी (कौमुदी)। [११] लगाइ–हि लाय (कौमुदी)। रटैं–टरै (प्रताप०, सर०)। पानी पानी–पयपानी (कौमुदी); मुख पानी (सर०)। पघिल्यो–पचिल्यो (सर०)। पसरे ति–पसरो सो (कौमुदी)। [१२] लाई०–लंक लगाइ तब (सर०)।

(संयुता)—हनुमंत लंक लगाइकै। पुनि पूँछ सिंधु बुझाइकै।
सुभ देखि सीतहि पाँ परे। मनि पाइ आनंद जी भरे ॥१३॥

(दोहा)—बिदा पाइ सुख पाइकै चले जबै हनुमंत।
पुहुपबृष्टि देवन करी सागर रतन अनंत ॥१४॥

(तोमर)—सीता न ल्याए बीर। मन माँझ उपजति पीर।
आनौं सु कौन उपाय। परपुरुष छीवै काय ॥१५॥

(संयुत)—यहि पार अंगद भेटियो। सबको सबै दुख मेटियो।
जयसी कछू बितई सबै। तिनसों कही तयसी तबै ॥१६॥

(तोमर)—जब राम धरिहैं चाप। रन रावनै संताप।
बरषे सघन सर-धार। लंका बहत नहिं बार ॥१७॥
चलि अंगदादिक बीर। तहँ आइयो रनधीर।
जहँ बाग हे सुग्रीव। फल देखि ललक्यो जीव ॥१८॥
सब खाइयो फलफूल। रहियो सु केवल मूल।
तब दीख दधिमुख आइ। वह मारियो कपि धाइ ॥१९॥
अति रोष बालिकुमार। गहि मारियो कपिधार।
सब लै गए निज जीव। जहँ बैठियो सुग्रीव ॥२०॥

(दोहा)—लै आए सीता-खबर, तातें मन अति फूल।
इनको बिलग न मानिये, नहिं धरिये चित्त भूल ॥१२॥

(संयुक्ता)—रघुनाथ पै जबहीं गए। उठि अंक लावन कों भए।
प्रभु मैं कहा करनी करी। सिर पाइ की धरनी धरी ॥२२॥

(दोहा)—चिंतामनि सी मनि दई, रघुपति कर हनुमंत।
सीताजू को मन रंग्यो, जनु अनुराग अनंत ॥२३॥

(दोधक)—श्रीरघुनाथ जबै मनि देखी। जी महँ भागदसा सम लेखी।
फूलि उठ्यो मन ज्यों निधि पाई। मानहु अंध सुडीठि सुहाई ॥२४॥

राम—(तारक)

मनि होहि नहीं मनु आइ प्रिया को। उर में प्रगट्यो गुन प्रेम दिया को।
सब भागि गयो जु हुतो तम छायो। अब मैं अपने मन को मत पायो ॥२५॥

---

[१३] लगाइ–हि लाइ (कौमुदी०)। इसके बाद 'दीन० १' में यह छंद अधिक है–
संदेस यह सीता कह्यौ। प्रभु तासु बध तत्क्षन कियौ।
इक आँखि गहि हीनै कियौ। तब जाइकै आसन लियौ।

[२४] जी महँ०–प्रान समानन लेखी (दीन० १)।

दरसै हमकों ब नहीं दरसाए। उर लागति आइ बर्‌याइ लगाए।
कुछ उत्तर देति नहीं चुप साधी। जिय जानति है हमकों अपराधी ॥२६॥

हनुमान—

कछु सीयदसा कहि मोहि न आवै। चर का जड़ बात सुने दुख पावै।
सर सो प्रतिबासर बासर लागै। तन घाव नहीं मनप्राननि खागै ॥२७॥
प्रतिअंगनि के संगहीं दिन नासैं। निसि सों मिलि बाढ़ति दीह उसासैं।
निसि नेकहु नींद न आवति जानौ। रबि की छबि ज्यों अधराति बखानौ ॥२८॥

(घनाक्षरी)

भौंरिनी ज्यों भ्रमत रहति बनबीथिकानि हंसिनी ज्यों मृदुल मृनालिका चहति है।
हरिनी ज्यों हेरति न केसरी के काननहिं, केका सुनि ब्यालि ज्यों बिलान ही कहति है।
पीउपीउ रटति रहति चित चातकी ज्यों, चंद चितै चकई ज्यों चुप ह्वै रहति है।
सुनहु नृपति राम बिरह तिहारे ऐसी, सूरतिन सीताजू की मूरति गहति है ॥२९॥

सीता जू को संदेश—(दोहा)

श्रीनृसिंह प्रहलाद की बेद जो गावत गाथ।
गए मास दिन आसुहीं झूँठी ह्वैहै नाथ ॥३०॥

आगम कनककुरंग के कही बात सुख पाइ।
कोपानल जरि जाइ जिनि सोक-समुद्र बुड़ाइ ॥३१॥

राम—(दंडक)

साँचो एक नाम हरि लीन्हे सब दुख हरि और नाम परिहरि नरहरि ठाए हौ।
बानर न होहु तुम मेरे बानरस सम, बलीमुख सूर बली मुख निज गाए हौ।
साखामृग नाहीं बुद्धिबलन के साखामृग कैधों बेद साखामृग 'केसव' कों भाए हौ।
साधु हनुमंत बलवंत जसवंत तुम, गए एक काज कों अनेक करि आए हौ ॥३२॥

हनुमान (तोमर)—गइ मुद्रिका लै पार। मनि मोहि लाई वार।
कह कर्‌यो मैं बल रंक। अति मृतक जारी लंक ॥३३॥

अति हत्यो बालक अक्ष। लै गयो बाँधि बिपक्ष।
जड़ बृक्ष तोरे दीन। मैं कहा बिक्रम कीन ॥३४॥

तिथि बिजय दसमी पाइ। उठि चले श्रीरघुराइ।
हरि जूथ जथूप संग। बिन पक्ष के ति पतंग ॥३५॥

आकास बलितबिलास। सूझै न सूरप्रकास।
पुनि रिक्ष लक्षन संग। जनु जलधि गंगतरंग ॥३६॥

---

[२७] चर०—चरचा (दीन०)। [२९] कहति-चहति (कौमुदी)। [३१] बुड़ाइ-बुझाइ (दीन० १)। [३६] सूझै—समुझै (काशि०)।

सुग्रीव—(दंडक)

कहै 'केसोदास' तुम सुनौ राजा रामचंद्र, रावरी जबहिं सैन उचकि चलति है।
पूरति है भूरि धूरि रोदसीहि आसपास, दिसदिस बरषा ज्यों बलनि बलति है।
पन्नग पतंग तरु गिरि गिरिराज गजराज मृग मृगराजराजिनि दलति है।
जहाँ तहाँ ऊपर पताल पय आइ जात, पुरइन को सो पात पुहुमी हलति है ॥३७॥

लक्ष्मण—(दंडक)

भार के उतारिबे कों औतरे हौ रामचंद्र किधौं 'केसोदास' भूरि भारत प्रबल दल।
टूटत हैं तरिबर गिरैं गन गिरिबर सूखे सब सरबर सरिता सकल जल।
उचकि चलत हरि दचकनि दचकत मंच ऐसे मचकत भूतल के थलथल।
लचकि लचकि जात सेष के असेष फन भागि गई भोगवती अतल बितल तल ॥३८॥

(गीतिका)—रघुनाथजू हनुमंत ऊपर सोभिजे तेहि काल जू।
उदयाद्रि सोभन सृंग मानहु सुभ्र सूरबिलास जू।
सुभ अंग अंगदसंग लक्ष्मन लक्षिये बहु भाँति जू।
जनु मेरु मंदल सृंग अद्भुत चंद्र राजत राति जू ॥३९।

(दोहा)—बलसागर लक्ष्मन सहित कपिसागर रनधीर।
जससागर रघुनाथजू मेले सागरतीर ॥४०॥

(विजय)—भूति बिभूति पियूषहु की बिष ईस सरीर कि पाइ बियो है।
है किधौं 'केसव' कस्यप को घर देव अदेवन के मन मोहै।
संत हियो कि बसैं हरि संतत सोभ अनंत कहै कबि को है।
चंदन नीर तरंग तरंगित नागर कोउ कि सागर सोहै ॥४१॥

(गीतिका)—जल जाल काल करालमाल तिमिंगलादिक स्यों बसै।
उर लोभ छोभ बिमोह कोह सकाम ज्यों खल को लसै।
बहु संपदाजुत जानियो अति पातकी सम लेखिये।
कोउ माँगना अरु पाहुनो नहिं नीर पीवत देखिये ॥४२॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां समुद्रतट-रामसैन्यनिवेशनन्नाम चतुर्दशः प्रकाशः ॥१४॥

---

[३८] भूमि०—भूरि भूतल (दीन० १)। [३९] संग कंघ (कौमुदी)। बहु-यहि (वही)। मंदल—पर्वत (वही)।

१५

रावण (गीतिका)—सुरपाल भूतलपाल हौ सब मूल मंत्र ते जानिये।
बहुमंत्र बेद पुरान उत्तम मध्यमाधम मानिये।
करिये जु कारज आदि उत्तम, मध्यमाध्य भानिये।
उर मध्य आनि अनुत्तमै जे गए ते आज बखानिये ॥१॥

(स्वागता)—आजु मोहि करने सो कहौ जू। आपु माहि जनि रोष गहौ जू।
राजधर्म कहिये छबि छाए। रामचंद्र नहिं जौ लगि आए ॥२॥

प्रहस्त—बामदेव तुम कों बर दीन्हो। लोकलोक सिगरे बस कीन्हो।
इंद्रजीत सुत सो जग मोहै! राम देव नर बानर को हैं ।.३॥

मृत्युपास भुज जोरनि तोरै। कालदंड जेहि सों कर जोरै।
कुंभकर्न सम सोदर जाके। और कौन मन आवत ताके ॥४॥

कुंभकर्ण (चतुष्पदी)—आपुन सब जानत, कह्यो न मानत, कीजै जो मन भावै।
सीता तुम आनी, मीचु न जानी, अब को मंत्र बतावै।
जेहि बर जग जीत्यो, सर्ब अतीत्यो, तासों कहा बसाई।
मति भूलि गई तब, सोच करत अब, जब सिर ऊपर आई ।५।

मंदोदरी—(विजय)

राम की बाम जो आनी चोराइ सो लंक में मीचु की बेलि बई जू।
क्यों रन जीतहुगे तिनसों जिनकी धनुरेख न नाखि गई जू।
बीस बिसे बलवंत हुते जु हुती दृग 'केसव' रूप रई जू।
तोरि सरासन संकर को पिय सीय स्वयंबर क्यों न लई जू ॥६॥

बालि बली न बच्यो पर खोरिहि क्यों बचिहौ तुम आपनी खोरिहि।
जा लगि छीरसमुद्र मथ्यो कहि कैसे न बाँधिहै बारिधि थोरिहि।
श्रीरघुनाथ गनौ असमथ्थ न देखि बिना रथ हाथिन घोरिहि।
तोरयो सरासन संकर को जेहि सोऽब कहा तुव लंक न तोरिहि ॥७॥

मेघनाद (दोहा)—मोकों आयसु होइ जो त्रिभुवनपाल प्रबीन।
रामसहित सब जग करौं नरबानर करि हीन ॥८॥

---

[१] जु गए०—गतिये ते (दीन० २)। आज—काज (दीन०)। [२] जू—हौ (दीन०) छबि-जस (दीन० २)। [३] सो—को (दीन०)। [४] जोरनि—जोरहि (कौमुदी)। जेहि-तुम (दीन०)। [५] अब—आन (कौमुदी)। [६] जु हुती०—बहई त्रिय (दीन० १); जु हुती दृग (दीन० २)। [७] जा लगि—केसव (दीन०)।

बिभीषण—(मोटनक)

को है अतिकाय जो देखि सकै। को कुंभ निकुंभ बृथा जो बकै।
को है इंद्रजीत जो भीर सहै। को कुंभकरन्न हथ्यार गहै॥९॥
देखे रघुनाथ न धीर रहै। जैसे तरु पल्लव बात बहै।
जौलौं हरि सिंधु तरेई तरै। तौलौं सिय लै किन पाय परै॥१०॥
जौलौं नल नील न सिंधु तरै। जौलौं हनुमंत न दृष्टि परै।
जौलौं नहि अंगद लंक ढही। तौलौं प्रभु मानहु बात कही॥११॥
जौलौं नहि लक्ष्मन बान धरै। जौलौं सुग्रीव न क्रोध करै।
जौलौं रघुनाथ न सीस हरैं। तौलौं प्रभु मानहु पाइ परैं॥१२॥

रावण—(कलहंस)

अरिकाज लाज तजिकै उठि धायो। धिक तोहि मोहि समुझावन आयो।
तजि रामनाम यह बोल उचार्‍यो। सिर माँझ लात पग लागत मार्‍यो॥१३॥
कहि हाइहाइ उठि देह सँभार्‍यो। लिय अंग संग सब मंत्रिय चार्‍यौ।
तजि अंधु बंधु दसकंधु उड़ान्यो। उर रामचंद्र जगतीपति आन्यो॥१४॥

(दोहा)—मंत्रिन सहित बिभीषनै बाढ़ी सोभ अकास।
जनु अलि आवत भावतो प्रभुपद-पदुमनि पास॥१५॥

(चौपाई)—निकट बिभीषन आइ तुलाने। कपिपति सों तबहीं गुदराने।
रघुपति सों तिन जाइ सुनायो। दसमुख-सोदर सेवहिं आयो॥१६॥

श्रीराम—बुधि बलवंत सबै तुम नीके। मत सुनि लीजै मंत्रिन ही के।
तब जु बिचार परै सोइ कीजै। सहसा सत्रु न आवत दीजै॥१७॥

अंगद (सुंदरी)—रावन को यह साँचहु सोदरु। आपु बली बलवंत लिये अरु।
राकस-बंस हमैं हतने सब। काज कहा तिनसों हमसों अब।१८।

जामवंत—बध्य बिरोध हमैं इनसों अति। क्यों मिलिहै हमसों तिनसों मति।
रावन क्यों न तज्यो तबहीं इन। सीय हरी जबहीं वही निर्घृन॥१९॥

नल—चार पठै इनको मत लीजिय। ऐसेहिं कैसे बिदा करि दीजिय।
राखिय जो अति जानिय उत्तम। नाहि त मारिय छोड़ि सबै भ्रम॥२०॥

---

[९] देखि-जुद्ध (दीन० २)। बकै-अरै (वही)। [१०] रघुनाथ न-रघुनायक (कौमुदी)। रहै-गहै (दीन० १); कहै (दीन० २)। बात-बायु (कौमुदी)। [१३] समुझावन-डरवावन (दीन० १)। सिर माँझ-सीस (दीन०)। [१४] उड़ान्यो-समान्यो (दीन० १)। [१५] जनु०-ज्यों कलि आवत रघुपतिहि पच्छ पच्छिनी पास (दीन० १); जब आवत सुख पावते रघुपति पदमनि पास (दीन० २)। [१६] आइ०-आवत जाने (दीन०)।

नील—साँचेहु जौ यह है सरनागत। राखिय राजिवलोचन मो मत।
भीत न राखिय तौ अति पातक। होइ जु मातु-पिता-कुल-घातक ॥२१॥

हनुमान—(हरिलीला)

जानौ बिभीषन न राकस रामराज। प्रह्लाद नारद बिसारद बुद्धिसाज।
सुग्रीव नील नल अंगद जामवंत। राजाधिराज बलिराज समान संत ॥२२॥

(दोहा)—कहन न पाई बात सब हनूमंत गुनधाम।
कह्यो बिभीषन आपुहीं सबनि सुनाइ प्रनाम ॥२३॥

बिभीषण—(विजय)

दीनदयाल कहावत 'केसव' हौं अतिदीन दसा गह्यो गाढ़ौ।
रावन के अघओघ में राघव बूड़त हौं बरहीं गहि काढ़ौ।
ज्यों गज की प्रहलाद की कीरति त्योंहीं बिभीषन को जस बाढ़ौ।
आरतबंधु पुकार सुनौ किन आरत हौं तौ पुकारत ठाढ़ौ ॥२४॥
'केसव' आपु सदा सह्यो दुख्ख पै दासनि देखि सकै न दुखारे।
जाको भयो जेहि भाँति जहाँ दुख त्योंहीं तहाँ तेहि भाँति सँभारे।
मेरियै बार अबार कहा कबहूँ नहि काहू के दोष बिचारे।
बूड़त हौं महामोहसमुद्र में राखत काहे न राखनहारे ॥२५॥

(हरिलीला)

श्रीरामचंद्र अति आरतवंत जानि। लीन्हो बुलाइ सरनागत सुख्खदानि।
लंकेस आउ चिर जीवहि लंक धाम। राजा कहाउ जग जो लगि राम नाम ॥२६॥

(तोटक)—जबहीं रघुनायक बान लियो। सबिसेप बिसोपित सिंधु हियो।
तबहीं द्विजरूप सु आइ गयो। नल सेतु रचै यह मंत्र दियो ॥२७॥

(दोहा)—जहँ तहँ बानर सिंधु में गिरिगन डारत आनि।
सब्द रह्यो भरि पूरि महि रावन कों दुखदानि ॥२८॥

(तोटक)—उछलै जल उच्च अकास चढ़ै। जल जोर दिसा बिदिसान मढ़ै।
जनु सिंधु अकासनदी अरिकै। बहुभाँति मनावत पाँ परिकै ॥२९॥
वहु व्योम विमान ते भीजि गए। जल जोर भए अँगरागरए।
सुखसागर मानहु जुद्ध जए। सिगरे पट भूषन लूटि लए ॥३०॥

---

[२१] कुल–सुत (दीन०)। [२३] गुनधाम-बलवान (दीन०)। प्रनाम–प्रयान (वही)। [२४] में राघव–समुद्र में (कौमुदी)। आरत हौं०–आरतवंत (दीन० २)। [२५] आपु–दास (दीन० २)। जहाँ०–तहाँ तुम (दीन०)। सँभारे–पधारे (प्रकाशिका)। अबार–विचारु (दीन०)। [२९] चढ़ै–चलै (दीन०)। मढ़ै–दलै (वही); बढ़ै (दीन० १)। भाँति–बार (दीन०)। [३०] रए–मए (दीन०)। जए–रए (दीन० १); मए (दीन० २)।

अति उच्छलि छिछि त्रिकूट छयो। पुर रावन के जल जोर भयो।
तब लंक हनूमत लाइ दई। नल मानहु आइ बुझाइ लई ॥३१॥

लगि सेतु जहाँ तहँ सोभ गहे। सरितान के फेरि प्रबाह बहे।
पति देवनदी रति देखि भली। पितु के घर कों जनु रूसि चली ॥३२॥

सब सागर नागर सेतु रची। बरनौ बहुधा जुत सक्र-सची।
तिलकावलि सी सुभ सीस लसै। मनिमाल किधौं उर में बिलसै ॥३३॥

(तारक)—उर तें सिवमूरति श्रीपति लीन्ही। सुभ सेतु के मूल अधिष्ठित कीन्ही।
इनकों दरसै परसै पग जोई। भवसागर के तरि पार सो होई ॥३४॥

(दोहा)—सेतुमूल सिव सोभिजै केसव परम प्रकास।
सागर जगत जहाज को करिया 'केसवदास' ॥३५॥

(तारक)—सुक सारन रावन दूत पठायो। कपिराज सों एक सँदेस सुनायो।
अपने घर जैयहु रे तुम भाई। जमहूँ पहँ लंक लई नहि जाई ॥३६॥

सुग्रीव—भजि जैहौ कहाँ न कहूँ थल देखौं। जलहूँ थलहूँ रघुनायक पेखौं।
तुम बालि समान सहोदर मेरे। हतिहौं कुल स्यों तन-प्रानन तेरे ॥३७॥

सब रामचमू तरि सिंधुहि आई। छवि रिक्षन की धर अंबर छाई।
बहुधा सुक सारन कों सु बताई। फिरि लंक मनो बरषा रितु आई ॥३८॥

(दंडक)

कुंतल ललित नील भ्रुकुटी धनुप नैन कुमुद कटाक्ष बान सबल सदाई हैं।
सुग्रीव सहित तार अंगदादि भूषननि मध्यदेस केसरी सु गजगति भाई हैं।
बिग्रहानुकुल सब लक्ष लक्ष रिक्षबल रिक्षराजमुखी मुख 'केसोदास' गाई हैं।
रामचंद्रजू की चमू, राजश्री बिभीषन की, रावन की मीचु दरकूच चलि आई हैं ॥३९॥

(हीरक)—रावन सुभ स्यामल तनु मंदिर पर सोहियो।
मानहु दस सृंगजुत कलिंद गिरि बिमोहियो।
राघव सर लाघव गति छत्र मुकुट यों हयो।
हंस सबल अंसुसहित मानहु उड़िकै गयो ॥४०॥

लज्जित खल तज्जि सु थल भज्जि भवन में गयो।
लक्षन-प्रभु तत्क्षन गिरि दक्षिन पर सोभयो।
लंक निरखि अंक हरपि भर्म सकल जी लह्यो।
जाहु सुमति रावन पहँ अंगद सन यों कह्यो ॥४१॥

---

[३२] पति–प्रति (दीन०)। (३३) जुत–जनु (दीन० १); सुर (कौमुदी)। [३५] केसव–पूरन (दीन०)। [३७] तन-तिनु (कौमुदी)। [३८] बताई–दिखाई (दीन०)। [३९] सहित०–सहाय तारा (दीन० २)। रिक्षराज०–रिक्षराज उदित अनंत सुख (वही)।

(चंचला)—रामचंद्रजू कहंत स्वर्नलंक देखि देखि।
रिक्ष बानरालि घोर ओर चारिहू बिसेखि।
मंजु कंजगंध-लुब्ध भौंर-भीर सी बिसाल।
'केसोदास' आसपास सोभिजैं मनो मराल ॥४२॥

ताम्रकोट लोहकोह स्वर्नकोट आसपास।
देव की पुरी घिरी कि पर्बतारि के बिलास।
बीच बीच हैं कपीस बीच बीच रिक्षजाल।
लंककन्यका-गरें कि पीत नील कंठमाल ॥४३॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणि श्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां रामसैन्य-समुद्रतरणन्नाम पंचदशः प्रकाशः ॥१५॥

१६

(दोहा)—अंगद कूदि गए जहाँ आसनगत लंकेस।
मनु मधुकर करहाट पर सोभित स्यामल बेष ॥१॥

प्रतिहार—(नराच)

पढ़ौ बिरंचि मौन बेद जीव सोर छंडि रे। कुबेर बेर कै कही न जक्षभीर मंडि रे।
दिनेस जाइ दूरि बैठि नारदादि संगहीं। न बोलि चंद मंदबुद्धि इंद्र की सभा नहीं २॥

(चित्रपदा)—अंगद यौं सुन बानी। चित्त महा रिस आनी।
ठेलिकै लोग अनैसे। जाइ सभा महँ बैसे ॥३॥

प्रहस्त (चंचरी)—कौन हौ पठए सो कौनेहि ह्याँ तुम्हैं कह काम है ?
अंगद—जाति बानर, लंकनायकदूत, अंगद नाम है।
रावण—कौन है वह बाँधिकै हम देह पूँछि सबै दही।
अंगद—लंक जारि सँघारि अक्ष गयो सो बात बृथाँ कही ? ॥४॥

महोदर—कौन भाँति रह्यो तहाँ तुम ? (अंगद-) राजप्रेषक जानिये।
महोदर—लंक लाइ गयो जो बानर कौन नाम बखानिये।
मेघनाद जो बाँधियो वहि मारियो बहुधा तबै।
अंगद—लोकलाज दुरयो रहे अति जानिजै न कहाँ अबै ॥५॥

---

[१] मनु०-मानो मधुकर हाट (दीन०)। [५] अति-सुनि (दीन० १); हम (दीन० २)। न-सु (दीन० १)।

कौन के सुत ? बालि के, वह कौन बालि न जानिये ?
काँख चाँपि तुम्हैं जो सागर सात न्हात बखानिये।
है कहाँ वह ? वीर अंगद देवलोक बताइयो।
क्यों गयो ? रघुनाथ-बान-विमान बैठि सिधाइयो ॥६॥

लंकनायक को ? बिभीषन देवदूषन कों दहै।
मोहि जीवत होहि क्यों ? जग तोहि जीवत को कहै।
मोहि को जग मारिहै ? दुरबुद्धि तेरिय जानिये।
कौन बात पठाइयो कहि बीर बेगि बखानिये ॥७॥

अंगद—(विजय)—श्रीरघुनाथ को बानर 'केसव' आयो हो एक न काहू हयो जू।
सागर को मद झारि चिकारि त्रिकूट की देह विहारि छयो जू।
सीय निहारि सँहारि कै राकस सोक असोकवनीहि दयो जू।
अक्षकुमारहि मारिकै लंकहि जारिकै नीकेहिं जात भयो जू ॥८॥

अंगद—(गंगोदक)

राम राजान के राज आए इहाँ धाम तेरे महाभाग जागे अवै।
देबि मंदोदरी कुंभकर्नादि दै मित्र मंत्री जिते पूँछि देखौ सबै।
राखिजै जाति कों पाँति कों बंस कों साधिजै लोक में लोकपर्लोक कों।
आनिकै पाँ परौ, देसु लै कोषु लै, आसुहीं ईस सीताहि लै ओक कों ॥९॥

रावण—लोक लोकेस स्यों सोचि ब्रह्मा रचे आपनी आपनी सीवँ सो सो रहै।
चारि बाहैं धरे बिष्नु रक्षा करैं बात साँची यहै बेदबानी कहै।
ताहि भ्रूभंग ही देव देवेस स्यों बिष्नु ब्रह्मादि दै रुद्रजू संघरै।
ताहि हौं छाड़िकै पायँ काके परौं आजु संसार तौ पायँ मेरे परै ॥१०॥

(मदिरा)

राम को काम कहा, रिपु जीतहि, कौन कबै रिपु जीत्यो कहा।
बालि बली, छल सों, भृगुनंदन गर्व हर्यो, द्विज दीन महा।
दीन सु क्यों छिति छत्र हत्यो बिन प्रानिनि हैहयराज कियो।
हैहय कौन ? वहै बिसर्यो जिन खेलतहीं तुम्हैं बाँधि लियो ॥११॥

---

[६] न्हात–दीप (दीन० १) [७] पठाइयो०–कहाइ पठई (दीन०)। [८] छयो–नयो (दीन० २) गयो (कौमुदी)। [९] जिते–सबै (काशि०, सर०)। सबै–अबै (वही)। पाँति–भाँति (वही)। साधिजै–गोत को साधिये लोक (कौमुद)। सीताहि०–सीता चलैं (कौमुदी)। [१०] स्यों–सो (प्रताप०, काशि०); के (सर०)। सोचि जो जु (कौमुदी)। [११] जीत्यो०–जीत्यौ महा (काशि०)। हत्यो–सहे (दीन०, प्रकाशिका); सुहो (काशि०, सर०); हर्यो (कौमुदी)। महा–रहा (प्रताप०)। छत्र–क्षत्रि (प्रताप०, सर०) तुम्हैं–तुम (सर०); तोहि (कौमुदी)।

अंगद—सिंधु तरचो उनको बनरा तुम पै धनुरेख गई न तरी।
बाँधोई बाँधत सो न बन्यो उन बारिधि बाँधिकै बाट करी।
श्रीरघुनाथ-प्रताप की बात तुम्हैं दसकंठ न जानि परी।
तेलनि तूलनि पूँछि जरी न जरी, जरी लंक जराइ-जरी ॥१२॥

मेघनाद—

छाँडि दियो हम ही बनरा वह पूँछि की आगि न लंक जरी।
भीर में अक्ष मरचो चपि बालक बादिहि जाइ प्रसस्ति करी।
ताल बिधे अरु सिंधु बँध्यो यह चेटक बिक्रम कौन कियो।
बानर को नर को बपुरा पल में सुरनायक बाँधि लियो ॥१३॥

अंगद—चेटक सों धनु भंग कियो प्रभु रावरे को अति जीरन हो।
बान-समेत रहे पचिकै तुम जा सह पै न तज्यो थल हो।
बान सु कौन, बली बलि को सुत वै बलि बावन बाँधि लियो।
वोई सु तौ जिनकी चिर चेरिनि नाच नचाइकै छाँडि दियो ॥१४॥

रावण (विजय)—नील सुखेन हनू उनके नल और सबै कपिपुंज तिहारे।
आठहु आठ दिसा बलि दै, अपसो पदु लै, पितु जा लगि मारे।
तोसे सपूतहि जाइकै बालि अपूतन की पदवी पगु धारे।
अंगद संग लै मेरो सबै दल आजुहि क्यों न हतैं बपमारे ॥१५॥

(दोहा)—जो सुत अपने बाप को बैर न लेइ प्रकास।
तासों जीवत ही मरचो लोग कहैं तजि त्रास ॥१६॥

अंगद—इनको बिलगु न मानिये कहि 'केसव' पल आधु।
पानी पावक पवन प्रभु ज्यों असाधु त्यों साधु ॥१७॥

रावण—(द्रुतविलंबित)

उरसि अंगद लाज कछू गहौ। जनकघातक-बात बृथा कहौ।
सहित लक्ष्मन रामहिं संघरौं। सकल बानरराज तुम्हें करौं ॥१८॥

---

[१२] बाँधोई–तुम्हैं बाँधोई (प्रताप०); बाँनर (सर०); बाँदर (कौमुदी)। बन्यो–बँध्यो (वही। श्री–अजहूँ (दीन० २, प्रताप०, काशि०, सर०)। तेलनि–जब तेलनि (प्रताप०); तेलहु (कौमुदी)। तूलनि तूलहु (वही)। [१३] आगि न–आगि सों (प्रताप०, सर०)। प्रसस्ति–प्रसिद्ध (प्रताप०); प्रसंसि (सर०)। बपुरा०–बल केतिक दीन० १); बलकारन (प्रताप०, सर०)। [१४] प्रभु–बल (दीन०); तन (कौमुदी)। रावरे०–रावन के अति ही बलु हो (वही)। तुम–तहँ (वही)। सह–सँग (वही)। वोई–बेई (वही)। [१५] हतै–हनै (काशि०, सर०)। [१८] बृथा–कहा (दीन०, प्रताप०, सर०)।

अंगद—(निशिपालिका)

सत्रु सव मित्र हम चित्त पहिचानहीं । दूतबिधि नूत कबहूँ न उर आनहीं ।
आप मुख देखि अभिलाष अभिलाषहू । राखि भुज-सीस तब और कहँ राखहू ॥१९॥

रावण—(इंद्रवज्रा)

मेरी बड़ी भूल कहा कहौं रे । तेरो कह्यो दूत सबै सहौं रे ।
वै तौ सबै चाहत तोहि मार्‍यो । मारौं कहा तोहि जो दैवमार्‍यो ॥२०॥

अंगद (उपेंद्रवज्रा)—नराच श्रीराम जहीं धरैंगे । असेष माथे कटि भू परैंगे ।
सिखा सिवा स्वान गहे तिहारी । फिरैं चहूँ ओर निरै-बिहारी ।

रावण—(भुजंगप्रयात)

महामीचु दासी सदा पाइँ धोवै । प्रतीहार ह्वैकै कृपा सूर जोवै ।
छपानाथ लीन्हे रहै छत्र जाको । करैगो कहा सत्रु सुग्रीव ताको ॥२२॥
सका मेघमाला सिखी पाककारी । करै कोतवाली महादंडधारी ।
पढ़ै बेद ब्रह्मा सदा द्वार जाके । कहा बापुरो सत्रु सुग्रीव ताके ॥२३॥

अंगद—(विजय)

पेट चढ़्यो पलना पलिका चढ़ि पालकिहू चढ़ि मोह मढ़्यो रे ।
चौक चढ़्यो चित्रसारी चढ़्यो गजबाजि चढ़्यो गढ़गर्ब चढ़्यो रे ।
ब्योमबिमान चढ़्योई रह्यो कहि 'केसव' सो कबहूँ न पढ़्यो रे ।
चेतत नाहि रह्यो चढ़ि चित्त सो चाहत मूढ़ चिताहूँ चढ़्यो रे ॥२४॥

रावण—(भुजंगप्रयात)

निकार्‍यो जु भैया लियो राज जाको । दियो काढ़िकै जू कहा त्रास ताको ।
लिये बानराली कहौं बात तोसों । सु कैसे जुरै राम संग्राम मोसों ॥२५॥

अंगद (विजय)—हाथी न साथी न घोरे न चेरे न गाउँ न ठाउँ कुठाउँ बिलैहै ।
तात न मात न पुत्र न मित्र न बित्त न तीय कहूँ सँग रैहै ।
'केसव' काम के राम बिसारत, और निकाम रे काम न ऐहै ।
चेति रे चेति अजौं चित-अंतर अंतकलोक अकेलोई जैहै ॥२६॥

---

[१९] सब—सम (कौमुदी) । अभिलाषहु—मुख भाखहू (दीन०, प्रताप, सर०) । [२०] तौ—जो (कौमुदी) । [२२] जोवै—सोवै (प्रताप०, सर०) । करैगो०—कहा बापुरो (दीन० १) । [२४] पलना०—पलना चढ़्यो पालिक (प्रता०, सर०) । [२५] जू—जो (प्रताप०); सो (सर०) । जुरै—लरै (काशि०) । [२६] न तीय०—न अंगना संगन (प्रताप०, सर०) । के—को (प्रताप०, काशि०, सर०) । निकाम—अकाम (प्रताप०, सर०) । अंतर—अंध (दीन० १) । लोक—प्रान (दीन० २); वोक (प्रताप०) ।

रावण—(भुजंगप्रयात)

डरै गाइबिप्रै अनाथै जो भाजै। परद्रव्य छोड़ै परस्त्रीहि लाजै।
परद्रोह जासों न होवै रतीको। सो कैसें लरै बेष कीन्हें जती को ॥२७॥

(दोहा)—गेंद करयो मैं खेल को, हरिगिरि 'केसवदास'।
सीस चढ़ाए आपने, कमल-समान सहास ॥२८॥

अंगद—(दंडक)

जैसो तुम कहत उठायो एक गिरिबर ऐसे कोटि कपिन के बालक उठावहीं।
काटे जो कहत सीस काटत घनेरे घाघ भागर के खेले कहा भट-पद पावहीं।
जीत्यो जु सुरेस रन साप रिषिनारि ही को समझहु हम द्विज-नातें समुझावहीं।
गहौ रामपाइ सुख पाइ करैं तपी तप, सीताजू कों देहि, देव दुंदुभी बजावही।२९।

रावण—(बंशस्थ)

तपी जपी बिप्रन क्षिप्रहीं हरौं। अदेवद्वेषी सब देव संहरौं।
सिया न देहौं यह नेम जी धरौं। अमानुषी भूमि अबानरी करौं ॥३०॥

अंगद (विजय)—पाहन तें पतिनी करि पावन टूक कियो धनु द्वै हर को रे।
छत्रबिहीन करी छन में छिति गर्ब हत्यो तिनके बर को रे।
पर्वतपुंज पुरैन के पात समान तरे अजहूँ धरको रे।
होइँ नरायनहूँ पै न ये गुन कौन इहाँ नर बानर को रे ॥३१॥

रावण (चंचरी)—देहि अंगद राज तोकहँ मारि बानरराज कों।
बाँधि देहि बिभीषनै अरु फोरि सेतु-समाज कौं।
पूँछि जारहिं अक्षरिपु की पाइँ लागहिं रुद्र के।
सीय कों तब देहुँ रामहिं पार जाइँ समुद्र के ॥३२॥

अंगद—लंक लाइ गयो बली हनुमंत संतन गाइयो।
सिंधु बाँधत सोधिकै नल छीरछीट बहाइयो।
ताहि तोहि समेत अंध उखारि हौं उलटी करौं।
आजु राज कहाँ बिभीषन बैठिहैं तेहि तें डरौं ॥३३॥

---

[२७] लाजै-माजै (दीन०)। [२८] खेल०—खेलहीं (प्रताप०, सर०)। सहास-प्रकास (दीन०, प्रताप०, सर०)। [२९] जैसो—जैसे (प्रताप०, सर०)। गिरिबर—हरगिरि (कौमुदी)। खेले०—खेल क्यों सु (वही)। [३१] कियो—करयो (प्रताप०, सर०)। धनु०—हर धनु (काशि०); धनूहू हर (कौमुदी)। हत्यो—हरयो (कौमुदी०)। [३३] गयो—दियो (कौमुदी)। बहाइयो—बुझाइयो (प्रताप०, सर)।
दीन० १' में निम्नोक्त छंद अधिक है—

कह्यो सबनि सुनाइ । पगु ठेलियो सब आइ। हारयो तहाँ लंकेस। फूले तहाँ सिव सेष।

(दोहा)—अंगद रावन को मुकुट लै करि उड़्यो सुजान।
मनो चल्यो जमलोक कों दससिर को प्रस्थान ॥३४॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकाया श्रीमदिंद्रजिद्विरचितायां अंगदविवादवर्णनन्नाम षोडशः प्रकाशः ॥ १६ ॥

१७

(दोहा)—अंगद लै वा मुकुट कों, परे राम के पाइ।
राम बिभीषन के सिरसि, भूषित कियो बनाइ ॥१॥

(पद्धटिका)—दिसि दक्षिन अंगद पूर्व नील। पुनि हनूमंत पच्छिम सुसील।
दिसि उत्तर लक्ष्मनसहित राम। सुग्रीव मध्य कीन्हे बिराम ॥२॥
सँग जूथप जूथनि वलबिलास। पुर फिरत बिभीषन आसपास।
निसिबासर सबको लेत सोधु। यहि भाँति भयो लंकानिरोधु ॥३॥
तब रावन सुनि लंका-निरोधु। गुनि उपज्यो तन-मन परम क्रोधु।
राख्यो प्रहस्त हठि पूर्व पौरि। दक्षिनहि महोदर गयो दौरि ॥४॥
गए इंद्रजीत पच्छिम दुवार। है उत्तर रावन वलउदार।
कियो बिरूपाक्ष थिति मध्यदेस। करै नारांतक चहुँधा प्रवेस ॥५॥

(प्रमिताक्षरा)—अति द्वार द्वार महँ जुद्ध भए। वहु रिक्ष कँगूरनि लागि गए।
तब स्वर्न-लंक महँ सोभ भई। जनु अग्निज्वाल महँ धूममई ॥६॥

आगे का 'दंडक' 'दीन० १' और 'सर०' में अधिक है—

हदगिरि हाल्यो हरिगिरि सुमेरु हाल्यो उदयगिरि हाल्यो रुद्रगिरि मेरु चालई।
सपत पताल हाले भुवपाल ब्याल हाले, द्रिगपाल हाले जल ऊँचे कों उछालई।
'केसोदास' लंका को सकल दल बल हाल्यो, हाले दससीस जाहि ईस प्रतिपालई।
ध्रुवलोक हालि फेरि भुवलोक हालि उठ्यो बालि-वरिबंडजू की पगु पै न हालई ॥

ये छंद केवल 'सर०' में अधिक हैं—

सुनु रावन दसभालजुत पद रोप्यो बलबीर। जौ उठाउ बल करि चरन सिय त्यागहिं रघुबीर।
उठ्यो कोपिकै तौ दसग्रीव आयो। कह्यो बालि के लाज तोकौं लजायो।
गहौ पाय श्रीराम के तौ भलाई। कहा दास के आस तोको बिसाई ॥
खैचि खिस्यान्यो रहि गयो जैसे बिमुख हुलास। करत मनोरथ होत नहि बिनु रघुबर की आस ॥

[४] तब—जब (कौमुदी)। गुनि—अति (प्रताप); उर (सर०); तब (कौमुदी)। [५] है—रहि (प्रताप०); रहे (सर०)। चहुँधा—बहुधा (दीन०)। [६] महँ—प्रति (दीन०, प्रताप०, सर)। इसके अनंतर 'दीन० १' में निम्नांकित छंद अधिक है--

(दोहा)—मरकत मनि के सोभिजै, सबै कँगूरा चारु।
आइ गयो जनु घात कौं, पातक को परिवारु ॥७॥

(कुसुमविचित्रा)

तब निकसो रावन-सुत सूरो। जेहि रन जीत्यो हरि-बल पूरो।
तपबल माया-तम उपजायो। कपि-दल के मन संभ्रम छायो ॥८॥
(दोधक —काहु न देखि परै वह जोधा। जद्यपि हैं सिगरे बुधि-बोधा।
सायक सो अहिनायक साँध्यो। सोदर स्यों रघुनायक बाँध्यो ॥९॥
रामहिं बाँधि गयो जब लंका। रावन की सिगरी गइ संका।
देखि बँधे तब सोदर दोऊ। जूथप जूथ त्रसे सब कोऊ ॥१०॥

हलाडोल होन लागौ सेना लागिय सज्जिय आवत है रघुनाथ सानौ घटा उनई।
धरा की सकल धूरि रही है अघर पूरि सूर वै न देखियतु छन छायाहू छई।
रावन की राजधानी होन लागी धूरधानी जानो नहिं अभिमानी मति धौं कहा ठई।
सेत सेत कारौ कारौ देखियतु पीरी पीरी लंक सब [पेखियत] भूरि भूरि ह्वै गई।

[७] के–से (कौमुदी)। इसके अनंतर 'दीन० १' में ये छंद अधिक हैं—
लखि रावन आइसु दयो मंत्री मंत्र बुलाइ। इंद्रजीत कों आदि दै जुध्य करौ तुम जाइ।
लंक चमू तबही चढ़ी द्वार द्वार प्रति धाइ। दुंदजुध्य दुहु दल भयौ पाछै देत न पाइ ॥

चचरी

रन राम मन मायक धरे तब जुरे पंच महारथी।
को जकै छिति जुध्य मैं जमलोक के ति भए पथी।
लछिमन हनै रन को गनै जूभै घनै दुहु सैन के।
रबि अस्तकाल कराल भट आए मुकुट दिये ऐन के।
तिन जोति तें तमनास गौ सबकों प्रगट सब देखई।
तब धाइकै कपिजूथनाथनि सब हनै को लेखई।
पुनि इंद्रजीत अजीत निकस्यौ प्रगट ही रथ साजिकै।
तिहि देखि आवत बीर अंगद सामुहौ भयौ गाजिकै।
तब मेघनाद असेष बानन बीर अंगद मारियौ।
करि क्रोध सों गिर एक लै रथ सूतदूत संघारियौ।
धायौ पयादौ बान लै अंगद सबै चनकट हयौ।
उर मध्य छोभि भयौ जहीं तब भागि सो लंकै गयौ।
दोहा—कीन्हे जग्य निकुंभिला ह्वै गयौ रुधिर अपार।
कुंडमध्य तेहि प्रगट्यो सूत सहित हथियार।

[९] सोदर–लक्ष्मन (प्रताप०)। [१०] गइ–मिटि (प्रताप०, सर०)।
तब०–रघुनायक (वही)।

(स्वागता)—इंद्रजीत तेहि लै उर लायो। आजु काजु सब भो मनभायो।
के बिमान अधिरूढ़ित धायो। जानकीहि रघुनाथ दिखायो ॥११॥

राजपुत्र जुतनागनि देख्यो। भूमिजुक्त तरु-चंदन लेख्यो।
पन्नगारि-प्रभु पन्नगसाई। काल-चालि कछु जानि न जाई ॥१२॥

(दोहा)—कालसर्प के कवल तें, छोरत जिनको नाम।
बँधे ते ब्राह्मन-बचनवस, माया-सर्पहि राम ॥१३॥

(स्वागता)—पन्नगारि तबहीं तहँ आए। ब्याल-जाल सब मारि भगाए।
लंकमाँझ तबहीं गइ सीता। सुभ्र देह अवलोकि सुगीता ॥१४॥

गरुड़—(इंद्रवज्रा)

श्रीराम नारायन लोककर्ता। ब्रह्मादि रुद्रादिक दुख्खहर्ता।
सीतेस मोकों कछु देहु सिक्षा। नान्ही बड़ी ईस जु होइ इच्छा ॥१५॥
राम—कीबे हुतो काज सबै सु कीन्हो। आए इहाँ मो कहँ सुख्ख दीन्हो।
पा लागि बैकुंठ-प्रभा-बिहारी। स्वर्लोक गो तक्षन बिष्नुधारी ॥१६॥

(इंद्रवज्रा)—धूम्राक्ष आयो जनु देहधारी। ताको हनूमंत भए प्रहारी।
जेते अकंपादि बलिष्ठ भारे। संग्राम में अंगद बीर मारे ॥१७॥

(उपेंद्रवज्रा)—अकंप-धूम्राक्षहिं जानि जूझयो। महोदरै रावन मंत्र बूझयो।
सदा हमारे तुम मंत्रबादी। रहे कहा ह्वै अतिही बिषादी ॥१८॥
मदोदर—कहै जो कोऊ हितवंत बानी। कहौ सो तासों अति दुख्खदानी।
गुनौ न दावै बहुधा कुदावै। सुधी तबै साधत मौन भावै ॥१९॥
कह्यो सुकाचार्ज सु हौं कहौं जू। सदा तुम्हारे हित संग्रहौं जू।
नृपाल भू में बिधि चारि जानौं। सुनौ महाराज सबै बखानौं ॥२०॥

(भुजंगप्रयात)

यहै लोक एकै सदा साधि जानै। बली बेनु ज्यों आपुहीं ईस मानै।
करै साधना एक पर्लोक ही कों। हरिस्चंद्र जैसे गए दै मही कों ॥२१॥

---

[११] इंद्रजीत–मेघनाद (प्रताप०, सर०)। [१२] जुक्ति–पुत्रि (कौमुदी)। [१३] सर्पहि–सर्पनि (प्रताप०, सर०)। [१५] सीतेस०–सीता सुमिरिहौं (दीन०, प्रताप०, सर०)। कछु–प्रभु (प्रताप०, सर०); ईस (दीन०)। [१६] इहाँ–इतै (कौमुदी)। [१७] दंड–देह (अन्यत्र)। भए–जे है (प्रताप०; सर०)। जेते–जिते (काशि० कौमुदी)। [१८] जानि–जुद्ध (दीन०, प्रताप०, सर०)। [१९] कहौ०–जानीय मन ताकहँ (प्रताप०)। गुनौ–सुनौ (दीन० १) तबै–ताते (प्रताप०); सबै (सर०)। [२०] सुकाचार्ज–शुक्राचार्य (कौमुदी)। तुम्हारे–तुम्हारो (काशि०)।

दुहूँ लोक कों एक साधैं सयानै। बिदेहीन ज्यों बेदबानी बखानै।
नठैं लोक दोऊ हठी एक ऐसे। त्रिसंकै हँसैं ज्यों भलेऊ अनैसे ॥२२॥

(दोहा)—चहूँ राज के मैं कहे, तुमसों राजचरित्र।
रुचै सु कीजै चित्त में, चिंतहु मित्र अमित्र ॥२३॥
चारि भाँति मंत्री कहे, चारि भाँति के मंत्र।
मोहि सुनायो सुक्रजू, सोधि सोधि सब तंत्र ॥२४॥

(छप्पय)—एक राज के काज हतैं निज कारज-काजे।
जैसे सुरथ निकारि सबै मंत्री सुख साजे।
ऐक राज के काज आपने काज बिगारत।
जैसे लोचनहानि सही कबि बलिहि निवारत।
इक प्रभु समेत अपनो भलो करत दासरथिदूत ज्यों।
इक अपनोऊ प्रभु को बुरो करत रावरो पूत ज्यों ॥२५॥

(दोहा)—मंत्र जु चारि प्रकार के, मंत्रिन के जे प्रमान।
बिष से दाड़िम-बीज से, गुर से नींब-समान ॥२६॥

(चंद्रवर्त्म)—राजनीति-मत-तत्व समुझिये। देसकाल गुनि जुद्ध अरुझिये।
मंत्रि मित्र अरि को गुन गहिये। लोक लोक अपलोक न लहिये ॥२७॥

रावण—चारि भाँति नृपता तुम कहियो। चारि मंत्रि मत मैं मन गहियो।
राम मारि सुर एक न बंचिहैं। इंद्रलोक बसोबासहि रचिहैं ॥२८॥

(प्रमिताक्षरा)—उठिकै प्रहस्त सजि सैन चले। बहु भाँति जाइ कपि-पुंज दले।
तब दौरि नील उर मुष्टि हन्यो। असुहीन गिरयो भुव मुंड सन्यो ॥२९॥

(वंशस्थ)

महाबली जूझतहीं प्रहस्त को। चल्यो तहीं रावन मीड़ि हस्त को।
अनेक भेरी बहु दुंदुभी बजैं। गयंद क्रोधांध जहाँ तहाँ गजैं ॥३०॥
सनीर जीमूत-निकास सोभहीं। बिलोकि जाकों सुर-सिद्ध छोभहीं।
प्रचंड नैरित्य-समेत देखिये। सप्रेत मानो महकाल लेखिये ॥३१॥

---

[२२] नठैं—नसै (दीन० १)। [२३] चिंतहु-समुझौ (प्रताप०)। [२५] ऊ—अरु (कौमुदी)। [२६] जु—जे (प्रताप०, सर०)। [२७] लहिये—सहिये (प्रताप०); बहिये (कौमुदी)। [२८] नृपता—नृप जो (कौमुदी)। बसो—सब (दीन० १, प्रताप०, सर०)। [२९] उर—उठि (कौमुदी, प्रकाशिका)। [३०] को—के (प्रताप०)। [३१] निकास—प्रकास (प्रताप०); निकाए (काशि०)। सिद्ध—सिह (दीन० २, सर०); इंद्र (प्रताप०)। महकाल—महिकाल (प्रताप०, सर०)।

बिभीषण—(वसंततिलक)

कोदंड मंडित महारथवंत जो है। सिंहध्वजी समर-पंडित-बृंद मोहै।
माहाबली प्रबल काल कराल नेता। सो मेघनाद सुरनायक जुद्ध-जेता ॥३२॥
जो ब्याघ्र-बेष-रथ ब्याघ्रनि-केतुधारी। संरक्तलोचन कुवेर-बिपत्तिकारी।
लीन्हे त्रिसूल सुरसूलसमूह मानो। श्रीराघवेंद्र अतिकाय वहै सु जानो ॥३३॥
जो कांचनीय रथ सृंगमयूरमाली। जाकी उदार उर-पन्मुख सक्ति साली।
स्वर्धाम-धामहर-कीरति कैं न जानी। सोई महोदर बृकोदर-बंधु मानी ॥३४॥
जाके रथाग्र पर सर्पध्वजा बिराजै। श्रीसूर्यमंडल-बिडंबन ज्योति साजै।
आखंडलीय बपु जो तनत्रानधारी। देवांतकै सु सुरलोक बिपत्तिकारी ॥३५॥
जो हंसकेतु भुजदंड-निषंगधारी। संग्राम-सिंधु बहुधा अवगाहकारी।
लीन्ही छड़ाइ जिहिं देव-अदेव-बामा। सोई खरात्मज बली मकराक्ष नामा ॥३६॥

(भुजंगप्रयात)

लगे स्यंदनैं बाजिराजी बिराजै। जिन्हैं बेग कों पौन को वेग लाजै।
भले स्वर्न की किंकिनी-जूथ बाजैं। मिले दामिनि सों मनो मेघ गाजैं ॥३७॥
पताका बन्यो सुभ्र सार्दूल सोभै। सुरेंद्रादि रुद्रादि के चित्त छोभै।
लसै छत्रमाला हँसै सोमभा कों। रमानाथ जानो दसग्रीव ताकों ॥३८॥
पुरद्वार छाँड्यो सबै आपु आयो। मनो द्वादसादित्य को राहु धायो।
गिरि-ग्राम लै लै हरि-ग्राम मारैं। मनो पद्मिनीपत्र दंती बिहारैं ॥३९॥

(विजय)—देखि विभीषन कों रन रावन सक्ति गही कर रोषरई है।
छूटत ही हनुमंत सो बीचहिं पूछ लपेटिकै डारि दई है।
दूसरि ब्रह्म की सक्ति अमोघ चलावतहीं हाइ हाइ भई है।
राख्यो भले सरनागत लक्ष्मन धूलि कै फूल सी ओड़ि लई है ॥४०॥

(स्रग्विणी)

जोर ही लक्ष्मनै लेन लाग्यो जहीं। मुष्टि छाती हनूमंत मार्‍यो तहीं।
आसुहीं प्रान को नास सो ह्वै गयौ। दंड द्वै तीनि में चेत ताकों भयो ॥१४॥
(मरहट्ठा)—आयो डर प्रानन, लै धनु बानन, कपिदल दियो भगाइ।
चढ़ि हनूमंत पर, रामचंद्र तब राबन रोक्यो जाइ।

---

[३२] माहा—जोधा (कौमुदी); महा (प्रताप०, काशि०; सर०)। [३३] ब्याघ्रानि—व्याघ्रहि (कौमुदी)। संरक्त—आरक्त (वही)। सुर—उर (प्रताप० सर०)। अतिकाय०—ताकों अतिकाय (प्रताप०, सर०)। [३६] निषंग—बिषङ्ग (काशि०); बिषंड (सर०)। [३७] लगे—लगी (कौमुदी)। बेग कों—देखिकै (वही)। [३८] के—को (सर० कौमुदी)। [३९] पत्र—पद्म (कौमुदी)।

धरि एक बान तब, सूत छत्र ध्वज, काटे मुकुट बनाइ।
लागे दूजो सर, छूटि गयो बर, लंक गयो अकुलाइ ॥४२॥

(दोधक)—जद्यपि है अति निर्गुनताई। मानुष-देह धरे रघुराई।
लक्ष्मन राम जहीं अवलोक्यो। नैनन तें न रह्यो जल रोक्यो ॥४३॥

राम—बारक लक्ष्मन मोहि बिलोकौ। मोकहँ प्रान चले तजि, रोकौ।
हौं सुमरौं गुन केतिक तेरे। सोदर पुत्र सहायक मेरे ॥४४॥
लोचन बाहु तुही धनु मेरौ। तू बल बिक्रम बारक हेरौ।
तो बिनु हौं पल प्रान न राखौं। सत्य कहौं कछु झूँठ न भाखौं ॥४५॥
मोहि रही इतनी मन संका। देन न पाइ बिभीषन लंका।
बोलि उठौ प्रभु को प्रन पारौ। नातरु होत है मो मुख कारो ॥४६॥

बिभीषण—(सुंदरी)

मैं बिनऊँ रघुनाथ करौ अब। देव तजौ परिदेवन कों सब।
औषधि लै निसि में फिरि आवहि। 'केसव' सो सब साथ जियावहि ॥४७॥
सोदर सूर को देखतहीं मुख। रावन के पुरवै सिगरे सुख।
बोल सुने हनुमंत करचो प्रनु। कूदि गयो जहँ औषधि को बनु ॥४८॥

राम (षट्पद)—करि आदित्य अदृष्ट नष्ट जम करौं अष्ट बसु।
रुद्रन बोरि समुद्र करौं गंधर्ब सर्ब पसु।
बलित अबेर कुबेर बलिहि गहि देउँ इंद्र अब।
बिधाधरन अविद्य करौं बिन सिद्धि सिद्ध सब।
निजु होहि दासि दिनि की अदिति अनिल अनल मिटि जाइ जल।
सुनि सूरजे सूरज उवतहीं करौं असुर संसार बल ॥४९॥

(भुजंगप्रयात)

हन्यो बिघ्नकारी वली बीर बामैं। गयो सीघ्रगामी गए एक जामैं।
चल्यो लै सबै पर्बतै कै प्रनामै। न जान्यो बिसल्यौषधी कौन तामै ॥५०॥
लसैं औषधी चारु, भो ब्योमचारी। कहै देखि यों देव देवाधिकारी।
पुरी भौम की सी लियो सीस राजै। महामंगलार्थी हनूमंत गाजै ॥५१॥
लगी सक्ति रामानुजै राम साथी। जड़ ह्वै गए ज्यों गिरै हेमहाथी।
तिन्हैं ज्याइबे कों सुनौ प्रेमपाली। चल्यो ज्वालमालीहि लै कीर्तिमाली ॥५२॥

---

[४५] बाहु–बान (कौमुदी)। तो–तूं (काशि०, कौमुदी)। सत्य०–सीय तजौं मुख (दीन०, प्रताप०, सर०)। [४६] मुख०–दुखभारो (दीन० २)। [४७] मैं–हौं (प्रताप०, सर०)। [४९] निजु–बसु (दीन० १); जौ (प्रताप०)। संसार–संघार (दीन०, प्रताप०, सर०)। [५१] चारु–वृंद (दीन०)। भौम–इंदु (दीन० २); काम (दीन० १)। [५२] लगी–लगे (प्रताप०, सर०)। सुनौ–किधौं (प्रताप०); मनौ (सर०)।

किधौं प्रात ही काल जी में बिचारयो। चल्यो अंसुले अंसुमाली सँघारयो।
किधौं जात ज्वालामुखी जोर लीन्हे। महामृत्यु जामें मिटैं होम कीन्हे ॥५३॥
बिना पत्र हैं जत्र पालास फूले। रमैं कोकिलाली भ्रमैं भौंर भूले।
सदानंद रामै महानंद कों लै। हनूमंत आए बसंते मनो लै ॥५४॥

(मोटनक)—ठाढ़े भए लक्ष्मन मूरि छिये। दूनी सुभ सोभ सरीर लिये।
कोदंड लिये यह बात ररैं। लंकेस न जीवत जाइ घरैं ॥५५॥
श्रीराम तहीं उर लाइ लियो। सूँघ्यो सिर आसिष कोटि दियो।
कोलाहल जूथप जूथ कियो। लंका हहली दसकंठ हियो ॥५६॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां लक्ष्मण-मूर्छामोचनन्नाम सप्तदशः प्रकाशः।

१८

(दोधक)—रावन लक्ष्मन कों सुनि नीके। छूटि गए सब साधन जी के।
रे सुत मंत्रि बिलंब न लावौ। कुंभकरन्नहि जाइ जगावौ ॥१॥
राक्षस लक्षन साधन कीने। दुंदुभि दीह बजाइ नवीने।
मत्त अमत्त बड़े अरु बारे। कुंजर-पुंज जगावत हारे ॥२॥
आइ जहीं सुरनारि सभागीं। गावन बीन बजावन लागीं।
जागि उठो तबहीं सुरदोषी। क्षुद्र क्षुधा बहु भक्षन पोषी ॥३॥

(नराच)

अमत्त मत्त दंतिपंक्ति एक कौर को करै। भुजा पसारि आसपास मेघऔघ संघरै।
बिमान आसमान के जहाँ तहाँ भगाइयो। अमान मान सों दिवान कुंभकर्न आइयो ॥

रावण—समुद्र सेतु बाँधि कै मनुष्य दोइ आइयो।
लिये कुचालि बानरालि लंक अंक लाइयो।
मिल्यो बिभीषनौ न मोहि तोहि नेकहू डरयो।
प्रहस्त आदि दे अनेक मंत्रि मित्र संघरयो ॥५॥

---

[५३] सँघारयो-सचारयौ (प्रताप०)। [५६] सूँघ्यो०—चूम्यो मुख (प्रताप०, सर०)। हहली-हहल्यो (कौमुदी)।

[३] गीत—बीन (दीन०, प्रताप०)। [४] ओघ—ओप (कौमुदी)। [५] अंक—आगि (कौमुदी)।

करौ सुकाज आसु आजु चित्त में जु भावई।
असुख्ख होइ जीव-जीव सुक्र सुख्ख पावई।
समेत राम लक्ष्मनै सो बानरालि भक्षिये।
सकोस मंत्रि मित्र पुत्र धाम ग्राम रक्षिये ॥६॥

कुंभकर्ण—(मनोरमा)

सुनिये कुल-भूषन देवबिदूषन। वहु आजिबिराजिन के तमपूषन।
भुव भूप जे चारि पदारथ साधत। तिनकों कबहूँ नहि बाधक बाधत ॥७॥

(पंकजवाटिका)

धर्म करत अति अर्थ वढ़ावत। संतति-हित-रति कोविद गावत।
संतति उपजतहीं निसिबासर। साधत तन मन मुक्ति महीधर ॥८॥
(दोहा)—राजा अरु जुवराज जग, प्रोहित मंत्री मित्र।
कामी कुटिल न सेइयै, कृपन कृतघ्न अमित्र ॥९॥

(दंडक)

कामी बामी मूढ़ क्रोधी कोढ़ी कुलद्वेषी खलु कातर कृतघ्नी मित्रदोही द्विजद्रोहियै।
कुपुरुष किंपुरुष काहली कलही कूर कुटिल कुमंत्री कुलहीन 'केसो' टोहियै।
पापी लोभी झूठ अंध बावरो बधिर गूँग बोन अविवेकी हठी छली निरमोहियै।
सूम सर्वभक्षी दैवबादी जो कुबादी जड़ अपजसी ऐसो भूमि भूपति न सोहियै ॥१०॥

(निशिपालिका)

बानर न जानु सुर जानु सुभगाथ हैं। मानुष न जानु रघुनाथ जगन्नाथ हैं।
जानकिहि देहु करि नेहु कुल देहु सो। आजु रन साजि पुनि गाजि हँसि मेहु सो ११
रावण (दोहा)—कुंभकर्न! करि जुद्ध कै सोइ रहौ घर जाइ।
बेगि बिभीषन ज्यों मिल्यो, गहौ सत्रु के पाइ ॥१२॥
मंदोदरी—इंद्रजीत अतिकाय सुनि, नारांतक सुखदाइ।
भैयन सो प्रभु झुकत हैं, क्यों न कहौ समुझाइ ॥१३॥

---

[६] जीव०—जीव सो असुख्ख सुख्ख (दीन० १)। मंत्रि—बंधु (वही)। धान—बाम (सर०)। [७] आजि०—राजविराजनि (प्रताप०); राजविराजनि (सर०)। तम—तुम (काशि०)। [८] करत—करम (दीन० २)। संतति हित—संतत हित (प्रताप० काशि०); संतहि संतति (सर०)। रति०—मन काम लगावत (दीन० २); काम लगावत (सर०); कोविद काम लगावत (दीन०)। [९] जग—जुग (दीन०); पद (प्रताप०)। [१०] मूढ़—झूठ (कौमुदी)। कुलद्वेषी—कुलदोषी (प्रताप०); कुलद्रोही (सर०)। मित्र०—मित्रदोषी (सर०)। केसो—नाही (दीन०, प्रताप०); कैसे (सर०)। झूठ—सठ (कौमुदी)। [११] मेहु—नेहु (काशि०)। [१२] वेगि—नतरु (दीन० १)। [१३] क्यों—तुम (प्रताप०); तुम क्यों (सर०)।

मंदोदरी—(चंचला)

देव कुंभकर्न के समान जानिये न आन। इंद्र चंद्र बिष्नु रुद्र ब्रह्म को हरयो गुमान।
राजकाज को कहै जु मानिये सु प्रेमपलि। कैं चली न को चलै न काल की कुचाल चालि
बिष्नु भाजि जात छोड़ि देवता असेष। जामदग्नि देखि देखि कैं न कीन्ह नारिबेष।
ईस राम तें बच्यो व वे कि बानरेस वालि। कैं चली न को चलै न काल की कुचाल चालि

मंदोदरी—(विजय)

रामहि चोरन दीन्ही सिया जिनके दुख तो तप लीलि लियो है।
रामहि मारन दीन्हो सहोदर रामहि आवन जान दियो है।
देह धरयो तुमहीं लगि आजु लौं रामहि के पिय ज्याए जियो है।
दूरि करी द्विजता द्विजदेव हरेहीं हरे अतताई कियो है।।१६।।

(दोहा)—संधि करौ बिग्रह करौ सीता कों तौ देहु।
गनौ न पिय देहीन में पतिव्रता को देहु ।।१७।।

रावण (मदिरा)—हौं सुत छाँडि मिलौं मृगलोचनि क्यों छमिहैं अपराध नए।
नारि हरी सुत वाँध्यो तिहारे हौं कालिहि सोदर साँग हए।
वामन माँग्यो त्रिपैग धरा दक्षिना वलि चौदह लोक दए।
रंचक बैर हुतो, हरि वंचक वाँधि पताल तऊ पठए ।।१८।।

मंदोदरी (दोहा)—देवर कुंभकरन्न सो हरि-अरि सो सुत पाइ।
रावन सो प्रभु, कौन कों मंदोदरी डेराइ ।।१९।।

(चामर)

कुंभकर्न रावनै प्रदक्षिना सु दै चल्यो। हाइ हाइ ह्वै रही अकास आसु ही हल्यो।
मध्य क्षुद्रघंटिका किरीट स्रृंग सोभनो। लक्ष पक्ष सों कलिंद इंद्र कों चल्यौ मनो ।।

(नराच)—उड़ैं दिसा दिसा कपीस कोरि कोरि स्वाँसहीं।
चपैं चपेट पेट बाहु जानु जंघ सों तहीं।
लिये वहोरि ऐंचि ऐंचि बीर बाहु बातहीं।
भखे ते अंतरिक्ष रिक्ष लक्ष लक्ष जातहीं ।।२१।।

[१४] कैं–को (प्रताप०, काशि०)। [१५] न कीन्ह–कियो न (प्रताप०, सर०)। नारि–राम (दीन० १) ईस–जाइ (दीन० २)। बच्यो–बचे (कौमुदी) [१६] जिन–जेहि (कौमुदी)। तो–सो (प्रताप०); त्यौं (सर०)। देव–दीन (दीन० १)। [१७] बिग्रह०–बिग्रह तजौ (दीन० १, सर०) कों–लै (सर०)। तौ–लै (दीन० २); प्रभु (सर०)। [१६] पाइ–जाइ (काशि०, सर०)। [२०] सु–हिं (काशि०)। रही–रह्यो (काशि० कौमुदी)। सृंग–सीस (कौमुदी)। कों–पै (कौमुदी)। चल्यो–चढ्यो (काशि०, कौमुदी)। [२१] उड़ैं–उड़े (प्रताप०, सर०) चपैं०–चपेट··· तहीं तहीं (प्रताप०); चले······(सर०); चपैं चपेट बाहु जानु जंघ सों जहीं तहीं (कौमुदी)। बहोरि–हैं और (काशि०, प्रकाशिका); लपेट (कौमुदी)।

कुंभकर्ण—(भुजंगप्रयात)

न हौं ताड़का हौं सुबाहै न मानौं। न हौं संभुकोदंड साँचो बखानौं।
न हौं तालमालो, खरचै जाहि मारो। न हौं दूषनै सिंधु सूधो निहारो ॥२२॥
सुरी आसुरी सुंदरी भोगकर्नै। महाकाल को काल हौं कुंभकर्नै।
सुनौ राम संग्राम कौं तोहि बोलौं। बढ़्यो गर्ब लंकाहि आए सु खोलौं ॥२३॥
उठ्यो केसरी केसरी जोर छायो। बली बालि को पूत लै नील धायो।
हनूमंत सुग्रीव सोभैं सभागे। डसैं डाँस से अंग-मातंग लागे ॥२४॥
दसग्रीव को बंधु सुग्रीव पायो। चल्यो लंक में लै भले अंक लायो।
हनूमंत लातैं हत्यो देहभूल्यो। छुट्यो कर्न नासाहि लै, इंद्र फूल्यो ॥२५॥
सँभारयो घरी एक दू में मरू कै। फिरयो रामहीं सामुहैं सो गदा लै।
हनूमंतजू पूँछि सों लाइ लीन्हो। न जान्यो कवै सिंधु में डारि दीन्हो ॥२६॥
जहीं काल के केतु सो ताल लीनो। करयो रामजू हस्तपादादि हीनो।
चल्यो लोटतै बाइ बक्रै कुचाली। उड़्यो मुंड लै बान ज्यों मुंडमाली ॥२७॥
तहीं स्वर्न के दुंदुभी दीह बाजे। करी पुष्प की बृष्टि जै देव गाजे।
दसग्रीव सोकग्रस्यो लोकहारी। भयो लंक के मध्य आतंक भारी ॥२८॥

(दोहा)—तबहीं गयो निकुंभिला होमहेत इँद्रजीत।
कह्यो तहीं रघुनाथ सों मतो बिभीषन मीत ॥२९॥

(चंचरी)—जोरि अंजुलि कों बिभीषन राम सों बिनती करी।
इंद्रजीत निकुंभिला गयो होम कों रिस जी भरी।
सिद्ध होम न होइ जोलगि ईस तौलगि मारियै।
सिद्ध होहि प्रसिद्ध है यह सर्वथा हम हारियै ॥३०॥

(दोहा)—सोई वाहि हतै कि नर बानर रिक्ष जु कोइ।
बारह वर्ष क्षुधा तृषा निद्रा जीते होइ ॥३१॥

(चंचरी)—रामचंद्र बिदा करयो तब बेगि लक्ष्मन बीर कों।
स्यों बिभीषन जामवंतहि संग अंगद धीर कों।
नील लै नल केसरी हनुमंत अंतक ज्यों चले।
बेगि जाइ निकुंभिला थल जज्ञ के सिगरे दले ॥३२॥

---

[२२] माली–व्याली (कौमुदी)। [२३] सुंदरी०–मानुषी देव (दीन० २)। आए–आयो (प्रताप०, सर०)। [२५] मैं लै–लैकै (कौमुदी)। केसरी०–रोष कै केसरी (दीन०)। अंग–मत्त (दीन०, प्रताप०)। [२६] सो–मो (प्रताप०, सर०)। जू–जो (कौमुदी)। [२७] ज्यों–त्यों (कौमुदी)। [२८] स्वर्न–स्वर्ग (कौमुदी); सुरन (दीन० २)। जै देव–देवेस (दीन०; प्रताप०, सर०)। के-ही (काशि०, सर०)। [३०] कों–कै (प्रताप०, सर०)। [३१] जु–कि (सर०)। तृषा–त्रिया (दीन० २)।

जामवंतहि मारि द्वै सर तीन अंगद छेदियो।
चारि मारि बिभीषनै हनुमंत पंच सु भेदियो।
एक एक अनेक बानर जाइ लक्ष्मन सों भिरचो।
अंध अंधक जुद्ध ज्यों भव सों जरचो भव ही हरचो ॥३३॥

(हरिगीतिका)—रन इंद्रजीत अजीत लक्ष्मन अस्त्रसस्त्रनि संघरै।
सर एक एक अनेक मारत बुंद मंदर ज्यों परै।
तब कोपि राघव सत्तु को सिर बान तक्षन उद्धरचो।
दसकंध संध्यहि करत हो सिर जाइ अंजुलि में परचो ॥३४॥
रन मारि लक्ष्मन मेघनादहि स्वच्छ संख बजाइयो।
कहि साधु साधु समेत इंद्रहि देवता सब आइयो।
कछु माँगिये बर बीर सत्वर, भक्ति श्रीरघुनाथ की।
पहिराइ माल बिसाल अर्चहि कै गए सब साथ की ॥३५॥

(कलहंस)—हति इंद्रजीत कहँ लक्ष्मन आए। हँसि रामचंद्र बहुधा उर लाए।
सुन मित्र पुत्र सुभ सोदर मेरे। कहि कौन कौन सुमिरौं गुन तेरे ॥३६॥

(दोहा)—नींद भूख अरु प्यास कों जौ न साधते बीर।
सीतहि क्यों हम पावते सुनु लक्ष्मन रनधीर ॥३७॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायामिंद्रजिद्वध-वर्णनन्नाम अष्टादशः प्रकाशः ॥ १८ ॥

—— ——

१९

(मोटनक)—देख्यो सिर अंजुलि में जबहीं। हाहा करि भूमि परचो तबहीं।
आए सुत-सोदर मंत्रि तबै। मंदोदरि स्यों तिय आइँ सबै ॥१॥
कोलाहल मंदिर माँझ भयो। मानो प्रभु को उड़ि प्रान गयो।
रोवै दसकंठ बिलाप करै। कोऊ न कहूँ तन धीर धरै ॥२॥

रावण—(दंडक)

आजु आदित्य जल पवन पावक प्रबल चंद आनंदमय ताप जग को हरौ।
गान किनर करौ नृत्य गंधर्व कुल जक्ष बिधि लक्ष उर जक्षकर्दम धरौ।

---

[३३] पंच सु—पंचम (प्रताप०, सर०)। जुरचो—भिर्‌यो (दीन०, प्रताप०, सर०)। [३४] मंदर०—मंदिर ज्यों धरै (दीन०); मंदर ज्यों धरै (सर०)। तक्षन—तीक्षन (कौमुदी) करत हो—को कियो (काशि०)। [३५] सब०—सुभगाथ (कौमुदी)। [३७] प्यास—काम (कौमुदी)।

[१] सिर—मुख (प्रताप०, सर०)।

ब्रह्म रुद्रादि दै देव त्रैलोक के राज को जाइ अभिषेक इंद्रहि करौ।
आजु सिय राम दै लंक कुलदूषनहि, जज्ञ कों जाइ सर्बज्ञ बिप्रनि बरौ ॥३॥

महोदर—(तारक)

प्रभु सोक तजौ जिय धीर धरौ जू। सक सत्रु बध्यो सु बिचार करौ जू।
कुल में अब जीवत जो रहिहै जू। सब सोक-समुद्रहि सो बहिहै जू ॥४॥

मंदोदरी—(अनुकूला)

सोदर जूझयो सुत हितकारी। को गहिहै लंकहि गढ़ भारी।
सीतहि दैके रिपुहि सँधारो। मोहित है बिक्रम बल भारो ॥५॥

रावण—(तामरस)

तुम अब सीतहि देहु न देहू। बिनु सुत बंधु धरौं नहिं देहू।
यहि तन जौ तजि लाजहि रैहौं। बन बसि जाइ सबै दुख सैहौं ॥६॥

मकराक्ष—(भुजंगप्रयात)

कहा कुंभकर्नै कहा इंद्रजीते। करै सोइवो वै करै जुद्ध भीते।
सु जौलौं जियौं हौं सदा दास तेरो। सिया को सकै दै सुनौ मंत्र मेरो ॥७॥
महाराज लंका सदा राज कीजै। करौं जुद्ध मेरी बिदा बेगि दीजै।
हतौं राम स्यों बंधु सुग्रीव मारौं। अजोध्याहि लै राजधानी सुधारौं ॥८॥

बिभीषण—(बसंततिलका)

कोदंड हाथ रघुनाथ सँभारि लीजै। भागे सबै समर जूथप दृष्टि दीजै।
बेटा बलिष्ठ खर को मकराक्ष आयो। संहारकाल जनु काल कराल धायो ॥९॥
सुग्रीव अंगद बली हनुमंन रोक्यो। रोक्यो रह्यो न रघुबीर जहीं बिलोक्यो।
मारयो बिभीषन गदा उर जोर ठेली। काली समान भुज लक्ष्मन-कंठ मेली ॥१०॥
गाढ़े गहे प्रबल अंगनि अंग भारे। काटे कटैं न बहु भाँतिन काटि हारे।
ब्रह्मा दियो बरहि अस्त्र न सस्त्र लागै। लै ही चल्यो समर सिंहहि जोर जागै ॥११॥
मायांधकार दिबि भूतल लीलि लीन्हो। ग्रस्तास्त मानहुँ ससी कहँ राहु कीन्हो।
हाहादि सब्द सब लोग जहीं पुकारे। बाढ़े असेष अँग राक्षस के बिदारे ॥१२॥

---

[३] ताप–त्रास (कौमुदी)। बिप्रनि–बिप्रहु (वही)। [४] तारक–तोटक (काशि० कौमुदी)। जिय–मन (प्रताप०); तन (काशि०)। सक–सब (प्रताप०, सर०)। 'काशि०, कौमुदी' में तुकांत का 'जू' नहीं है। [५] गढ़–अधिकारी (दीन० १, सर०)। [६] वै–वा (कौमुदी) भीतै–जीत्यै (प्रताप०, सर०); रीतै (दीन०)। [७] दै–लै (कौमुदी०)। [८] मेरी–मोकों (कौमुदी)। सुधारौं–सिधारौं (दीन०, प्रताप०, सर०)। [९] संहार०–संहार–काज (दीन०)। [१०] रह्यो–रुकै (दीन० १)। [१२] मायांधकार–गाढ़ांधकार (प्रताप०, सर०)। मानहु०–राहुजुत मानहु चंद्र (प्रताप०, सर०)।

श्रीरामचंद्र पग लागत चित्त हर्षे। देवाधिदेव मिलि सिद्धन पुष्प वर्षे।
मारयो बलिष्ठ मकराक्ष सुबीर भारी। जाके हते रावन रावन गर्बहारी ॥१३॥

(दोहा) जूझतहीं मकराक्ष के रावन अति दुख पाइ।
सत्वर श्रीरघुनाथ पै दियो बसीठ पठाइ ॥१४॥

(मोदक) दूतहि देखतहीं रघुनायक। तापहँ बोलि उठे सुखदायक।
रावन के कुसली सुत सोदर। कारज कौन करै अपने घर ॥१५॥

दूत—(विजय)

पूजि उठे जबहीं सिव कों तबहीं बिधि सुक्र बृहस्पति आए।
कै बिनती मिस कस्यप के तिन देव अदेव सबै बकसाए।
होम की रीति नई सिखई कछु मंत्र दियो श्रुति लागि सिखाए।
हौं इत कों पठयो उनकों उत लै प्रभु मंदिर माँझ सिधाए ॥१६॥

दूत-संदेश

सूपनखा जु बिरूप करी तुम तातें दियो हमहूँ दुख भारौ।
बारिधि-बंधन कीन्हो हुतो तुम मो सुत बंधन कीन्हो तिहारौ।
होइ जु होनी सु ह्वैई रहै न मिटै जिय कोटि बिचार बिचारौ।
दै भृगुनंदन को परसा रघुनंदन सीतहि लै पगु धारौ ॥१७॥

(दोहा) प्रतिउत्तर दूतहि दियो यह कहि श्रीरघुनाथ।
कहियो रावन होहिं जब मंदोदरि के साथ ॥१८॥

रावण—(संयुक्ता)

कहि धौं बिलंब कहा भयो। रघुनाथ पै जबहीं गयो।
केहि भाँति तूँ अवलोकियो। कहु तोहि उत्तर का दियो ॥१९॥

दूत—(दंडक)

भूतल के इंद्र भूमि पौढ़े हुते रामचंद्र मारिच-कनक मृग-छालहि बिछाए जू।
कुंभहर-कुंभकर्ननासाहर-गोद सीस चरन अकंप अक्ष-अरि उर लाए जू।
देवांतक-नारांतक-अतंक त्यों मुसुकात बिभीषन-बैन तन कानन रुखाए जू।
मेघनाद-मकराक्ष-महोदर-प्रानहर-बान त्यों बिलोकत परम सुख पाए जू ॥२०॥

राम-संदेश—(विजय)

भूमि दई भुवदेवन कौं भृगुनंदन भूपन सों बर लैकै।
बामन स्वर्ग दियो मघवै सो बली बलि बाँधि पताल पठैकै।

---

[१३] तीसरा—चौथा चरण 'काशि०, प्रताप०, सर०' में नहीं है। [१४] दुख०—अकुलाइ (कौमुदी)। [१५] पहँ—कहँ (दीन० प्रताप०, सर०)। [१६] बिधि—बुध (दीन० १)। [१७] तुम—हम (प्रताप०, सर०)। हमहूँ—तुमकों (वही)। सीतहि०—अवधपुरी (दीन० १)।

संधि की बातन को प्रतिउत्तर आपुन ही कहिये हित कै कै।
दीन्ही है लंक बिभीषन कों अब देहिं कहा तुमकों यह दैकै ॥२१॥

मंदोदरी—(मालिनी)

तब सब कहि हारे राम को दूत आयो। अब समुझि परी जो पुत्र भैया जुझायो।
दसमुख सुख जीजै राम सों हौं लरौं यों। हरि हर सब हारे देवि दुर्गा लरी ज्यों ॥२२

रावण—

छल करि पठयो तो पावतो जो कुठारै। रघुपति बापुरा को धावतो सिंधुपारै।
हति सुरपतिभर्ता बिष्नु माया-बिलासी। सुनहि सुमुखि तोकों ल्यावतो लक्षि दासी २३

(चामर)

प्रौढ़रूढ़ि को समूढ़ गूढ़गेह में गयो। सुक्र-मंत्र सोधि सोधि होम कों जहीं भयो।
बायुपुत्र बालिपुत्र जामवंत धाइयो। लंक में निसंक अंक लंकनाथ पाइयो ॥२४॥
मत्त दंतिपंक्ति बाजिराजि छोरिकै दई। भाँति भाँति पक्षिराजि भाजि भाजिकै गई।
आसने बिछावने बितान तान तूरियो। जत्रतत्र छत्र चारु चौर चारु चूरियो ॥२५

(भुजंगप्रयात)

भगीं देखिकै संकि लंकेसबाला। दुरी दौरि मंदोदरी चित्रसाला।
तहाँ दौरि गो बालि को पूत फूल्यो। सबै चित्र की पुत्रिका देखि भूल्यो ॥२६॥
गहै दौरि जाकों तजै ता दिसा कों। तजै जा दिसा कों भजै बाम ताकों।
भले कै निहारी सबै चित्रसारी। लहै सुंदरी क्यों दरी का बिहारी ॥२७॥
तजै दृष्टि कै चित्र की सृष्टि धन्या। हँसी एक ताकों तहीं देवकन्या।
तहीं हासहीं देवकन्या दिखाई। गही सक लै लंकरानी बताई ॥२८॥
सु आनी गहे केस लंकेस-रानी। तमश्री मनो सूर-साभानि सानी।
गहे बाँह ऐंचैं चहूँ ओर ताकों। मनो हंस लीन्हें मृनाली लता कों ॥२९॥
छुटी कंठमाला लुरैं हार टूटे। खसैं फूल फैलैं लसैं केस छूटे।
फटी कंचुकी किंकिनी चारु छूटी। पुरी काम की सी मना रुद्र लूटी ॥३०॥
बिना कंचुकी स्वच्छ बक्षोज राजैं। किधौं साँचहू श्रीफलै साभ साजैं।
किधौं स्वर्न के कुंभ लावन्य-पूरे। बसीकन के चूर्न संपूर्न पूरे ॥३१॥
मनो इष्टदेवै सदा इष्ट ही के। किधौं गुच्छ द्वै कामसंजीवनी के।
किधौं चित्त-चौगान के मूल सोहैं। हियें हेम के हाल गोला बिमोहैं ॥३२॥

---

[२३] धावतो०—धाम तौ सिद्ध सारो (दीन० २)। [२४] को—कै (प्रताप०, सर०)। [२५] राजि—छोरि (दीन०)। तूरियो—तारियो (प्रताप०)। छत्र—चौंर चारु चूरि डारियो (सर०)। [२८] दृष्टि—देखि (कौमुदी)। सृष्टि—श्रेष्ठ (वही)। कैं—कों (काशि०); हीं—सों (कौमुदी)। गही—तहाँ (प्रताप०, सर०)। [३०] लुरैं—रुरे (प्रताप०); उरै (सर०)। [३१] चूर्न०—जंत्र हैं पत्र सूरे (दीन० १)। [३२] मनो-किधौं (कौमुदी)।

सुनी लंकरानीन की दीन बानी। तहीं छाँडि दीन्हो महामौन मानी।
उठ्यो सो गदा लै जदा लंकबासी। गए भागिकै सर्व साखाविलासी ॥३३।

मंदोदरी—(दोहा)

सीतहि दीन्हो दुख वृथा साँचो देखौ आजु।
करै जु जैसी त्यों लहै कहा रंक कह राजु ॥३४॥

रावण—(विजय)

को बपुरा जो मिल्यो है बिभीषन है कुलदूषन जीवैगो कौ लौं।
कुंभकरन्न मरचो मघवारिपु तौ री कहा, न डरौं जम सौ लौं।
श्रीरघुनाथ के गातनि सुंदरि जानै न तू कुसली तनु तौ लौं।
साल सबै दिगपालन कौं कर रावन के करवाल है जौ लौं ॥३५॥

(चामर)

रावनै चले चले ते धाम धाम तें सबै। साजि साजि साज सूर गाजि गाजिकै तबै।
दीह दुंदुभी अपार भाँति भाँति बाजहीं। जुद्धभूमि मध्य क्रुद्ध मत्त दंति गाजही ॥३६

(चचरी)—इंद्र श्रीरघुनाथ कों रथहीन भूतल देखिकै।
वेगि सारथि सों कह्यौ रथ साजि जाहि बिसेषि कै।
तून अक्षय वान स्वच्छ अभेद लै तनत्रान कों।
आइयो रन-भूमि में करि अप्रमेय प्रमान कों ॥३७॥

कोटि भाँतिन पौन तें मन तें महा लघुता लसै।
वैठिकै ध्वजअग्र श्रीहनुमंत अंतक ज्यों हँसै।
रामचंद्र प्रदक्षिना करि दक्ष ह्वै जबहीं चढ़े।
पुष्प बर्षि बजाइ दुंदुभि देवता वहुधा बढ़े ॥३८॥

राम कों रथ मध्य देखत क्रोध रावन के बढ़्यो।
बीस बाहुन की सरावलि ब्योम भूतल स्यों मढ़्यो।
सैल ह्वै सिकता गए सब दृष्टि के बल संघरे।
रिक्ष बानर भेदि तक्षन लक्षधा छतना करे ॥३९॥

(सुंदरी)—बानन साथ बिधे सब बानर। जाइ परे मलयाचल की धर।
सूरजमंडल में इक रोवत। एक अकासनदी मुख धोवत ॥४०॥
एक गए जमलोक सहे दुख। एक कहैं भव-भूतन सों सुख।
एक ते सागर माँझ परे मरि। एक गए वड़वानल में जरि ॥४१॥

---

[३५] कुसली०—कुमलातन (दीन०, प्रताप०, सर०)। कौं—के (काशि०)। [३६] साज—बान (दीन० १)। [३६] वढ़्यो—चढ़्यो (प्रताप०, सर०)। छतना—छनदा (प्रताप०); दक्षन (सर०)। [४०] बिधे—जड़े (दीन०, प्रताप०, सर०)। [४१] सुख—रुख (काशि०); दुख (सर०)।

(मोटनक)

श्रीलक्ष्मन कोप करयो जबहीं। छोड़्यो सर पावक को तबहीं।
जारयो सरपंजर छार करयो। नैरित्यन को अति चित्त डरयो ॥४२॥
दौरे हनुमंत बली बल स्यों। लै अंगद-संग सबै दल स्यों।
मानो गिरिराज तजे डर कों। घेरे चहुँ ओर पुरंदर कों ॥४३॥

(हीरक)

अंगद रन-अंगन सब अंगन मुरझाइकै। रिक्षपतिहि अक्षरिपुहि लक्षगति रिझाइकै
बानरगन बारन सम 'केसव' जबहीं मुरयो। रावन दुखदावन जगपावन समुहें जुरयो

(ब्रह्मरूप)—इंद्रजीत-जीत आनि रोकियो सु बान तानि।
छोड़ि दीन बीर बान कान के प्रमान आनि।
स्यों पताक काटि चाप चर्म बर्म मर्म छेदि।
जात भो रसातलै असेष कंठमाल भेदि ॥५॥

(दंडक)

सूरज मुसल नील पट्टिस परिघ नल जामवंत असि हनू तोमर प्रहारे हैं।
परसा सुखेन कुंत केसरी गवय सूल बिभीषन गदा गज भिंदिपाल तारे हैं।
मोगरा द्विबिद तार कटरा कुमुद नेजा अंगद सिला गवाक्ष बिटप बिदारे हैं।
अंकुस सरभ चक्र दधिमुख सेष सक्ति बान तीन रावन श्रीरामचंद्र मारे हैं ॥४६॥

(दोहा)—द्वैभुज श्रीरघुनाथ सों बिरचे जुद्ध-बिलास।
बाहु अठारह जूथपनि मारे 'केसवदास' ॥४७॥

(गंगोदक)

जुद्ध जोई जहाँ भाँति जैसी करै ताहि ताही दिसा रोकि राखै तहीं।
आपने अस्त्र लै सस्त्र काटे सबै ताहि केहूँ कहूँ घाव लागै नहीं।
दौरि सौमित्र लै बान कोदंड ज्या खंड खंडी ध्वजा धीर छत्रावली।
सैल-सृंगावली छोड़ि मानो उड़ी एक ही बेर कै हंस-बंसावली ॥४८॥

(त्रिभंगी)—लक्ष्मन सुभलक्षन बुद्धिबिचक्षन रावन सों रिस छाड़ि दई।
बहु बाननि छंडे जे सिर खंडे ते फिर मंडे सोभ नई।
जद्यपि रन-पंडित गुनगन-मंडित रिपुबल-खंडित भूलि रहे।
तजि मन बच कायक सूरसहायक रघुनायक सों बचन कहे ॥४९॥

---

[४५] आनि—तानि (दीन०, प्रताप०; काशि०)। पताक—प्रताप (काशि०, सर०)।
[४६] गवय—गवाक्ष (दीन०, प्रताप०); गवाय (काशि०, सर०)। तारे—टारे (कौमुदी)।
[४८] जुद्ध—क्रुद्ध (प्रताप०)। भाँति—जुद्ध (दीन०, प्रताप०, सर०)। ताही—तेही (वही)।
ज्या—ज्यौं (प्रताप०); यौं (सर०)। [४९] रिपुबल-रिपुबपु (दीन०, सर०); अरिबपु (प्रताप०)।

लक्ष्मण—(लीलावती)

ठाढ़ो रन गाजत केहूँ न भाजत तन मन लाजत सब लायक।
सुनि श्रीरघुनंदन मुनिजनवंदन दुष्टनिकंदन सुखदायक।
अब टरै न टारो मरै न मारो हौं हठि हारो धरि सायक।
रावनहि न मारत देव पुकारत ह्वै अति आरत जगनायक ॥५०॥

राम (छप्पय)—जेहि सर मधु-मद मर्दि महा मुर मर्दन कीनो।
मारयो कर्कस नरक संख हति संखहु लीनो।
निष्कंटक, सुर-कटक करयो कैटभ-वपु खंड्यो।
खरदूषन त्रिसिरा कबंध तरुखंड बिहंड्यो।
कुंभकरन जेहि संघरयो पल न प्रतिज्ञा तें टरौं।
तेहि बान प्रान दसकंठ के कंठ दसौ खंडित करौं ॥५१॥

(दोहा)—रघुपति पठयो आसुहीं असुहर बुद्धि-निधान।
दस सिर दसहू दिसन कों बलि दै आयो बान ॥५२॥

(मदनमनोहर)

भुवभारहि संजुत राकस को गन जाइ रसातल में अनुराग्यो।
जग में जय सब्द समेतहि 'केसव' राज बिभीषन के सिर जाग्यो।
मयदानवनंदिनि के सुख सों मिलिकै सिय के हिय को दुख भाग्यो।
सुरदुंदुभि-सीस गजा, सर राम को रावन के सिर साथहि लाग्यो ॥५३॥

मंदोदरी—(विजय)

जीति लिये दिगपाल, सची के उसासनि देवनदी सब सूकी।
बासरहू निसि देवन की नरदेवन की रहै संपति ढूकी।
तीनहु लोकन की तरुनीन की बारी बँधी हुती दंड दुदू की।
सेवत स्वान सियार सो रावन सोवत सेज परे अब भू की ॥५४॥

राम—(तारक)

अब जाहु विभीषन रावन लैकै। सकलत्र सबंधु क्रिया सब कैकै।
जन सेवक संपति कोस सँभारौ। मयनंदिनि के सिगरे दुख टारौ ॥५५॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायां श्रीमदिंद्रजिद्विरचितायां रावणवधवर्णनं नामैकोनविंशः प्रकाशः ॥१६॥

---

[५०] केहूँ—नेकु (प्रताप०); क्यौहूँ (सर०)। अब—सो (प्रताप०; सर०)। [५३] सिर—उर (दीन०, प्रताप०, सर०)। [५४] ढूकी—हूकी (कौमुदी)। दुदू—दुहू (प्रताप०, सर); हि दू (कौमुदी)। अब—भव (दीन०, प्रताप०, सर०)। [५५] सिगरे०—दुख दीरघ (दीन० १)।

२०

श्रीराम—(तारक)

जय जाइ कहौ हनुमंत हमारो। सुख दै बहु, दीरघ दुख्ख बिदारो।
सब भूषन भूषित कै सुभगीता। हमकों तुम बेगि दिखावहु सीता ॥१॥
हनुमंत गए तहहीं जहँ सीता। अरु जाइ कही जय की सब गीता।
पग लागि कह्यो जननी पगु धारो। मग चाहत हैं रघुनाथ तिहारो ॥२॥
सिगरे तन भूषन भूषित कीने। धरिकै कुसुमावलि अंग नवीने।
द्विजदेवन बंदि पढ़ी सुभ गीता। तब पावक-अंक चली चढ़ि सीता ॥३॥

(भुजंगप्रयात)

सबक्षा सबै अंग सिंगार सोहैं। बिलोके रमा देव देवी बिमोहैं।
पिता-अंक ज्यों कन्यका सुभ्रगीता। लसै अग्नि के अंक त्यों सुद्ध सीता ॥४॥
महादेव के नेत्र की पुत्रिका सी। कि संग्राम की भूमि में चंडिका सी।
मनो रत्नसिंहासनस्था सची है। किधौं रागिनी राग पूरे रची है ॥५॥
गिरापूर में है पयोदेवता सी। किधौं कंज की मंजु सोभा प्रकासी।
किधौं पद्म हीं में सिफाकंद सोहै। किधौं पद्म के कोष पद्मा बिमोहै ॥६॥
कि सिंदूर सैलाग्र में सिद्ध-कन्या। किधौं पद्मिनी सूरसंजुक्त धन्या।
सरोजासना है मनो चारु बानी। जपा-पुष्प के बीच बैठी भवानी ॥७॥
मनो ओषधी-बृंद में रोहिनी सी। कि दिग्दाह में देखिये जागिनी सी।
धरा-पुत्र ज्यों स्वर्नमाला प्रकासै। मनिज्योति सी तक्षकाभोग भासै ॥८॥

(उपजातिवज्रा)

आसावरी मानिककुंभ सोभै, असोकलग्ना बन देवता सी।
पलासमाला-कुसुमालिमध्ये, बसंतलक्ष्मी सुभलक्षना सी ॥९॥
आरक्तपत्रा सुभ चित्रपुत्री, मनो बिराजै अति चारुबेषा।
संपूर्न - सिंदूर - प्रभास कैधौं, गनेसभालस्थल - चंद्ररेखा ॥१०॥

(विजय)—है मनिदर्पन में प्रतिबिंब कि प्रीति हिये अनुरक्त अभीता।
पुंज-प्रताप में कीरति सी तप-तेजन में मनु सिद्धि बिनीता।

---

[१] दिखावहु–मिलावहु (दीन० १)। [२] तहहीं–तबहीं (दीन० २, प्रताप०, सर०)। मग–मुख (दीन० १); मन (दीन० २)। तिहारो–निहारो (दीन० १)। [३] कुसुमावलि–पुनि अंबर (दीन० २)। [४] कन्यका–पुत्रिका (दीन० २)। [७] सैलाग्र–के ग्राम (दीन० २)। चारु–देव (प्रताप०, सर०)। बीच–पीठ (दीन०, सर०)। [८] मनो–किधौं (कौमुदी)। मनि०–किधौं ज्योति (कौमुदी); मनौ···(सर०)। [१०] पत्रा–पट्ट (प्रताप०, सर०)। प्रभास०–प्रभा बसै धौं (कौमुदी)।

ज्यों रघुनाथ तिहारिय भक्ति लसै उर 'केसव' के सुभगीता।
त्यौं अवलोकिय आनँदकंद हुतासन-मध्य सबासन सीता ॥११॥

(दोहा)—इंद्र-बरुन-जम-सिद्ध सब । धर्मसहित धनपाल।
ब्रह्म-रुद्र लै दसरथहि, आइ गए तेहि काल ॥१२॥

अग्नि—(वसंततिलक)

श्रीरामचंद्र यह संतत सुद्ध सीता। ब्रह्मादि देव सब गावत सुभ्रगीता।
हूजै कृपाल गहिजै जनकात्मजा या। जोगीस-ईस तुम हौ यह जोगमाया ॥१३॥
श्रीरामचंद्र हँसि अंक लगाइ लीनी। संसार साक्षि सुभ पावक आनि दीनी।
देवानि दुंदुभि बजाइ सुगीत गाए। त्रैलोक-लोचन-चकोरनि चित्त भाए ॥१४॥

ब्रह्मा (दोधक)—राम सदा तुम अंतरजामी। लोक चतुर्दस के अभिरामी।
निर्गुन एक तुम्हैं जग जानै। एक सदा गुनवंत बखानै ॥१५॥
ज्योति जगै जग-मध्य तिहारी। जाइ कही न सुनी न निहारी।
कोउ कहै परिमान न ताको। आदि न अंत न रूप न जाको ॥१६

(तारक)—तुमहीं गुनरूप गुनी तुम ठाए। तुम एक तें रूप अनेक बनाए।
इक है जो रजोगुन रूप तिहारो। तेहि सृष्टि रची बिधि नाम बिहारो ॥१७
गुन सत्व धरे तुम रक्षत जाकों। अब बिष्नु कहै सिगरो जग ताकों।
तुमहीं जग रुद्रसरूप सँघारो। कहिये तिन मध्य तमोगुन भारो ॥१८॥
तुमहीं जग हौ जग है तुमहीं में। तुमहीं बिरची मरजाद दुनी में।
मरजादहिं छोड़त जानत जाकों। तबहीं अवतार धरौ तुम ताकों ॥१९॥

तुम मीन ह्वै बेदन कों उधरो जू। तुमहीं धर-कच्छप बेष धरो जू।
तुमहीं जग जज्ञ-बराह भए जू। छिति छीनि लई हिरनाछ हए जू ॥२०॥
तुमहीं नरसिंह को रूप सँवार्‍यो। प्रहलाद को दीरघ दुख्ख बिदार्‍यो।
तुमहीं बलि बावन-छल्यो जू। भृगुनंदन ह्वै छितिछत्र दल्यो जू ॥२१॥
तुमहीं यह रावन दुष्ट सँघार्‍यो। धरनी महँ बूड़त धर्म उबार्‍यो।
तुमहीं पुनि कृष्न को रूप धरौगे। हति दुष्टन कों भुवभार हरौगे ॥२२॥

---

[११] भक्ति—ज्योति (दीन० १)। मध्य—अंक (दीन० १)। [१२] जम०—मुनि सिद्ध जन (दीन०, प्रताप०, सर०)। तेहि—तत (दीन० १)। [१३] यह—जय (दीन० २)। [१४] अंक—कंठ (दीन०)। लीनी—लीन्हो (काशि०, कौमुदी)। दीनी—दीन्हो (वही)। [१६] रूप—मध्य (दीन०)। [१७] तेहि—जिहि (प्रताप०), अति (सर०)। बिधि—बहु (दीन०, सर०)। [१८] तिन—तेहि (कौमुदी); जिहि (प्रताप०); जिन (सर०)। [१९] दुनी—मही (दीन०, प्रताप०); सुनी (सर०)। [२०] छिति—धर (दीन०, प्रताप०, सर०)। [२२] को रूप—स्वरूप (दीन०, प्रताप०, सर०)।

तुम बौध-सरूप दयाहि धरौगे। पुनि कल्कि ह्वै म्लेच्छसमूह हरौगे।
यहि भाँति अनेक सरूप तिहारे। अपनी मरजाद के काज सँवारे ॥२३॥

महादेव—(पंकजवाटिका)

श्रीरघुबर तुम हौ जगनायक। देखहु दसरथ कों सुखदायक।
सोदर सहित पिता-पद पावन। बंदन किय तबहीं मन-भावन ॥२४॥

दशरथ—(निशिपालिका)

राम सुत धर्मजुत सीय मन मानिये। बंधुजन मातुगन प्रान सम जानिये।
ईस सुर-ईस जगदीस सम देखिये। राम कहँ लक्ष्मन बिसेष प्रभु लेखिये ॥२५॥

श्रीराम (चंचला)—जूझि जूझिकै गए जे बानरालि रिक्षराजि।
कुंभकर्न लोहहर्न भक्षियो जे गाजि गाजि।
रूप-रेख स्यों बिसेषि जी उठैं करौ सु आज।
आनि पाइँ लागियो तिन्हैं समेत देवराज ॥२६॥

(दोहा)—बानर-राक्षस-रिक्ष सब, मित्र-कलत्र समेत।
पुष्पक चढ़ि रघुनाथजू, चले अवधि के हेत ॥२७॥

(चंचरी)—सेतु सीतहि सोभना दरसाइ पंचबटी गए।
पाइँ लागि अगस्ति के पुनि अत्रि पै ति बिदा भए।
चित्रकूट बिलोकिकै तबहीं प्रयाग बिलोकियो।
भारद्वाज बसैं जहाँ जिनतें न पावन है बियो ॥२८॥

राम—(तारक)

चिलकै दुति सूछम सोभति बारू। तनु ह्वै जनु सेवत हैं सुर वारू।
प्रतिबिंबित दीप दिपैं जल माहीं। जनु ज्वालमुखीन के जाल नहाहीं ॥२९॥
जल की दुति पीत सितासित सोहै। बहु पातक-घात करै इक को है।
मद एन मलै घसि कुंकुम नीको। नृप भारतखंड दियो जनु टीको ॥३०॥

---

[२३] सँवारे–सुधारे (दीन०, प्रताप०)। [२७] मित्र–पुत्र (प्रताप०, सर०)। [२८] पै–यो (कौमुदी)। [३०] बहु–अति (कौमुदी)। इक–जग (वही)। इसके अनंतर 'दीन० १' और 'प्रताप०' में ये छंद अधिक हैं—

गज देवनदी महँ क्रीड़त देखौ। अति सुंदर स्यामल रूप बिसेषौ।
सुभ-सोभन चौसर सेत मनी को। जनु उत्तम गुच्छ बन्यो तुलसी को ॥
मुकुतामय हार बिराजत है बर। मनि स्यामल सैं जनु रूप मनोहर।
सुभ मालती चौसर में जनु सोभन। अलिराज बस्यो ज्यों सुगंध के लोभन ॥
सिवसैल-सिला अति दीरघ सोभनि। जनु सोमत ता पर सोम भर्यो सनि।
अति नारद को उर उज्जल सोभनु। हरि तामहँ स्यामसरीर बस्यो जनु ॥

लक्ष्मण—(दंडक)

चतुरबदन पंचबदन षटबदन, सहसबदनहूँ सहस गति गाई है।
सात लोक सात द्वीप सातहू रसातलन गंगाजू की सोभा सब ही कों सुखदाई है।
जमुना को जल रह्यो फैलि कै प्रबाह पर 'केसोदास' बीच बीच गिरा की गोराई है।
सोभन सरीर पर कुंकुम बिलेपन कै स्यामल दुकूल भीन झलकति झाई है ॥३१॥

सुग्रीव—(चंद्रकला)

भवसागर की जनु सेतु उजागर सुंदरता सिगरी बस की।
तिहुँ देवन की दुति सी दरसै गति सोषै त्रिदोषन के रस की।
कहि 'केसव' बेदत्रयी मति सी परितापत्रयी तल कों मसकी।
सब बंदैं त्रिकाल त्रिलोक त्रिबेनिहि केतु त्रिबिक्रम के जस की ॥३२॥

विभीषण—(दंडक)

भूतल की बेनी सी त्रिबेनी सुभ सोभजति एकै कहैं सुरपुर-मारग बिभात है।
एकै कहैं पूरन अनादि जो अनंत कोऊ ताको यह 'केसोदास' द्रवरूप गात है।
सब सुखकर सब सोभाकर मेरे जान कीनो यह अद्भुत सुगंध अवदात है।
दरस-परसहूँ तें थिर चर जीवन को कोटि कोटि जन्म की कुगंध मिटि जात है ॥३३॥

(भुजंगप्रयात)

भरद्वाज की बाटिका राम देखी। महादेव की सी बनी चित्त लेखी।
सबै बृक्ष मंदारहूँ तें भले हैं। छहूँ काल के फूल फूले फले हैं ॥३४॥
कहूँ हंसिनी हंस स्यों चित्त चोरैं। चुनैं ओस के बुंद मुक्तानि भोरैं।
सुकाली कहूँ सारिकाली बिराजैं। पढ़ैं बेदमंत्रावली भेद साजैं ॥३५॥
कहूँ बृक्षमूलस्थली तोय पीवैं। महामत्त मातंग सीमा न छीवैं।
कहूँ बिप्र-पूजा कहूँ देव-अर्चा। कहूँ जोग-शिक्षा कहूँ बेद-चर्चा ॥३६॥
कहूँ साधु पौरानकी गाथ गावैं। कहूँ जज्ञ की सुभ्र साला बनावैं।
कहूँ होम-मंत्रादि के धर्म धारैं। कहूँ बैठिकै ब्रह्मबिद्या बिचारैं ॥३७॥
सुवाई जहाँ देखियै वक्त्ररागी। चलै पिप्पलै तिक्ष बुध्यै सभागी।
कँपै श्रीफलै-पत्र हैं जत्र नीके। सुरामानुरागी सबै राम ही के ॥३८॥
जहाँ बारिदै बृंद बाजानि साजैं। मयूरै जहाँ नृत्यकारी बिराजैं।
भरद्वाज बैठे तहाँ बिप्र मोहैं। मनो एक ही वक्त्र लोकेस सोहैं ॥३९॥

---

[३२] सोषै–सोवै (प्रताप०); सोभै (सर०)। [३३] हूँ–ही (प्रताप०, कौमुदी)। [३५] भेद–सोभ (दीन० १) [३५] होम०–अग्नि होमादि (दीन०, प्रताप०, सर०)। [३८] पत्र–सक्ति (दीन०, सर०)। [३९] जहाँ नृत्य–महा नृत्य (प्रताप०, सर०)। हीं बक्त्र–हीं चक्र (दीन० १); बानास (दीन० २)।

लक्ष्मण—(दंडक)

'केसोदास' मृगज-बछेरू चोषै बाघनीन चाटत सुरभि बाघबालकवदन है।
सिंहन की सटा ऐचै कलभ करनि करि सिंहन को आसन गयंद को रदन है।
फनी के फनन पर नाचत मुदित मोर क्रोध न बिरोध जहाँ मद न मदन है।
बानर फिरत डोरे डोरे अंध तापसनि सिव को समाज कैधौं रिषि को सदन है ॥४०॥

(भुजंगप्रयात)

जहाँ कोमलै वल्कलै बास सोहैं। जिन्हैं अल्पधी कल्पसाखी बिमोहैं।
धरे सृंखला दुख्ख दाहैं दुरंतै। मनौ संभुजू संग लीन्हैं अनंतै ॥४१॥

(मालिनी)

प्रसमितरज राजैं हर्ष बर्षा-समै से। बिरलजटन साखी स्वर्नदीकूल कैसे।
जगमग दरसाई सूर के अंसु ऐसे। सुरग-नरक-हंता नाम श्रीराम कैसे ॥४२॥

(भुजंगप्रयात)

गहे केसपासै प्रिया सी बखानो। कँपै साप कें त्रास तें गात मानो।
मनो चंद्रमा चंद्रिका चारु साजै। जरा सों मिले यों भरद्वाज राजै ॥४३॥

(दोहा)—भस्म त्रिपुंडक सोभिजै, बरनत बुद्धिउदार।
मनो त्रिसोता-स्रोत-दुति बंदत लगी लिलार ॥४४॥

(भुजंगप्रयात)

मनो अंकुराली लसै सत्य की सी। किधौं बेदबिद्या-प्रभाई भ्रमी सी।
रमै गंग की जोति ज्यों जन्हु नीकी। बिराजै सदा सोभ दंतावली की ॥४५॥

(गीतिका)—भ्रकुटी बिराजति स्वेत मानहु मंत्र अद्भुत साम के।
जिनके बिलोकतहीं बिलात असेष कार्मुक काम के।
मुखबास-आस प्रकास 'केसव' भौंर भीरन साजहीं।
जनु साम के सुभ स्वच्छ अक्षर द्वै सपक्ष बिराजहीं ॥४६॥
तनु कंबु-कंठ त्रिरेख राजति रज्जु सी उनमानिये।
अबिनीत इंद्रियनिग्रही तिनके निबंधन जानिये।

---

[४०] सिव०–रिषि को निवास कैधौं सिव (दीन०, प्रताप०, सर०)। [४१] जिन्हैं–सबै (प्रताप०, सर०)। [४४] सोभिजै–सोभ सुभ (दीन० १, प्रताप०, सर०)। बरनत–केसव (दीन० १)। [४५] प्रभाई–भ्रमाई (प्रताप०, सर०)। रमै–बनी (दीन० १); बसै (सर०)। जोति–सोभ (दीन०, प्रताप०, सर०)। सोभ–ज्योति (दीन०, प्रताप०, सर०)। [४६] कार्मुक०–कर्म कुकाम (दीन० १); कर्म कुबाम (दीन० २), कर्मज काम (का०शि०); कर्म अकाम (प्रताप०); कर्म बिकाम (सर०)।

उपबीत उज्जल सोभिजै उर देखि यों बरनैं सबै।
सुरआपगा तर्पसिंधु में जनु सेत श्री दरसै अबै ॥४७॥

(दोहा)—फटिकमाल सुभ सोभिजै उर-रिषिराज उदार।
अमल सकल श्रुति-बरनमय मनो गिरा को हार ॥४८॥

(सुंदरी)—जद्यपि है रसरूप रस्यो तनु। दंडहि सों अवलंबित है मनु।
धूमसिखान के ब्याज मनो गुनि। देवपुरी कहँ पंथ रच्यो मुनि ॥४९॥
रूप धरे बड़वानल को जनु। पोषत हैं पयपानहिं सों तनु।
क्रोध-भुजंगम-मंत्र बखानहु। मोह-महातम को रबि मानहु ॥५०॥
सत्य-सखा असखा कलि के जनु। पर्बत-ओषधि सिद्धिन के मनु।
पाप-कलापन के दिनदूषन। देखि प्रनाम कियो जगभूषन ॥५१॥

(पद्धटिका)—सीता-समेत सेषावतार। दंडवत किये रिषि के अपार।
नरभेष बिभीषन जामवंत। सुग्रीव बालिसुत हनूमंत ॥५२॥
रिषिराज करी पूजा अपार। पुनि कुसलप्रस्न पूँछी उदार।
राम—सत्रुघ्न भरथ कुसली निकेत। सब मित्र मंत्रि मातनि समेत ॥५३॥
भरद्वाज—कहि कुसल कहौं तुम आदिदेव। सब जानत हौ संसारभेव।
बिधि बिष्नु संभु रबि ससि उदार। सब पावकादि अंसावतार ॥५४॥
ब्रह्मादि सकल परमानु अंत। तुमहीं हौं रघुपति अज अनंत।
अब सकल दान दै पूजि बिप्र। पुनि करहु बिजै बैकुंठ क्षिप्र ॥५५॥

इति श्रीमत्सकललोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां रामस्य भरद्वाजाश्रमगमनन्नाम बिंशः प्रकाशः ॥२०॥

२१

श्रीराम—(सोमराजी)

कहा दान दीजै। सु कै भाँति कीजै।
जहाँ होइ जैसो। कहौ बिप्र तैसो ॥१॥

भरद्वाज—(दोहा)

सात्विक राजस तामसी दान तीनि बिधि जानि।
उत्तम मध्यम अधम पुनि 'केसवदास' बखानि ॥२॥

---

[४७] बरनैं–बरन (प्रताप०, सर०); बरनौं (कौमुदी)। जनु–जन (कौमुदी)। [४९] रूप-सत्य (कौमुदी)। [५०] पानहिं०–पाननहीं (प्रताप०, सर०)। मनु–मनु (वही)। [५१] कियो–करे (प्रताप०, सर०)। [५५] तुमहीं०–सब तुमहीं हो रघुपति अनंत (प्रताप०); तुमहीं हो श्रीरघुपति अनंत (सर०)। अज–अति (काशि०)।

(चंचरी)—पूजियै द्विज आपने कर नारिसंजुत जानियै।
देवदेवहि थापिकै पुनि बेदमंत्र बखानियै।
हाथ लै कुस गोत उच्चरि स्वर्नजुक्त प्रमानियै।
दान दै कछु और दीजहि दान सात्विक जानियै ।।३।।

(दोधक)—देहि नहीं अपने कर दानै। और के हाथ जु मंगल जानै।
दानहि देत जु आलस आवै। सो वह राजस दान कहावै ।।४।।

(गोपाल)—बिप्रन दीजत हीनबिधान। जानहु ताकहँ तामस दान।
बिप्रन जानहु जू जगरूप। जानहु सिगरे विष्नुस्वरूप ।।५।।

(तोमर)—द्विजधाम देइ जु जाइ। बहु भाँति पूजि सुराइ।
कछु नाहिनै परिमान। कहियै सु उत्तम दान ।।६।।
द्विज कौं जु देइ बुलाइ। कहियै सु मध्यम राइ।
गुनि जाचना-मिस दानु। अति हीन ताकहँ जानु ।।७।।

(दोहा)—प्रतिदिन दीजत नेम सों ताकहँ नित्य बखान।
कालहि पाइ जु दीजियै सो नैमित्तिक दान ।।८।।

(तोटक)—पहिले निजवर्तिन देहु अवै। पुनि पावहिं नागर लोग सबै।
पुनि देहु सबै निज देसिन कों। उबरचो धन देहु बिदेसिन कौं ।।९।।
दान सकाम अकाम कहे हैं। पूरि सबै जग माँझ रहे हैं।
इच्छतहीं फल होत सकामै। रामनिमित्त ते जानि अकामै ।।१०।।

---

[३] दीजहि–दीजै (प्रताप०, सर०)। [४] जु–सो (दीन० १)। [५] बिधान–बिधानै (काशि०, कौमुदी)। दान–दानै (वही)। बिप्रन०–बिप्रन जानहु जै जगरूपै (काशि०); बिप्रन जानहु ये नररूपै (कौमुदी)। जानहु–देखहु (दीन०, प्रताप०)। सिगरे–ये सब (काशि०, कौमुदी)। स्वरूप–स्वरूपै (वही)। इसके अनंतर दीन०, प्रताप०, काशि०, सर० में यह श्लोक भी है—

साचारो वा निराचारो साधुर्वासाधुरेव च। अविद्यो वा सविद्यो वा ब्राह्मणो मामकी तनुः ।।

[६] देइ०–देत जु (प्रताप०); देहि जो (काशि०); दीजतु (सर०)। जाइ–धाइ (दीन० १)। [७] जु०–जु देत (प्रताप०, सर०), जे देत (काशि०)। कहियै–सुनियै (प्रताप०, सर०)। इसके अनंतर दीन०, प्रताप०, काशि०, सर० में यह श्लोक भी है—

अभिगम्योत्तमं दानमाहूतं चैव मध्यमम्। अधमं याच्यमानं स्यात्सेवादानं तु निष्फलम् ।।

[८] दीजियै–देत हैं (प्रताप०, सर०)। इसके बाद दीन०, प्रताप०, काशि०, सर० में यह श्लोक है —

आश्रितं साधुकर्माणं ब्राह्मणं यो व्यतिक्रमेत्। तस्य पुण्यचयोऽप्याशु क्षयं याति न संशयः ।।

[१०] इच्छतहीं–इच्छित ही (काशि०, कौमुदी)। ते०–सखा निहकामहि (दीन० १); बखानि··· (प्रताप); बखानु····(सर०)।

दान ते दक्षिन बाम बखानौ। धर्मनिमित्त ते दक्षिन जानौ।
धर्मबिरुद्ध ते बाम गुनौ जू। दान कुदान सबै ते सुनौ जू ॥११॥
देहि सुदान ते उत्तम लेखौ। देहि कुदान तिन्हैं जिनि देखौ।
छोड़ि सबै दिन दानहि दीजै। दानहि तें सबके मत लीजै ॥१२॥

(दोहा)—'केसव' दान अनंत हैं, बनैं न काहू देत।
यहै जानि भुवभूप सब भूमिदान ही देत ॥१३॥

राम—कौनहि दीजै दान भुव, हैं रिषिराज अनेक।
भरद्वाज—देहु सनाढ्यन आदि दै आए सहित बिबेक ॥१४॥

राम—(उपेंद्रवज्रा)

कहौ भरद्वाज सनाढ्य को हैं। भए कहाँ तें तब मध्य सोहैं।
हूते सबै बिप्र प्रभाव-भीने। तजे ते क्यों ये अति पूज्य कीने ॥१५॥

भरद्वाज—

गिरीस नारायन पै सुनी ज्यों। गिरीस मोसों जु कही कहौं त्यों।
सुनौ सु सीतापति साधु चर्चा। करी सु जातें तुम ब्रह्म-अर्चा ॥१६॥

नारायण—(मोटनक)

मोतें जल नाभि-सरोज बढ्यो। ऊँचो अति उग्र अकास चढ्यो।
तातें चतुरानन-रूप-रयो। ब्रह्मा यह नाम प्रगट्ट भयो ॥१७॥
ताके मन तें सुत चारि भए। सोहैं अति पावन बेदमए।
चौहूँ जन के मन तें उपजे। भूदेव सनाढ्य ते मोहिं भजे ॥१८॥

---

[११] दान कुदान०—बहुरो सब दान कुदान सुनौ जू (दीन० १); ओरस दान कुदान सुनौ जू (दीन० २)। [१२] दिन—नित (दीन० १)। ते सबके—ते बसकै (दीन०, कौमुदी); केसव कै (प्रताप०)। मत—तुम (दीन० २, प्रताप०)। [१३] ही—कहैं (प्रताप०); हू (सर०)। इसके अनंतर 'दीन०, प्रताप०, काशि०, सर०' में ये श्लोक हैं—

यत्किंचित्कुरुते पापं ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा। अपि गोचर्ममात्रेण भूमिदानेन शुद्धयति ॥
सप्तहस्तेन दंडेन त्रिंशद्दंडैर्निवर्तनम्। दश तान्येव गोचर्म दत्वा स्वर्गे महीयते ॥
अन्यायेन हृता भूनिर्यैर्नरैरपहारिता। हरन्तो हारयन्तश्च हन्यन्ते सप्तमं कुलम् ॥

[१६] करी—करो (कौमुदी)। [१७] तातें—तामें (प्रताप०, सर०)। [१८] 'दीन०, प्रताप०, काशि०' में ये दो चरण अधिक हैं—

दीन्हो तुमहीं तिन जो हित जू। ह्वैहौ तुम ब्रह्म पुरोहित जू।

भरद्वाज—(गौरी)

तातें रिषिराज सबै तुम छाँडौ। भूदेव सनाढ्यन के पद माँडौ।
दीन्हो तुमहीं तिनकों बर रूरे। चौहूँ जुग होहु तपोबल पूरे ॥१६॥

(उपेंद्रवज्रा)

सनाढ्य-पूजा अघ-ओघहारी। अखंड आखंडल-लोक-धारी।
असेष लोकावधि-भूमिचारी। समूल नासै नृप दोष-कारी ॥२०॥

राम—(तोटक)

हनुमंत बली तुम जाहु तहाँ। मुनिबेष भरथ्थ बसंत जहाँ।
रिषि के हम भोजन आजु करैं। पुनि प्रात भरथ्थहिं अंक भरैं ॥२१॥

(चतुष्पदी)— हनुमंत बिलोके भरथ ससोके अंग सकल मलधारी।
बकला पहिरे तन सीस जटागन हैं फल-मूल-अहारी।
बहु मंत्रिन गन में राजकाज में सब सुख सों हित तोरे।
रघुनाथ-पादुकनि, मन बच प्रभु गनि सेवत अंजुलि जोरे ॥२२॥

हनुमान—(चतुष्पदी)

सब सोकनि छाँडौ, भूषन माँडौ, कीजै बिबिध बधाए।
सुरकाज सँवारे, रावन मारे, रघुनंदन घर आए।
सुग्रीव सुजोधन, सहित बिभीषन, सुनहु भरथ सुभगीता।
जय कीरति ज्यों सँग अमल सकल अँग सोहत लक्ष्मन सीता ॥२३॥

(पद्धटिका)

सुनि परम भावती भरथ बात। भए सुखसमुद्र में मगनगात।
यह सत्य किधौं कछु स्वप्न ईस। अब कहा कहो मोसन कपीस ॥२४॥

जैसे चकोर लीलै अँगार। तेहि भूलि जात सिगरी सँभार।
जी उठत उवत ज्यों उदधिनंद। त्यों भरथ भए सुनि रामचंद ॥२५॥

ज्यों सोइ रहत सब सूरहीन। अति ह्वै अचेत जद्यपि प्रबीन।
ज्यों उवत उठत हँसि करत भोग। त्यों रामचंद्र सुनि अवध लोग ॥२६॥

---

[१९] होहु–होत (प्रताप०, सर०); होय (कौमुदी)। [२०] असेष०–असेष धौं ध्यावहिं आदि चारी (प्रताप०); अशेष अद्यावधि···(सर०)। [२१] प्रात–कालि (दीन० २)। [२२] हैं–तन (दीन० १); प्रन (दीन० २)। सुख–ही (दीन०, प्रताप०); हित–त्रिन (प्रताप०, सर०)। प्रभु–क्रम (दीन० २)। बच–तन (काशि०, सर०)। गनि–करि (वही)। [२६] अति०–ह्वै कै (दीन०, सर०)।

(मालिनी)

जहँ तहँ गज गाजैं दुंदभी दीह बाजैं। बहुबरन पताका स्यंदनास्वादि राजैं।
भरथ सकल सेन-मध्य यों वेष कीन्हे। सुरपति जनु आए मेघमालनि लीन्हे ॥२७॥
सकल नगरवासी भिन्न सेनानि साजैं। रथ सुगज पताका झुंडझुंडानि राजैं।
थल थल सब सोभैं सुभ्र सोभानि छाई। रघुपति सुनि मानौ आंधि सी आज आई २८

(चामर)

जत्र तत्र दास ईस ब्योम तें बिलोकहीं। वानरालि रीछराजि दृष्टि-सृष्टि रोकहीं।
ज्यों चकोर मेघओघ-मध्य चंद्रलेखहीं। भानु के समान जान त्यों बिमान देखहीं २९

(मदनमनोहर दंडक)

आवत बिलोकि रघुबीर लघु बीर तजि ब्योमगति भूतल बिमान तब आइयो।
रामपद-पद्म सुखसद्म कहँ बंधु जुग दौरि तब षट्पद समान सुख पाइयो।
चूमि मुख सूँघि सिर अंक रघुनाथ धरि अश्रुजल लोचननि देखि उर लाइयो।
देव मुनि बृद्ध परसिद्ध सब सिद्धजन हर्षि तन पुष्प-बरषानि-बरषाइयो ॥३०॥

(दोहा)—भरथ-चरन लक्ष्मन परे लक्ष्मन के सत्रुघ्न।
सीता-पग लागत दियो आसिष सुभ सत्रुघ्न ॥३१॥
मिले भरथ अरु सत्रुहन सुग्रीवहिं अकुलाइ।
बहुरि बिभीषन कों मिले अंगद कों सुख पाइ ॥३२॥

(आभीर)—जामवंत, नल, नील। मिले भरथ सुभसील।
गवय, गवाक्ष, गयंद। कबिकुल सब सुखकंद ॥३३॥
रिषि बसिष्ठ कहँ देखि। जनम सफल करि लेखि।
राम परे उठि पाइ। लछिमन सहित सुभाइ ॥३४॥

(दोहा)—लै सुग्रीव बिभीषनहि करि करि बिनय अनंत।
पाइन परे बसिष्ठ के कपिकुल बल-बुधिवंत ॥३५॥

राम—(पद्धटिका)

सुनिजै बसिष्ठ कुलइष्टदेव। इन कपिनायक के सकल भेव।
हम बूड़त हे बिपदा-समुद्र। इन राखि लियो संग्रामरुद्र ॥३६॥
सब आसमुद्र की भू सोधाइ। तब दई जनकतनया बताइ।
निजु भाइ भरथ ज्यों दुख्खहर्न। अति समर अमर हत्यो कुंभकर्न ॥३७॥

[२७] स्यंदना०—स्यंदनस्था (दीन०, प्रताप०, सर०)। [२८] सुगज—गजस (प्रताप०); गजनि (सर०)। सी—की (प्रताप०); मै (सर०)। आज—आयु (प्रताप०); आपु (सर०)। [२९] तें—त्यों (कौमुदी)। [३०] देखि—पेखि (कौमुदी)। तन—सब (दीन० २)। [३५] लै—नल (दीन० २)।

इन हरे बिभीषन सकल सूल। मन मानत हौं सत्रुघ्न-तूल।
दसकंठ हनत सब देव साखि। इन लए एक हनुमंत राखि ॥३८॥

तजि तिय सुत सोदर बंधु ईस। मिले हमहिं काय मन बच रिषीस।
दइ मीचु इंद्रजित की बताइ। अरु मंत्र जपत रावन दिखाइ ॥३९॥

श्रीराम--(तोटक)

इन अंगद सत्रु अनेक हने। हम हेतु सहे दिन दुख्ख घने।
बहु रावन कों सिख दै दुख दै। फिरि आए भले सिरभूपन लै ॥४०॥
दसकंध की जाइ जु गूढ़थली। तिनके तन सों बहु भाँति दली।
महि में मय की तनया करषी। मति मारि अकंपन कों हरषी ॥४१॥

(दोहा)-- मार्‌यो मैं अपराध बिन इनको पितु गुनग्राम।
मनसा बाचा कर्मना कीन्हे मेरे काम ॥४२॥

(गीतिका)—इन जामवंत अनंत राक्षस लक्ष लक्षन ही हने।
मृगराज ज्यों बनराज में गजराज मारत ना गने।
बलभावना-बलवान कोटिक रावनादिक हारहीं।
चढ़ि ब्योम दीह बिमान देवदिवान आनि निहारहीं ॥४३॥

(दोहा)—करौ न करिहैं करत अब कोऊ ऐसो कर्म।
जैसो बाँध्यो नल उपल जलनिधि सेतु सधर्म ॥४४॥

(गीतिका)—हनुमंत ये जिन मित्रता रबिपुत्र सों हम सों करी।
जलजाल कालकराल-माल उफाल पार धरा धरी।
निरसंक लंक निहारि रावन धाम धामनि धाइयो।
इक बाटिका तरुमूल सीतहिं देखिकै दुख पाइयो ॥४५॥

तरु तोरि डारि प्रहारि किंकर मंत्रि-पुत्र सँघारियो।
रन मारि अक्षकुमार रावन गर्व सों पुर जारियो।
पुनि सौंपि सीतहिं मुद्रिका, मनि सीस की जब पाइयो।
बलवंत नाँघि अनंत सागर तैसही फिरि आइयो ॥४६॥

---

[३८] दसकंठ–दमकंध (प्रताप०, सर०)। [४०] सिख–दुख (दीन०)। दुख दै–सुखदै (दीन० २, कौमुदी); सुख लै (दीन० १)। [४१] जु–कै (कौमुदी); जय (सर०)। तिनके०–तनिकै तिन सी बहुभीर (कौमुदी)। [४३] मारत–गाजत (दीन० २)। ना गने–नीगने (कौमुदी)। देव०–देवीदेव आनि (प्रताप०)। [४४] करो–करै (प्रताप०, काशि०, सर०)। सधर्म–समर्म (काशि०); सुधर्म (कौमुदी)। [४५] जल–उप (दीन० २)। माल–ब्याल (प्रताप०); बाल (दीन०, सर०)। [४६] डारि–झारि (प्रताप०); भारि (सर०)। फिरि–तब (प्रताप०, सर०)।

दसकंठ देखि बिभीषनै रन ब्रह्मसक्ति चलाइयो।
करि पीठि त्यों सरनागतै तब आपु बक्षसि लाइयो।
इक जाम जामिनि में गयो हति दुष्ट पर्बत आनिकै।
तेहि काल लक्ष्मन कों जियाइ जियाइयो हम जानिकै ॥४७॥

(दोहा)—अपने प्रभु को आपनो कियो हमारो काज।
रिषि जु कह्यौ हनुमंत सों भक्तन को सिरताज ॥४८॥

(चामर)

बीर धीर साहसी बली जे बिक्रमी क्षमी। साधु सर्बदा सुधी तपी जपी जे संजमी।
भोगभाग जोग जाग बेगवंत हैं जिते। बायुपुत्र रामकाज वारि डारियै तिते ॥४९

(दोहा)—सीता पाई रिपु हत्यो देख्यो तुम अरु गेहु।
रामायन-जयसिद्धि को कपिसिर टीको देहु ॥५०॥
यहि बिधि कपिकुल-गुनन कों कहत हुते श्रीराम।
देख्यो आश्रम भरथ को 'केसव' नंदीग्राम ॥५१॥

(सुंदरी)

पुष्पक तें उतरे रघुनायक। जक्षपुरी पठयो सुखदायक।
सोदर कों अवलोकि तपोथल। भूलि रह्यो कपि-राक्षस को दल ॥५२॥
कोचन को अति सुद्ध सिंघासन। राम रच्यो तेहि ऊपर आसन।
कोपर हीरन को अति कोमल। तामहँ कुंकुम चंदन को जल ॥५३॥

(दोहा)—चरनकमल श्रीराम के भरथ पखारे आप।
जातें गंगादिकन को मिटत सकल संताप ॥५४॥

(पंकजवाटिका)

सूरज-चरन बिभीषन के अति। आपुहि भरथ पखारि महामति।
दुंदुभि धुनि करिकै बहु भेवनि। पुष्प बरषि हरषे दिबि देवनि ॥५५॥

(दोहा)—पीछे दुरि सत्रुघ्न पै लखन धुवाए पाइ।
चरन सुमित्रि पखारियो अंगदादि के आइ ॥५६॥

(तोमर)—सिर तें जटानि उतारि। अँग अंगरागनि धारि।
तन भूषि भूषन बस्त्र। कटि सों कसे सब सस्त्र ॥५७॥

---

[४७] बक्षसि०—उरसि लगाइयो (प्रताप०, सर०)। [४९] राम—मोर (दीन० १, कौमुदी)। [५२] भूलि—रीझि (प्रताप, सर०)। [५५] बहु—निज (दीन० २); सब (सर०)। दिबि—अति (वही)। [५६] पै—सन (कौमुदी)। चरन०—पग सौमित्रि (कौमुदी)।

(दोहा)—सिर तें पावन पादुका लै करि भरथ बिचित्र।
चरनकमल-तरहरि धरी हँसि पहिरी जगमित्र ॥५८॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां रामस्य नंदिग्रामप्रवेशो नामैकविंशतितमः प्रकाशः ॥२१॥

२२

(सुंदरी)—औधपुरी कहँ राम चले जब। ठौरहि ठौर बिराजत हैं सब।
भर्थ भए सुभ सारथि सोभन। चौंर धरे रबिपुत्र बिभीषन ॥१॥

(तरंगिनी)—लीनी छरी दुहुँ बीर। सत्रुघ्न लक्ष्मन धीर।
टारै जहाँ तहं भीर। आनंदजुक्त सरीर ॥२॥

(दोधक)—भूतलहूँ दिबि भीर बिराजै। दीह दुहूँ दिसि दुंदुभि बाजै।
भाट भले बिरदावलि गावैं। मोद मनौ प्रतिबिंब बढ़ावैं ॥३॥
भूतल की रज देव नसावैं। फूलन की बरषा बरसावैं।
हीन-निमेष सबै अवलोकैं। होड़ परी बहुधा दुहूँ लोक ॥४॥

(तारक)

सिगरे दल औधपुरी जब देखी। अमरावति तें अति सुंदर लेखी।
चहुँ ओर बिराजति दीरघ खाँई। सुभ देवतरंगिनि सी फिरि आई ॥५॥
अति दीरघ कंचनकोट बिराजै। मनि लाल कँगूरन की रुचि राजै।
पुर सुंदर मध्य लसै छबि-छायो। परिबेष मनौ रबि को फिरि आयो ॥६॥

(दोहा)—बिबिध पताका सोभिजैं ऊँचे 'केसवदास'।
दिबि देवन के सोभिजैं मानहु व्यजन-बिलास ॥७॥

(विजया)—चढ़ीं प्रति मंदिर सोभ बढ़ी तरुनी अवलोकन कों रघुनंदनु।
मनो गृहदीपति देह धरें सु किधौं गृहदेबि बिमोहति हैं मनु।

---

[१] सुभ–प्रभु (कौमुदी)। रबिपुत्र–सुभग्रीव (प्रताप०); सुग्रीव (दीन०, सर०)। [५] जब–तब (कौमुदी)। तरं०–नदी सम की सुखदाई (दीन० २)। [६] छबि–सुभ (दीन० २)। [७] बिबिध–बहुबनं (दीन०, सर०); बहुत (प्रताप०)। व्यजन–बिबिध (दीन० २)।

किधौं कुलदेबि दिपैं अति 'केसव' कै पुरदेविन को हुलस्यो गनु।
जहीं सु तहीं यहि भाँति लसैं दिबि देबिन को मद घालति हैं मनु ॥८॥

(दोहा)—अति ऊँचे मंदिरन पर चढ़ीं सुंदरी साधु।
दिबि देबिन को करति हैं मनु आतिथ्य अगाधु ॥९॥

(तोटक)—नरनारि भली सुरनारि सबै। ति न कोउ परैं पहिचानि अबै।
मिलि फूलन की बरषैं बरषा। अरु गावति हैं जय के करषा ॥१०॥

(पद्मावती)—रघुनंदन आए, सुनि सब धाए, पुरजन जैसे कहु तैसे।
दरसनरस भूले, तन मन फूले, बरने जाहिं न जैसे।
पति के संग नारी, सब सुखकारी, तिन यों रामहिं दृग जोरी।
जहं तहं चहुँ ओरनि, मिलीं चकोरनि, ज्यों चाहति चंदचकोरी ॥११॥

(पद्धटिका)—बहु भाँति राम प्रति द्वार द्वार। अति पूजत लोग सबै उदार।
यहि भाँति गए नृपनाथ-गेह। जुत सुंदरि सोदर स्यों सनेह ॥१२॥

(दोहा)—मिले जाइ जननीन कों जबहीं श्रीरघुराइ।
करुनारस अद्भुत भयो मोपै कह्यो न जाइ ॥१३॥
सीता सीतानाथजू लक्ष्मन सहित उदार।
सबनि मिले सबके कियो भोजन एकहि बार ॥१४॥

(सोरठा)—पुरजन लोग अपार, यहई सब जानत भए।
हमहीं मिले अगार, आए प्रथम हमारे ही ॥१५॥

(मदनहरा)

संग सीता लछिमन, श्रीरघुनंदन, मातन के सुभ पाइ परे, सब दुख्ख हरे।
अँसुवन अन्हवाए, भागनि आए जीवन पाए अंक भरे, अरु अंक घरे।
बर बदन निहारैं, सरबस वारैं, देहिं सबै सबहीन घनो, बरु लेहिं घनो।
तन मन न संभारैं, यहै बिचारैं, भाग बड़ो यह है अपनो, किधौं है सपनो ॥१६॥

---

[८] अति—कहि (दीन०, प्रताप०, सर०)। हुलस्यो—दरस्यो (छंद०)। गनु—तनु (प्रताप०) मनु (सर०)। भाँति—रीति (दीन० १)। मनु—जनु (प्रताप०, सर०, छंद०)। [९] दिबि०—दिब्यबाम (दीन० १); सुरनारिन (दीन० २)। [१०] अबै—तबै (दीन०, प्रताप, सर०)। [११] कहु०—के तैसे (कौमुदी); तैसे (प्रताप०, काशि० सर०)। जाहिं—जात (कौमुदी)। जैसे—तैसे (सर०), वैसे (छंद०)। पति—पिय (वही)। सुखकारी—हितकारी (दीन० २)। तिन०—ते रामहि यों (कौमुदी), जो रामहि (प्रताप०), रामहि यों (काशि०)। [१३] श्रीरघुराइ—केसवराइ (सर०)। भयो—मिल्यो (दीन० २)। [१४] कियो—किये (कौमुदी)। [१६] बर—सुत (प्रताप०), ते (काशि०, सर०)। किधौं—सु किधौं (दीन, प्रताप०)।

(स्वागता)

धाम धाम प्रति होति बधाई। लोक लोक तिनकी धुनि धाई।
देखि देखि कपि अद्भुत लेखैं। जाहि जत्र तित रामहि देखैं ॥१७॥
दौरि दौरि कपि रावर आवैं। बार बार प्रति धामनि धावैं।
देखि देखि तिनकों दै तारी। भाँति भाँति बिहँसैं पुरनारी ॥१८॥

श्रीराम (दोहा)—इन सुग्रीव बिभीषनै अंगद अरु हनुमान।
सदा भरथ सत्रुघ्न सम माता जी में जान ॥१९॥

सुमित्रा (सोरठा)—प्राननाथ रघुनाथ, जिय की जीवनमूरि हौ।
लक्ष्मन हे तुम साथ, छमिजहु चूक परी जु कछु ॥२०॥

श्रीराम (दंडक)—पौरिया कहौं कि प्रतिहार कहौं किधौं प्रभु,
पुत्र कहौं मित्र किधौं मंत्री सुखदानियै।
सुभट कहौं कि सिष्य दास कहौं किधौं दूत,
'केसोदास' हाथ को हथ्यार उर आनियै।
नैन कहौं किधौं तन मन किधौं तनत्रान,
बुद्धि कहौं किधौं बल बिक्रम बखानियै।
देखिबे कौं एक हैं अनेक भाँति कीन्हीं सेवा,
लखन के मात कौन कौन गुन मानियै ॥२१॥

(मोटनक)—सत्रुघ्न बिलोकत राम कहैं। डेरान सजौ जहँ सुख्ख लहैं।
मेरे घर संपतिजुक्त सबै। सुग्रीवहि देहु निवास अबै ॥२२॥
साजे जु भरथ्थ सबै धन कों। राखौ तहँ जाइ बिभीषन कौं।
नैरित्यन कों कपिलोगन कों। राखौ निज धामन भोगन कों ॥२३॥

(दोहा)—एक एक नैरित्य कों जितने बानर लोग।
आगे ही ठाढ़े रहत अमित इंद्र के भोग ॥२४॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां रामस्यायोध्यापुरप्रवेशो नाम द्वाविंश: प्रकाश: ॥२२॥

---

[१७] धाई–छाई (दीन० १)। जत्र०–जहाँ तहँ (दीन०, प्रताप०); यत्र तहँ (सर०)। [१८] पुर–सब (दीन० २); सुर (सर०)। [२१] कहौं किधौं–कहौं तन मन किधौं तनत्रान प्रान (दीन०, प्रताप०, सर०)। हैं–पै (दीन० १)। कीन्ही–करी (दीन, सर०)। मानियै-गानियै (प्रताप०, सर०)। [२३] धन-जन (कौमुदी)। निज–तिन (दीन०, सर०)।

२३

(मल्लिका)—एक काल रामदेव। साधुबंधु कर्त सेव।
सोभिजैं सबै सु और। मंत्रि मित्र ठौर ठौर ॥१॥
बानरेस जूथनाथ। लंकनाथ बंधु साथ।
सोभिजै सभा सुबेस। देसदेस के नरेस ॥२॥

(दोहा)—सरस स्वरूप बिलोकि कै उपजी मदनहि लाज।
आइ गए ताही समय 'केसव' रिषि रिषिराज ॥३॥
असित अत्रि भृगु अंगिरा, कस्यप गौतम ब्यास।
बिस्वामित्र अगस्त्यजुत वालमीकि दुर्बास ॥४॥
बामदेव मुनि कन्वजुत भरद्वाज मतिनिष्ठ।
पर्बतादि दै सकल मुनि आए सहित बसिष्ठ ॥५॥

(नराच)

सबंधु रामचंद्रजू उठे बिलोकिकै तबै। सभासमेत पाँ परे विसेपि पूजियो सबै।
बिबेक सों अनेकधाँ दए अनूप आसनै। अनर्घ अर्घ आदि दै बिनै किये घने घने ॥६॥

श्रीराम (रूपमाला)—रावरे मुख के विलोकत ही भए दुख दूरि।
सुप्रलापन ही रहे उर मध्य आनंद पूरि।
देह पावन ह्वै गयो पदपद्म को पय पाय।
पूजतै भयो बंस पूजित आसु ही मुनिराय ॥७॥
संनिधान भरे तपोधन धाम धी धन धर्म।
अद्य सद्य सबै भए निरबद्य बासरकर्म।
ईस जद्यपि दृष्टिहीं भइ भूरि मंगल बृष्टि।
पूँछिबे कहं होति है सु तथापि वाक-बिसृष्टि ॥८॥

(दोहा)—गंगासागर सों बड़ो साधुन को सतसंग।
पावन करि उपदेस अति अद्भुत करत अभंग ॥९॥

---

[१] सबै०—सुबेस और (प्रताप०, सर०)। [२] सभा०—सवै समीप (काशि०)। नरेस—महीप (वही)। [३] सरस—सूर (प्रताप०, सर०)। कै—उर (दीन०)। [४] असित—अगस्ति (दीन०, प्रताप० सर०)। अगस्ति—पवित्र मुनि (दीन० १, प्रताप०); ऋषय—अपर (दीन० २); अगस्तिजू (सर०)। [७] ही रहे०—भूरि मानहु होत (दीन० १)। [८] दृष्टिहीं—दृष्टि सों (दीन०, सर०, कौमुदी)। वृष्टि—दृष्टि (प्रताप०, काशि०, सर०)। भए—किये (दीन० १)। पूँछिवे—बूझिवे (दीन०)। [९] सागर—संगम (दीन०, प्रताप०, सर०)।

अगस्त्य (नराच)—किये बिसेष सों असेष काज देवराय के।
सदा त्रिलोक-लोकनाथ धर्म बिप्र गाय के।
अनादिसिद्धि राजसिद्धि राज आज लीजई।
नृदेवतानि देवतानि दीह सुख्ख दीजई ॥१०॥

(दोहा)—मारे अरि पारे हितू, कौन हेत रघुनंद।
निरानंद से देखियें, जद्यपि परमानंद ॥११॥

श्रीराम—(तोमर)

सुनि ज्ञान-मानस-हंस। जग जोग-जाग-प्रसंस।
जग माँझ है दुख-जाल। सुख है कहा यहि काल ॥१२॥

तहँ राज है दुखमूल। सब पाप कों अनुकूल।
अब ताहि लै रिषिराइ। कहि को न नरकहि जाइ ॥१३॥

(चौपई)—सोदर मंत्रिन के जु चरित्र। इनके हमपै सुनि मखमित्र।
इनहीं लगें राज को काज। इनहीं तें सब होत अकाज ॥१४॥

राज-भार नल भैयहि दियो। छलबल छीनि सबै तिन लियो।
जब लीनो सब राज बिचारि। नल दमयंती दियो निकारि ॥१५॥

राजा सुरथराज की गाथ। सौंपी सब मंत्रिन के हाथ।
संतत मृगयालीन बिचारि। मंत्रिन राजा दियो निकारि ॥१६॥

राजश्री अति चंचल तात। ताहू की सुनि लीजै बात।
जोबन अरु अबिबेकी रंग। बिनस्यो को न राजश्री-संग ॥१७॥

सास्त्र सुजलहूँ धोवत तात। मलिन होत अति ताके गात।
जद्यपि है अति उज्जल दृष्टि। तदपि सृजति रागन की सृष्टि।
महापुरुष सों जाकी प्रीति। हरति सो झँझा-मारुत-रीति।
बिषय-मरीचिकानि की जोति। इंद्री-हरिनि-हारिनी होति ॥१८॥

गुरु के बचन अमल अनुकूल। सुनत होत श्रवनन कों सूल।
मैनबलित नव बसन सुदेस। भिदत नहीं जल ज्यों उपदेस ॥२०॥

मित्रनहू को मतो न लेति। प्रतिसब्दक ज्यों उत्तर देति।
पहिले सुनै न सोर सुनंति। माती करिनी ज्यों न गनंति ॥२१॥

---

[११] देखियै–देखियत (काशि०, सर०)। [१२] जग–जप (सर०, कौमुदी)। [१४] मंत्रिन–मित्रन (दीन० १)। [१५] भैयहि–भैयनि (काशि०, सर०)। दयो–दीन (कौमुदी)। तिन–उनि (दीन०, प्रताप०)। दम०–दमयंतिहि दीन (कौमुदी); दमयंतिहि दियो (सर०)। [१६] राजा–राजहि (प्रताप०, सर०, कौमुदी)। [१८] सु०–जालहूँ (प्रताप०); जलहूँ (सर०)। [२०] नव–तन (प्रताप०; सर०)। [२१] मित्रन–मंत्रिन (दीन०, प्रताप०)। सोर–जोर (प्रताप०); वोर (सर०)।

(दोहा)—धर्मधीरता बिनयता, सत्य सील आचार।
राजश्री न गनै कछू, बेद-पुरान-बिचार ॥२२॥

(चौपई)—सागर में बहु काल जु रही। सीत बक्रता ससि तें लही।
सुर-तुरंग-चरनन तें तात। सीखो चंचलता की बात ॥२३॥

कालकूट तें मोहन रीति। मनिगन तें अति निष्ठुर प्रीति।
मदिरा तें मादकता लई। मंदर-उदर भई भ्रममई ॥२४॥

(दोहा)—सेष दई बहुजिह्वता बहुलोचनता चारु।
अप्सरान तें सीखियो अपर-पुरुष-संचारु ॥२५॥

(चौपई)—दृढ़ गुन बाँधेहूँ बहु भाँति। को जानै केहि भाँति बिलाति।
गज घोटक भट कोटिनि अरै। खड्गलता पंजर ह्व परै ॥२६॥

अपनाइति कीन्हें बहु भाँति। को जानै कित ह्वै भजि जाति।
धर्म-कोस मंडित सुभ दस। तजति भ्रमरि ज्यों कमल-नरेस ॥२७॥

जद्यपि होइ सुद्ध मति सत्त। फिरै पिचासी ज्यों उनमत्त।
गुनवंतनि आलिंगति नहीं। अपवित्रनि ज्यों छाँडति तहीं ॥२८॥

सूरनि नाखति ज्यों अहि देखि। कंटक ज्यों बहु साधुनि लेखि।
सुधा-सोदरा जद्यपि आप। सब ही तें अति कटुक प्रताप ॥२९॥

जद्यपि पुरुषोत्तम की नारि। तदपि सकल खलजन अनुहारि।
हितकारिन की अति द्वेषिनी। अहित लोग की अन्वेषिनी ॥३०॥

मनमृग कों सुबधिक की गीति। बिषयबेलि कों बारिदरीति।
मदपिसाचिका कैसी अली। मोह-नींद की सज्जा भली ॥३१॥

आसीबिष दोषन की दरी। गुन सतपुरुषनि कारन छरी।
कलहंसन की मेघावली। कपट नृत्यकारी की थली ॥३२॥

(दोहा)—बाम काम-करि की किधौं कोमल कदलि सुबेष।
धीर धर्म द्विजराज कों मनहु राहु की रेख ॥३३॥

(चौपई)—मुखरोगी ज्यों मौनै रहै। बात बरयाइ एक द्वै कहै।
बंधुबर्ग पहिचानति नहीं। मानौ संनिपात है गही ॥३४॥

महामंत्रहूँ होत न बोध। डसी काल-अहि करि जनु क्रोध।
पानबिलास उदित आतुरी। परदारा-गमनै चातुरी ॥३५॥

---

[२३] बहु—सब (प्रताप०, सर०)। सुर०—सूरतुरंग—चरन (दीन० १)। [२४] प्रीति—नीति (दीन०, प्रताप०)। [३०] अनुहारि—मनुहारि (दीन०, प्रताप०, सर०)। [३४] मुखरोगी—मुखरोगिनि (प्रताप०, सर०)। बरयाइ—बनाइ (कौमुदी)। है—की (कौमुदी); कों (प्रताप०,)।

(चौपई)—मृगया यहै सूरता बढ़ी। बंदीमुखनि चाय सों पढ़ी।
जौ केहूँ चितवै यह दया। बात कहै तौ बड़ियै मया ॥३६॥
दरसन दीबोई अति दान। हँसि बोलै तौ बड़ सनमान।
जौ काहू सों अपनो कहै। सपने कैसी पदवी लहै ॥३७॥

(दोहा)—जोई अति हित की कहै, सोई परम अमित्र।
सुखबक्ताई जानियै, संतत मंत्री मित्र ॥३८॥

(चौपई)—कहौं कहाँ लगि ताके साज। तुम सब जानत हौ रिषिराज।
जैसी सिव-मूरति मानियै। तैसी राजश्री जानियै ॥३९॥
सावधान ह्वै सेवै जाहि। साँचो देहि परम पद ताहि।
जितने नृप आए बस भए। पेलि स्वर्ग मग नरकहिं गए ॥४०॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां राज्यश्री-दूषणवर्णनन्नाम त्रयोविंशः प्रकाशः ॥२३॥

२४

श्रीराम (अमृतगति)—सुमति महामुनि सुनिये। जग महँ सुख्ख न गुनिये।
मरनहिं जीव न तजहीं। मरि मरि जन्मन भजहीं ॥१॥
उदरनि जीव परत हैं। बहु दुख सों निसरत हैं।
अनतहि पीर अनतहीं। तन-उपचार सहतहीं ॥२॥

(दोधक)—पोच भली न कछू जिय जानै। लै सब बस्तुनि आनन आनै।
सैसव तें कछु होत वड़ेई। खेलत हैं ते अयान चढ़ेई ॥३॥
हैं पितु-मातन तें दुख भारे। श्रीगुरु तें अति होत दुखारे।
भूख न प्यास न नींद न जोवैं। खेलन कौं बहु भाँतिन रोवैं ॥४॥
जारति चित्त चिता-दुचिताई। दीह त्वचा अहि-कोप चबाई।
कामसमुद्र झकोरनि झूल्यो। जोबन जोर महाप्रभु भूल्यो ॥५॥

[३७] अति–बड़ (दीन० २)। पदवी–संपति (प्रताप०, कौमुदी)। [३८] जानियै–मानियै (प्रताप०, सर०)। [४०] जाहि–याहि (प्रताप०, कौमुदी)। मग–पग (दीन०); पद (प्रताप०, सर०)।

[१] मुनि–रिषि (काशि०, सर०)। [२] जीव–मध्य (दीन०, प्रताप०)। बरत–वसत (प्रताप०)। निसरत–निकसत (प्रताप०, सर०)। [३] वड़ेई–बढ़ेई (काशि०); बड़ोई (प्रताप०, सर०)। ते०–तिय जान (सर०)। चढ़ेई–चढ़ोई (प्रताप०, सर०)। [४] दुख–भय (प्रताप०)। [५] प्रभु–मद (प्रताप०, सर०, कौमुदी)।

धूम सो नील निचोल में सोहै। जाइ छुई न बिलोकत मोहै।
पावक पापसिखा बनचारी। जारति है नर कों परनारी ॥६॥

बंक हिये न प्रभा सरसी सी। कर्दम काम कछू परसी सी।
कामिनि काम कि डोरि ग्रसी सी। मीन-मनुष्यन कों बनसी सी ॥७॥

(विजय)—खैंचत लोभ दसौ दिसि कों गहि मोह महा महि पासि कै डारे।
ऊँचे तें गर्ब गिरावत क्रोध सों जीवहि लूहर लावत भारे।
ऐसे में कोढ़ की खाज ज्यों 'केसव' मारत काम के बान निनारे।
मारत पाँच करे पँचकूटहि कासौं कहैं जगजीव बिचारे ॥८॥

भूलत है कुलधर्म सबै तबहीं जबहीं वह आनि ग्रसै जू।
'केसव' वेद-पुराननि कों न सुनै समुझै न त्रसै न, हँसै जू।
देवन तें नरदेवन तें नर तें बर बानर ज्यों बिलसै जू।
जंत्र न मंत्र न मूरि गनै जगजीवन काम-पिसाच बसै जू ॥९॥

ज्ञानिन के तनत्रानन कों कहि फूल के बाननि बेधत को तो।
बाइ लगाइ बिवेकिन कों बहु साधक कों कहि बाधक जो तो।
और को 'केसव' लूटतो जन्म अनेकन के तपसान को पोतो।
तो मम लोक सबै जग जातो जु काम बड़ो बटपार न होतो ॥१०॥

(मकरंद)– कँपै बर बानि डगै डर डीठि त्वचा तिकुचै सकुचै मति वेली।
नवै नवग्रीव थकै गति 'केसव' बालक तें सँगहीं सँग खेली।
लियें सब आधिन ब्याधिन संग जरा जब आवै ज्वरा की सहेली।
भगै सब देह-दसा, जिय-साथ रहै दुरि दौरि दुरासा अकेली ॥११॥

बिलोकि सिरोरुह सेत समेत तनोरुह कोविद यों गुन गायो।
उठे किधौं आयु के औधि के अंकुर सूल कि सुख्ख समूल नसायो।
जरैं किधौं 'केसव' ब्याधिन की किधौं आधि के आखर अंत न पायो।
जरा सर-पंजर जीव जर्‍यो कि जरा-जरकंवर सो पहिरायो ॥१२॥

---

[६] बनचारी–बड़वारी (दीन० १, प्रताप०, सर०, कौमुदी)। [७] कि–ना (प्रताप०); कछु (सर०); की (कौमुदी)। [८] इत–महि (दीन० २); मद (दीन० १)। कै–हि (कौमुदी); सों–हु (वही)। के–हु (वही)। बान–काम (दीन०, प्रताप०, सर०)। [९] वह–यह (कौमुदी)। जीवन–जोबन (प्रताप०, सर०)। [१०] बेधत–बेधक (प्रताप०, सर०)। जो–हो (कौमुदी)। मम–सम (कौमुदी)। [११] तिकुचै–तुचकै (प्रताप०)। हीं सँग–हीं सब (प्रताप०); ज्यों बरु (सर०)। [१२] कोबिद-केसव (काशि०)। आयु के–आयु की (कौमुदी)। कि सुख्ख–कि सुष्क… (कौमुदी); किधौं सुख सोचि (प्रताप०, सर०)।

(मदनमनोहर)

दिनहीं दिन बाढ़त जाइ हियें जरि जाइ समूल सो औषधि खैहै।
किधौं याही के साथ अनाथ ज्यों 'केसव' आवत जात सदा दुख सैहै।
जग जाकी तूँ ज्योति जगै जड़ जीवन वापै तूँ तापहँ जान न पैहै।
सुनि बालदसा गई ज्वानी गई जरि जैहै जराऊ दुरासा न जैहै ॥१३॥

(दोहा)—जहाँ भामिनी भोग तहँ बिन भामिनि कहँ भोग।
भामिनि छूटें जग छुटै, जग छूटें सुख-जोग ॥१४॥
जोई जोई जो करै अहंकार के साथ।
स्नान दान तप होम जप निष्फल जानौ नाथ ॥१५॥

(तोटक)—जिय माँझ अहंपद जौ दमियै। जिनहीं जिनहीं गुन श्री रमियै।
तिनहीं तिनहीं लखि लोभ डसै। पट-तंतुन उंदुर ज्यों तरसै ॥१६॥

(विजय)—दान सयानन के कलपद्रुम टूटत ज्यौं रिन ईस के माँगे।
सूखत सागर से मुख 'केसव' ज्यों दुख श्रीहरि के अनुरागे।
पुन्य बिलात पहारन से पल ज्यों अघ राघव की निसि जागे।
ज्यों द्विज दोष तें संतति नासति त्यों गुन भाजत लोभ के आगे ॥१७॥

दानदया सुभसील सखा बिझुकैं गुनभिक्षुक को बिझुकावैं।
साधु सुधी सुरभी सब 'केसव' भाजि गईं भ्रम भूरि भजावैं।
सज्जन-संग बछेरू डरैं बिडरैं बृषभादि प्रबेस न पावैं।
बार बड़े अघ-बाघ बँधे उर-मंदिर बालगोबिंद न आवैं ॥१८॥

(दोहा)—आँखिन आछत आँधरो जीव करै बहु भाँति।
धीरन धीरज बिन करै तृष्ना कृष्ना राति ॥१९॥

तृष्ना कृष्ना षटपदी हृदय-कमल में बास।
मत्तदंति-गलगंड जुग, नर्क अनर्क-बिलास ॥२०॥

---

[१३] जीवन०—जीवन वापै तूँ जीवत (दीन० १), जीवन कैंसहुँ आपै तूँ (दीन० २); जीवनु यापै तु तापति (सर०); जीवन पाए तूँ तापहँ (प्रकाशिका); जीव रे कैंसहु तापहँ (कौमुदी)। जरि—तैसे (दीन०, प्रताप०); अरु (सर०)। [१५] तप०—होमादि ब्रत भस्म होत है (दीन० १, प्रताप०); होमादि दै भस्म होत है (दीन० २)। पट०—पल तातिन बंधक ज्यौं न त्रसै (दीन०); पलतंतुनि मेषन ज्यौं न त्रसै (प्रताप०); पलतंतुनि उंदूर ज्यों न त्रसै (सर०)। [१८] गोबिंद—मुकुंद (दीन०, प्रताप०)। [१९] आछत—हो छत (दोन०); हूँ छत (प्रताप०); हो छत (सर०)। धीरज०—को धीरज हरै (प्रताप०); बिन०—धन हरै (दीन० २)। [२०] जुग—जुत (दीन० १)। बिलास—निवास (दीन० २)।

(विजय)—कौन गनै यदि लोक-तरीन बिलोकि बिलोकि जहाजनि बोरै।
लाज बिसाल लता लपटी तन धीरज सत्य-तमालनि तोरै।
बंचकता अपमान अयान अलाभ भुजंग भयानक कृष्ना।
पाट बड़ो कहुँ घाट न 'केसव' क्यों तरि जाइ तरंगिनि तृष्ना ॥२१॥

पैरत पाप-पयोनिधि में मन मूढ़ मनोज जहाज चढ़ोई।
खेल तऊ न तजै जड़ जीव जऊ बड़वानल क्रोध डढ़ोई।
झूठ-तरंगनि मैं उरझै सु इते पर लोभ-प्रवाह बढ़ोई।
बूड़त है जेहि तें उबरै कहि 'केसव' काहे न पाठ पढ़ोई ॥२२॥

(दोहा)—जौ केहूँ सुख-भावना काहू कों जग होति।
काल-आखु पटतंतु ज्यों तबहीं काटत जोति ॥२३॥

ब्रह्म बिष्नु सिव आदि दै जितने दृस्य सरीर।
नास-हेतु धावत सबै ज्यों बड़वानल नीर ॥२४।

(सुंदरी)

दोषमई जु दवारि लगी अति। देखतहीं तिहि तें जु जरी मति।
भोग की आस न गूढ़ उजागर। ज्यों रज सागर में मुनिनागर ॥२५॥

(विजय)

माछी कहै अपनो घर माछर मूसो कहै अपनो घर ऐसो।
कोनें घुसी कहै घूसि घिरौरि बिलारि औ ब्याल बिले महँ बैसो।
कीटक स्वान सो पक्षि औ भिक्षुक भूत कहैं, भ्रमि जा सहँ जैसो।
हौहूँ कहौं अपनो घर तैसहि ता घर सों, अपनो घर कैसो ॥२६॥

(सुंदरी)

जैसहि हौं अब तैसें रहौं जग। आपद संपद के न चलौं मग।
एकहि देहतियाग बिना सुनि। हौं न कछू अभिलाष करौं मुनि ॥२७॥

जौ कछु जीव-उधारन को मत। जानत हौ तौ कहौ मन है रत।
यों कहि मौन गही जगनायक। 'केसव' दास मनो बच कायक ॥२८॥

---

[२१] यहि—इन (दीन० १)। तरीन—तरंगि (प्रताप०)। [२२] मन—नर (कौमुदी)। जेहि०—जेहि जीव कढ़ै (दीन० २); जिहि जाइ कढ़ै (दीन० १); जेहि जोर कढ़ै (प्रताप०); हित तेरे कढ़ै (सर०)। [२४] हेतु—हि कों (दीत०, प्रताप०, सर०)। [२५] तें जु०—को जु जरै (कौमुदी)। मुनि—सुनि (दीन०, सर०)। [२६] घिरौरि—घिनौनी (कौमुदी)। कीटक०—कीट पतंग' रु (दीन० १), कीरन स्वान (दीन० २); कीटक साँप (प्रताप०, सर०)। भ्रमि०—भ्रमजाल है (कौमुदी)। अपनो०—अब तैसही केसब (दीन०, प्रताप०)। तो—ता (प्रताप०, सर०)। [२८] जग०—रघुनायक (दीन० २)।

(चामर)

साधु साधु कै सभा असेष हर्ष हर्षियो। दीह देवलोक तें प्रसून-बृष्टि बर्षियो।
देखि देखि राजलोक मोहियो महाप्रभा। आइयो तहाँ तुरंत देवकी सबै सभा ॥२९॥

विश्वामित्र—

व्यास-पुत्र के समान सुद्धबुद्धि जानियै। ईस को असेष सत्य तत्व सो बखानियै।
इष्ट हौ बसिष्ट सिष्ट नित्य बस्तु सोधियै। देवदेव रामदेव को प्रबोध बोधियै ॥३०॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकामिंद्रजिद्विरचितायां जगन्निंदा-
वर्णनन्नाम चतुर्विंशतितमः प्रकाशः ॥२४॥

२५

बसिष्ठ—(पद्धटिका)

तुम आदि मध्य अवसान एक। अरु जीव जन्म समुझौ अनेक।
तुमहीं जु रची रचना बिचारि। तेहि कौन भाँति समझौं मुरारि ॥१॥

सब जानि बूझियत मोहिं राम। सुनियै जो कह्यो जग ब्रह्मनाम।
तिनके असेष प्रतिबिंबजाल। तेइ जीव जानि जग में कृपाल ॥२॥

(निशिपालिका)—लोभ मद मोह बस काम जबहीं भए।
भूलि गए रूप निज बेधि तिनसों गए।
राम—बूझियत बात यह कौन बिधि उद्धरैं।
वसिष्ठ—बेदबिधि सोधि बुध जत्न बहुधा करैं ॥३॥

राम (दोहा)—जित लै जैहै वासना तित तित ह्वैहै लीन।
जत्न कहौ कैसें करै जीव बापुरो दीन ॥४॥

वसिष्ठ—(दोधक)

जीवन की जुग भाँति दुरासा। होति सुभासुभरूप प्रकासा।
जत्नन सों सुभ पंथ लगावै। तो अपनी तबहीं पद पावै ॥५॥

---

[२९] हर्ष-भाँति (प्रताप०)। [३०] नित्य०—नीतिनिष्ठ (दीन० २); निष्ठबस्तु (दीन० १)।

[२] कह्यो—कहो (प्रताप०, सर०); कहौं (कौमुदी)। [३] मोह०—कामबस जीव (प्रताप०)। भए, गए—भयो, गयो (प्रताप० कौमुदी)। बेधि—बंधि (प्रताप०); बाँधि (कौमुदी)। यह—वह (वही)। [५] जुग—बहु (दीन० । रूप—बुद्ध (दीन० १)।

हौं मन तें बिधि पुत्र उपायो। जीवउधारन मंत्र बतायो।
है परिपूरन जोति तिहारी। जाइ कही न सुनी न निहारी ॥६॥

(दोहा)—ताकी इच्छा तें भए नारायन मतिनिष्ठ।
तिनतें चतुरानन भए तिनतें जगत प्रतिष्ठ ॥७॥

(दोधक)—जीव सबै अवलोकि दुखारे। आपने चित्त प्रयोग बिचारे।
मोहिं सुनाए तुम्हें ते सुनाऊँ। जीवउधारन गीत सु गाऊँ ॥८॥

(दोहा)—मुक्तिपुरी बर द्वार के चार चतुर प्रतिहार।
साधुन को सतसंग सम अरु संतोष बिचार ॥९॥
यह जग चक्काब्यूह किय कज्जलवलित अगाधु।
तामहँ पैठि जो नीकसै अकलंकित सो साधु ॥१०॥

(दोधक)—देखतहूँ एक काल छियेहूँ। बात कहें सुनें भोग कियेहूँ।
सोवत जागत नेक न क्षोभै। सो समता सबहीं महं सोभै ॥११॥

जो अभिलाष न काहु को आवै। आए गए सुख दुख्ख न पावै।
लै परमानंद सों मन लावै। सो सब माँझ संतोष कहावै ॥१२॥

आयो कहाँ अब हौं कहि को हौं। ज्यों अपनो पद पाऊँ सो टोहौं।
बंधु अबंधु हिये महं जानै। ताकहं लोग बिचार बखानै ॥१३॥

बसिष्ठ—चारि में एकहु जौं अपनावै। तौ तुमपै प्रभु आवन पावै।
राम—जोति निरीह निरंजनमानी। तामहँ क्यों रिषि इच्छ बखानी ॥१४॥

बसिष्ठ (दोहा)—सकल सक्ति उनमानियै अद्भुत जोतिप्रकास।
जातें जग को होत है उत्पति थिति अरु नास ॥१५॥

राम—(दोधक)

जीव बंधे सब आपनि माया। कीन्हें कुकर्म मनो बच काया।
जीवन चित्त प्रबोधन आनौ। जीवनमुक्त के भेद बखानौ ॥१६॥

वसिष्ठ—बाहिरहूँ अति सुद्ध हियेहूँ। जाहि न लागत कर्म कियेहूँ।
बाहिर मूढ़ सु अंत सयानौ। ताकहँ जीवनमुक्त बखानौ ॥१७॥

---

[६] बतायो-सुनायो (प्रताप०, सर०)। निष्ठ-सिद्धि (दीन० २); सुद्ध (प्रताप०)। प्रतिष्ठ-प्रसिद्ध (प्रताप०); प्रसिद्धि (दीन० २)। [८] सु०-गनाऊँ (काशि०)। [१०] यह०-जग चक्राब्यू तुम रच्यो (दीन० १); जगत चक्रबुह तुम रच्यो (प्रताप०); जग बिब सम तुम रच्यो (दीन० २, सर०)। [११] एक-अति (प्रताप०); बहु (कौमुदी)। [१२] आवै-आनै (दीन० १)। पावै-मानै (दीन० १); लावै (दीन० २)। [१६] कुकर्म-जु कर्म (दीन० १)। भेद-नाम (दीन० १); बेष (दीन० २); मर्म (कौमुदी)।

(दोहा)—आपन सो अवलोकियै सबहीं जुक्त अजुक्त।
अहंभाव मिटि जाइ जौ कौन बद्ध को मुक्त ॥१८॥

राम—(दोधक)

ये सिगरे गुन होत सो जानौ। थावर जीवनमुक्त बखानौ।
बसिष्ठ—जानि सबै गुन दोषन छाड़ै। जीवनमुक्तन के पद माड़ै ॥१९॥

(दोहा)—साधु कहावत करत हैं जग मो सब ब्यौहार।
तिनको मीचु न छ्वै सकै कहि प्रभु कौन बिचार ॥२०॥

बसिष्ठ—(पद्धटिका)

जग जिनको मन तव चरन लीन। तन तिनको मृत्यु न करति छीन।
तेहि छन ही छन दुख छीन होत। जिय करत अमित आनंदउदोत ॥२१॥
जो चाहै जीवन अति अनंत। सो साधै प्रानायाम जंत।
सुभ रेचक पूरक नाम जानि। अरु कुंभकादि सुखदानि मानि ॥२२॥
जो क्रम क्रम साधैं साधु धीर। सो तुमहिं मिलै याही सरीर।
राम—जग तुमतें नहिं सर्बज्ञ आन। अब कहौ देव पूजा-बिधान ॥२३॥

बसिष्ठ—(तारक)

हम एक समै निकसे तपसा कों। तब जाइ भजे हिमवंत-रसा कों।
बहु भाँति कर्‍यो तप क्यों कहि आवै। सितिकंठ प्रसन्न भए जग गावै ॥२४॥

(दंडक)

ऊजरे उदार उर बासुकी बिराजमान, हार के समान आन उपमा न टोहियै।
सोभिजैं जटान बीच गंगाजू के जलबुंद, कुंद की सी कली 'केसोदास' मन मोहियै।
नख की सी रेखा चंद, चंदन सी चारु रज, अंजन सिंगार ही गरलरुचि रोहियै।
सब सुखसिद्धि सिवा सोहैं सिवजू के साथ, जावक सो पावक लिलार लाग्यो सोहियै।

शिव—(तारक)

बर माँगि कछू रिषिराज सयाने। बहु भाँति चले तपपंथपयाने।
वसिष्ठ—पुजवौ परमेस्वर मो मन इच्छा। सिखवौ प्रभुदेव प्रपूजनसिक्षा ॥२६॥

---

[१८] जौ–तौ (दीन० १)। [१९] होत०–हौंहुत (कौमुदी); हौंहू (दीन० १)। पद–फल (वही)। [२०] मो–को (दीन० २), के (कौमुदी)। [२१] तेहि–ते (दीन० २); जिहि (दीन० १)। जिय–ते (दीन० १); जेहि (सर०)। [२२] सो–तौ (दीन०)। जंत–मंत (कौमुदी)। रेचक०–पूरक कुंभक मान (दीन० १, कौमुदी)। कुंभकादि–रेचकादि (वही)। [२५] कुंद०–कुंदकलिका सी (दीन० १)। केसोदास–केसौराय (दीन०)। ही–हू (सर०, कौमुदी)। [२६] चले–किये (कौमुदी)।

शिव (दोहा)—राम रमापति देव नहिं रंग न रूप न भेव।
देव कहत रिषि कौन कों सिखऊँ जाकी सेव ॥२७॥

बसिष्ठ (तोमर)—हम कहा जानहिं अज्ञ। तुम सर्बदा सर्बज्ञ।
अब देव देहू बताइ। पूजा कहौ समुझाइ ॥२८॥

शिव—सत चित प्रकास प्रभेव। तेहि बेद मानत देव।
तेहि पूजि रिषि रुचि मंडि। सब प्राकृतन कों छंडि ॥२९॥

पूजा यहै उर आनु। निर्ब्याज धरियै ध्यानु।
यों पूजि घटिका एक। मनु किये जज्ञ अनेक ॥३०॥

जिय जान यहई जोग। सब धर्म कर्म प्रयोग।
सम रूप पूजि प्रकास। तब भाए हम से दास ॥३१॥

यह बचन करि परमान। प्रभु भए अंतरधान ॥३२॥

(दोहा)—यहि पूजा अद्भुत अगिनि सुनि प्रभु त्रिभुवननाथ।
सबै सुभासुभ बासना मैं जारी निज हाथ ॥३३॥

(झूलना)—यहि भाँति पूजा पूजि जीव जु भक्त परम कहाइ।
भव भक्तिरसभागीरथी महँ देइ दुखनि बहाइ।
पुनि महाकर्ता महात्यागी महाभोगी होइ।
अति सुद्ध भाव रमै रमापति पूजिहैं सब कोइ ॥३४॥

(दोहा)—राग द्वेष बिन कैसहूँ धर्माधर्म जु होइ।
हर्ष सोक उपजै न मन कर्ता महा सु लोइ ॥३५॥

जो कछु आँखिन देखियै बानी बरन्यो जाहि।
महातियागी जानियै, झूठो जानै ताहि ॥३६॥

---

[२७] राम-उमा (कौमुदी)। रंग०—देवन रूप न देव (दीन०, सर०)। कों-सो (सर०, कौमुदी)। [२९] प्रभेव-अमेव (दीन० १, सर०); हमेव (दीन० २)। तेहि-बह (दीन० १); यह (दीन० २)। [३०] धरियै-कीजै (सर०)। यों-जौ (दीन०)। मनु०—जनु (दीन०, सर०)। जज्ञ-याज (कौमुदी)। [३१] कौमुदी में इसके अनंतर दो पंक्तियाँ और हैं—

तेहि तें यही उर लाव। मन अनत कहुँ न चलाव ॥

[३२] सम-सब (काशि० प्रकाशिका); यह (कौमुदी)। तब-बहु (दीन०, सर०)। प्रभु-हर (कौमुदी)। [३३] त्रिभुवन-पूरन (दीन०, सर०)। नाथ-पाथ (सर०)। [३४] दुखनि-भ्रमनि (दीन०, सर०)।

भोज अभोज न रत बिरत नीरस सरस समानु ।
भोग होइ अभिलाष बिन महाभोगता मानु ॥३७॥

(तोमर)—जिय ज्ञान बहु ब्योहार । अरु जोग-भोग-बिचार ।
यहि भाँति होइ जो राम । मिलिहै सो तेरे धाम॥ ३८॥

(चंद्रकला)—निसिबासर बस्तुबिचार करै, मुख साँच हिये करुनाधनु है ।
अघनिग्रह, संग्रह धर्मकथान, परिग्रह साधुन को गनु है ।
कहि 'केसव' जोग जगै हिय-भीतर, बाहेर भोगन स्यों तनु है ।
मनु हाथ सदा जिनके, तिनको बनु ही घरु है, घरु ही बनु है ॥३९॥

(दोहा)—लेइ जो कहियै साधु अनलीन्हें कहियै बाम ।
सबको साधन एक जग, राम तिहारो नाम ॥४०॥

राम (दोहा)—मोहिं न हुतो जनाइबे सबहीं जान्यो आजु ।
अब जु कहौ सु करैं बनै कहें तुम्हारे काजु ॥४१॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां जीवोद्धार-वर्णनन्नाम त्रयोविंश: प्रकाश: ॥२५॥

२६

(मोटनक)—बोले रिषिराज भरथ्थ तबै । कीजै अभिषेक-प्रयोग सबै ।
सत्रुघ्न कह्यो चुप ह्वै न रहौ । श्रीराम के नाम को तत्व गहौ ॥१॥
श्रद्धा बहुधा उर आनि भई । ब्रह्मासुत सों बिनती बिनई ।
श्रीराम को नाम कहौ रुचि कै । मतिमान महा मन कों सुचि कै ॥२॥

(स्वागता)—चित्त माँझ जब आनि अरूझी । बात तात कहँ मैं यह बूझी ।
जोग-जाग करि जाहि न आवै । स्नान-दानबिधि-मर्म न पावै ॥३॥
है असक्त सब भाँति बिचारौ । कौन भाँति प्रभु ताहि उधारौ ॥४॥

---

[३७] भोगता—भि तेहि (कौमुदी) । [३८] तेरे—तुम्हरे (दीन० २); तेरेहि (प्रताप०) । [४०] अनलीन्हें०—जन अनलीन्हे कहि (दीन० १); सो अनलीन्हे कहि (दीन० २); तेहि जो न लेइ सो (कौमुदी) । साधन—भूषन (दीन० १) । [४१] न—जु (दीन०, प्रताप०, सर०) । जनाइबे—सुनाइबो (दीन० २) । करैं०—कीजियै (सर०, कौमुदी) ।

[२] मति०—सुख होइ महा मन में (दीन० १) । [३] कहँ—पहँ (कौमुदी) । [४] सब—बहु (दीन० २) ।

(भुजंगप्रयात)

जहीं सच्चिदानंद रूपै धरैंगे। सु त्रैलोक के ताप तीनो हरैंगे।
कहैगो सबै नाम श्रीराम ताको। सदा सिद्ध है सुद्ध उच्चार जाको ॥५॥

कहै नाम आधो सोआधो नसावै। कहै नाम पूरो सो बैकुंठ पावै।
सुधारैं दुहूँ लोक कों बर्न दोऊ। हियें छद्म छाँडै कहै बर्न कोऊ ॥६॥

सुनावै सुनै साधुसंगी कहावै। कहावै कहै पापपुंजै नसावै।
स्मरावै स्मरै बासना जारि डारै। तजै छद्म कों देवलोकै सिधारै ॥७॥

(तामरस)—जब सब बेद-पुरान नसैहैं। जप तप तीरथ हू मिटि जैहैं।
द्विज सुरभी नहिं कोउ बिचारै। तब जग केवल नाम उधारै ॥८॥

(दोहा)—मरनकाल कासी-बिषै, महादेव निज धाम।
जीवन कों उपदेसिहैं, रामचंद्र को नाम ॥९॥

मरनकाल कोऊ कहै, पापी होइ पुनीत।
सुखहीं हरिपुर जाइहै, सब जग गावै गी १०॥

रामनाम के तत्व कों, जानत बेद प्रभाव।
गंगाधर कै धरनिधर, बालमीकि मुनिराव ॥११॥

(दोधक)—सातहु सिंधुन के जल रूरे। तीरथजालनि के पय पूरे।
कंचन के घट बानर लीने। आइ गए हरि-आनँद-भीने ॥१२॥

(दोहा)—सकल रतन सब मृत्तिका सुभ औषधी असेष।
सात दीप के पुष्प फल पल्लव रस सबिसेष ॥१३॥

(दोधक)—आँगन हीरन को मन मोहै। कुंकुम-चंदन-चर्चित सोहै।
है सरसी सम सोभप्रकासी। लोचन-मीन मनोजबिलासी ॥१४॥

(दोहा)—गजमोतिन जुत सोभिजैं मरकतमनि के थार।
उदकबुंद स्यों जनु लसत पुरइनि-पत्र अपार ॥१५॥

(विशेषक)—भाँतिन भाँतिन भाजन राजत कौन गनै।
ठौरहि ठौर रहे जनु फूलि सरोज घनै।

---

[५] सदा—स्वयं (कौमुदी)। [६] छद्म—दंभ (प्रताप०)। [७] स्मरावै०—जपावै जपै (कौमुदी)। [८] जग—कलि (दीन०)। [९] निज—को (प्रताप०, सर०); गुन (कौमुदी)। [१०] जाइहै—जाइगो (दीन०, प्रताप०, सर०)। सब०—रामचंद्र को (दीन० २)। [११] मुनि—रिषि (प्रताप०)। [१२] घट०—घटिका नर (दीन० १); घट बारन (दीन० २)। [१४] मनोज—सरोज (दीन०, प्रताप०, सर०)। [१५] स्यों—जुत (दीन० १); यौं (प्रताप०)।

भूपन के प्रतिबिंब बिलोकत रूप-रसे।
खेलत हैं जल माँझ मनौ जलदेव बसे ॥१६॥

(पद्धटिका)—मृगमद मिलि कुंकुम सुरभि-नीर। घनसार सहित अंबर उसीर।
घसि केसरि स्यों बहु बिबिध नीर। छिति छिरके चरथावर-सरीर ॥१७

बहु बर्न फूल फल दल उदार। तहँ भरि राखे भाजन अपार।
तहँ पुष्पवृक्ष सोभैं अनेक। मनिबृक्ष स्वर्न के बृक्ष एक ॥१८॥

तेहि उपर रच्यो एकै बितान। दिबि देखत देवन के बिमान।
दुहुँ ओर होत पूजाबिधान। अरु नृत्य गीत बादित्र गान ॥१९॥

तरु ऊमरि को आसन अनूप। बहु रचित हेममय बिस्वरूप।
तहँ बैठे आपुन आइ राम। सियसहित मनौ रति रुचिर काम ॥२०॥

जनु घन दामिनि आनंद देत। तरुकल्प कल्पबल्ली समेत।
है कैधों बिद्यासहित ज्ञान। कै तपसंयुत मन सिद्धि जान ॥२१॥

कै बिक्रमजुत कीरति प्रबीन। कै श्री नारायन-सोभ-लीन।
कै अति सोभित स्वाहा सनाथ। कै सुंदरता सृङ्गार-साथ ॥२२॥

(सुंदरी)—'केसव' सोभन छत्र बिराजत। जाकहं देखि सुधाधर लाजत।
सोभित मोतिन के मनि के गन। लोकन के जनु लागि रहे मन ॥२३॥

(दोहा)—सीतलता सुभता सबै सुंदरता के साथ।
अपनी रबि की अंसु लै सेवत जनु निसिनाथ ॥२४॥

(सुंदरी)—ताहि लिये रबिपुत्र सदा रत। चौंर बिभीषन अंगद ढारत।
कीरति लै जग की जनु वारत। चंद्रक चंदन चंद सदारत ॥२५॥

लक्ष्मन दर्पन कों दिखरावत। पाननि लक्ष्मन-बंधु खवावत।
भर्थ भले नरदेव हँकारत। देव अदेवन पायनि पारत ॥२६॥

(दोहा)—जामवंत हनुमंत नल नील मरातिब साथ।
छरी छबीली सोभिजै दिगपालन के हाथ ॥२७॥

---

[१६] ठौरहि०—ठौरनि ठौरनि फूल मनौ जलजात (दीन० १)। बिलोकत०—बिराजत रूपसनै (दीन० १); बिलोकत रूपसनै (सर०)। वसे—घनै (दीन०, सर०)। [१७] बिबिध—बुद्धि (प्रताप०)। नीर-घीर (प्रताप०, सर०)। [१९] लोक०—ओर होइ मंगल (दीन०, प्रताप०)। [२१] कै०—कीधौं तपसंजुत (दीन०, प्रताप०); कै तापसंजुत सी (सर०)। [२३] जा कहँ—देव सिहात अदेव ति (दीन० २)। सुधाधर—सुधातरु (दीन० १)। जनु०—मनु लागि (दीन० २); अनुरागि (दीन० १, सर०)। [२५] सदारत-सुढारत (दीन० १), सुधारत (दीन० २, प्रताप०), सँवारत (प्रकाशिका)।

रूप बहिक्रम, सुरभि सम बचन रचन बहु भेव।
सभामध्य पहिचानियै नर नरदेव न देव ॥२८॥
आई जब अभिषेक की घटिका 'केसवदास'।
बाजे एकहि बार वहु दुंदुभि दीह अकास ॥२९॥

(झूलना)—तब लोकनाथ बिलोकिकै रघुनाथ को निज हाथ।
सबिसेष सों अभिषेक कै पुनि उच्चरी सुभ गाथ।
रिषिराज इष्ट बशिष्ठ सों मिलि गाधिनंदन आइ।
पुनि बालमीकि बियास आदि जिते हुते मुनिराइ ॥३०॥
रघुनाथ संभु स्वयंभु कौं निज भक्ति दी सुख पाइ।
सुरलोक कों सुरराज कों किय दीह निरभय राइ।
बिधि सों रिषीसन सों बिनै करि पूजियो परि पाइ।
बहुधा दई तप-बृद्धि की सब सिद्धि सुद्ध सुभाइ ॥३१॥

(दोहा)—दीन्हो मुकुट बिभीषनै अपनो अपने हाथ।
कंठमाल सुग्रीव कों दीन्हीं श्रीरघुनाथ ॥३०॥

(चंचरी)—माल श्रीरघुनाथ के उर सुभ्र सीतहि सो दई।
अर्पियो हनुमंत कौं तिन दृष्टि कै करुनामई।
और देव अदेव वानर जाचकादिक पाइयो।
एक अंगद छोड़िकै जोइ जासु के मन भाइयो ॥३३॥

अंगद—देव हौ नरदेव वानर नैरितादिक धीर हौ।
भर्थ लक्ष्मन आदि दै रघुबंस के सव बीर हौ।
आजु मोसन जुद्ध मांडहु एक एक अनेक कै।
बाप को तब हौं तिलोदक दीह देहुँ विवेक कै ॥३४॥

राम—(दोहा)—कोऊ मेरे बंस में करिहै तोसों जुद्ध।
तब तेरो मन होइगो अंगद मोसों सुद्ध ॥३५॥
बिधि सों पायँ पखारि कै राम जगत के नाह।
दीन्हे ग्राम सनौढ़ियन, मथुरामंडल माह ॥३६॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां रामराज्याभिषेकवर्णनन्नाम षड्विंशः प्रकाशः ॥२६॥

---

[२८] सम–स्यौं (कौमुदी)। नर०–नहिं नरदेव अदेव (वही); नहिं नरदेव के देव (प्रताप०); भू नरदेवनि देव (सर०)। [२९] बहु–भुव (प्रताप०, सर०)। [३०] निज–प्रति (दीन०)। [३१] तपबृद्धि–तपवृक्ष (कौमुदी); बहु वृद्ध (दीन० २)। [३३] अदेव–नृदेव (दीन०)। [३४] नैरि०–रिक्ष आदिक (दीन० २)। सन–सह (दीन०); सों (सर०)। [३५] मो–हम (दीन०)।

२७

ब्रह्मा (झूलना)—तुम हौ अनंत अनादि सर्बंग सर्बदा सरबज्ञ।
अब एक हौ कि अनेक हौ महिमा न जानत अज्ञ।
भ्रमिबो करैं जन लोक चौदहु लोभ-मोह-समुद्र।
रचना रची तुम ताहि जानत हौं न ब्रह्म न रुद्र ॥१॥

(दंडक)

अमलचरित तुम बैरिन मलिन करौ, साधु कहैं साधु परदार-प्रिय अति हौ।
एक थल थित पै बसत जगजनमध्य 'केसोदास' द्विपद पै बहुपद-गति हौ।
भूषन सकल जुत सीस धरें भूमिभार भूतल फिरत पै अभूत भुवपति हौ।
राखौ गाइ ब्राह्मननि राजसिंह साथ चिर रामचंद्र राज करौ अद्भुतगति हौ ॥२॥

इंद्र—

बैरी गाइ-ब्राह्मन को ग्रंथन में सुनियत, कबिकुल ही के सुबरनहर-काज है।
गुरुसेजगामी एक बालकै बिलोकियत, मातंगन ही के मतवारे को सो साज है।
अरिनगरीन प्रति होत है अगम्यागौन दुर्गनहिं 'केसोदास' दुर्गति सी आज है।
देवताई देखियत गढ़न गढ़ोई जीवौ चिर चिर रामचंद्र जाको ऐसो राज है ॥३॥

पितर—

बैठे एक छत्रतर छाँह सब छिति पर सूरकुलकलस सुराह हितमति हौ।
त्यक्तबामलोचन कहत सब 'केसोदास' बिद्यमान लोचन द्वै देखियत अति हौ।
अकर कहावत धनुष धरे देखियत परम कृपालु पै कृपानकर पति हौ।
चिर चिर राज करौ राजा रामचंद्र सब लोक कहैं नरदेव देव देवगति हौ ॥४॥

अग्नि—

चित्र ही में आज बर्नसंकर बिलोकियत ब्याह ही में नारिन के गारिन सों काज है।
ध्वजै कंपजोगी, निसि चक्रै है बियोगी, द्विजराज-मित्र-द्वेषी एक जलद-समाज है।
मेघै तौ गगन पर गाजत नगर घेरि, अपजस डर, जस ही को लोभ आज है।
दुख्ख ही को खंडन है, मंडन सकल जग, चिर चिर राज करौ जाको ऐसो राज है ॥५

[१] ब्रह्म—बेद (दीन० १, प्रताप०, सर०, कौमुदी)। [२] पै-यों (कौमुदी); सु (दीन०, प्रताप०)। चिर–थिर (दीन० १, सर०); जग (दीन० २)। [३] कबि०–लोचननि ही के (दीन०, प्रताप०, सर०)। [४] त्यक्त–हीन (दीन० १)। देव देव०–देवन की (दीन० २)। [५] द्वेषी–दोषी (प्रताप०, सर०, कौमुदी)। एक०–जल अधोगति साज (दीन० १); सब जग जल साज (दीन० २); जग जलद-समाज (प्रताप०); जग जलज-समाज (सर०)। खंडन-दंडन (दीन० १, सर०)। चिर०–चिरजीवो रामचंद्र (दीन०, सर०); चिर चिरजीवो राम (प्रताप०)।

वायु—राजा रामचंद्र तुम राजहु सुजस जाको
भूतल के आसपास सागर को पास सो
सागर में बड़भाग बेष सेषनाग कैसो
सेपजू में सुखदानि बिष्नु को निवास सो।
बिष्नुजू में भूरि भाव भव को प्रभाव जैसो
भवजू के भाल में बिभूति को बिलास सो।
भूत माहिं चंद्रमा सो चंद्र में सुधा को अंसु,
अंसुनि में 'केसोदास' चंद्रिकाप्रकास सो ॥६॥

देवगण—

राजा रामचंद्र तुम राज करौ सब काल दीरघ दुसह दुख दीनन को दारियै।
'केसोदास' मित्रदोष मंत्रदोष ब्रह्मदोष देवदोप राजदोप देस तें निकारियै।
कलही कृतघ्न महिमंडल के बरिबंड पाखंड अखंड खंडखंड करि डारियै।
बंचक कठोर ठेलि कीजै बाट आठ आठ झूठ पाठ कंठ पाठकारी काठ मारियै ॥७॥

ऋषिगण—

भोगभार भागभार 'केसव' विभूतिभार भूमिभार भूरि अभिषेकन के जल से।
दानभार मानभार सकल सयानभार धनभार धर्मभार अक्षत अमल से।
जयभार जसभार राजभार राजत है रामसिर आसिप असेप मंत्रबल से।
देसदेस जत्रतत्र देखिदेखि तेहि दुख फाटत हैं दुष्टन के सीस दारयौफल से ॥८॥

केशव—(विजय)

जाइ नहीं करतूति कही सब श्रीसविता कबिता करि हारो।
याहि तें 'केसवदास' असीस पढ़ै अपनो करि नेकु निहारौ।
कीरति देवन की दुलही जस दूलह श्रीरघुनाथ तिहारौ।
सात रसातल सातहु लोकन सातहु सागर पार विहारौ ॥९॥

किन्नर, यक्ष, गंधर्व—(रूपमाला)

अजर अमर अनंत जय जय चरित श्रीरघुनाथ।
करत सुर नर सिद्ध अचरज श्रवन सुनि सुनि गाथ।
काय मन वच नेम जानत सिलासम परनारि।
सिला तें पुनि परम सुंदरि करत नेक निहारि ॥१०॥

---

[६] पास–बास (दीन०, प्रताप०, सर०)। जू के–कैसो (वही)। सुखदानि–चंद्रभाग (दीन०, कौमुदी)। भाव-भाग्य (कौमुदी)। जैसो–सोई (वही)। [७] अखंड–प्रचंड (कौमुदी)। कीजै०–कीजै बाराबाट आठ (वही)। [९] सातो–सातहु लोकन सातहु दीपनि (दीन०); सातहु लोकनि सात रसातल (सर०)।

चँवर ढारत मातु ऊपर पानि पीड़ा होइ।
बिसदंड ज्यों कोदंड हर को टूक कीन्हो दोइ।
साधु होइ असाधु राखत द्विजनहू को मान।
सकल-मुनिगन-मुकुटमनि को मर्दियो अभिमान ॥११॥

सूर सुंदर सरस रचि रति, करत रति कहँ लालि।
एकपत्नीव्रत निबाहत मदन को मद घालि।
सुखद सुहृद सुपूत सोदर हनत नृप जा काज।
पलक में सो राज्य छाँड्यो मातु पितु की लाज ॥१२॥

मंथरा सों मोद मानत बिपिन पठयो ठेलि।
सुपनखा की नाक काटी करन आई केलि।
चंचु चाँपत आँगुरी सुक ऐंचि लेति डेराइ।
बंधुसहित कबंध के उर मध्य पैठे धाइ ॥१३॥

सर्बथा सर्बज्ञ सर्बग सर्बदा रस एक।
अज्ञ ज्यों सीता त्रिलोकी ब्यग्र भ्रमत अनेक।
वान चूक्यो लक्ष्य कों को गनै केतिक बार।
ताल सातौ बेधियो सर एक एकहि बार ॥१४॥

सापराध असाधु अति सुग्रीव कीन्हो मित्र।
अपराध बिन अति साधु बालिहि हन्यो जानि अमित्र।
चलत जब चौगान कों लै चलत दल चतुरंग।
देवसत्रुहि चले जीतन रिक्ष बानर संग ॥१५॥

भूलिहू जा तन निहारत गुरु सो गिरिन समान।
निगरु देखे भए गिरिगन जलधि में ज्यों पान।
जतन जतनहि तरत सरजू डोंडि डोलत डीठि।
गए सागर-पार दै पग प्रगट पाहन-पीठि ॥१६॥

वाजि गज रथै बाहनी चढ़ि चलत श्रमित सुभाइ।
लंक में बिन पानहीं निज गए अपने पाइ।
जज्ञ को फल गहत जतननि जज्ञपुरुष कहाइ।
बैर जूँठे दियो सबरी भक्षियो सुख पाइ ॥१७॥

---

[१२] सूर–सुघर (कौमुदी); सिद्ध (दीन० २)। सरस–सुरुचि (वही)। रचि० रचिरचि (प्रताप०); लखि करि (दीन० २), रति रचि (कौमुदी)। करत–कीर्ति (वही) [१३] ठेलि–पेलि (कौमुदी)। [१४] ब्यग्र–बिज्ञ (दीन० १, प्रताप०, सर०)। [१६] देखे–देखत (दीन०, प्रताप०)। पान–जान (सर०)। डोंडि–डीठि (दीन०, प्रताप०); देखि (सर०); डरत (कौमुदी)। पै–जग (दीन० २)। [१७] बाहनी–बाहनन (कौमुदी)। में०–लौं निरसंक नीकें (प्रताप०, कौमुदी)।

कुसुम-कंदुक लगत काँपत मूँदि लोचनमूल।
सत्रुसंमुख सहे हँसि हँसि सेल असि सर सूल।
दूरि करत न दया दर्सत देह दंसत दंस।
भई बार न करत रावनबंस कों निरबंस ॥१८॥

बान बेझहि आन को लगि नाम आपनो लेत।
काल सो रिपु आपु हति जयपत्र औरहि देत।
पुन्य-कालन देत बिप्रन तौलि तौलि कनंक।
सत्रुसोदर कौं दई सब स्वर्न ही की लंक ॥१९॥

होइ मुक्त सो जाहि इनको मरत आवै नाम।
मुक्त एक न भए बानर मरे करि संग्राम।
एक पल बिन पान खाए बार बार जम्हात।
बर्ष चौदह नींद भूख पियास साधी गात ॥२०॥

छमे बरु अपराध अपने कोटि कोटि कराल।
अपराध एक न छम्यो गो द्विज दीन को सब काल।
जदपि लक्ष्मन करी सेवा सर्ब भाँति सभेव।
तदपि मानत सर्बथा करि भरथ ही की सेव ॥२१॥

कहत इनको परम साँचे सकल राना राइ।
तनक सेवा दास की कहैं कोटि गुनित बनाइ।
डरत एक अपलोक तें ये जीति चौदह लोक।
ठौर जाकहँ कहुँ न ताकहँ देत अपनो ओक ॥२२॥

छाँड़ि रिषि द्विज, देवरिषि रिषिराज सब सुख पाइ।
प्रगट सकल सनौढ़ियन के प्रथम पूजे पाइ।
छाँडि पितर त्रिसंकु, है बिपरीत जद्यपि देह।
अवध के सब जात सूकर स्वान स्वर्ग सदेह ॥२३॥

---

[१८] सत्रु–समर (दीन०, प्रताप०)। रावन०–रावनराज (दीन०)। [१९] बेझहि–बेझै (कौमुदी)। सो–को (दीन०, प्रताप०, सर०)। आपु–जीति कै (दीन० २)। पत्र–तिलक (दीन०, प्रताप०)। और–आन (कौमुदी)। [२१] एक–आघ (दीन०, सर०)। छम्यो०–सहहिगो (दीन० २); छमि सकै (दीन० १); छमहिगो (प्रताप०, सर०)। सब–किहि (दीन०, सर०); तेहि (प्रताप०)। भाँति०–भावसमेत (दीन०, प्रताप०, सर०)। की०–सों हेत (वही)। [२२] कों–सों (दीन०, प्रताप०, सर०)। राना–सुरगुरु (दीन० १)। एक–सब (कौमुदी)। ये०–जे जीव (वही)। [२३] रिषि०–द्विज द्विजराज ऋषि ऋषिराज प्रति (कौमुदी)। सुख०–सुखदाइ (दीन० १); हुलसाइ (कौमुदी)। सूकर०–स्वर्गहि सूकरादि (दीन० १)।

एक पल उर माँझ आए हरत सब संसार।
आइकै संसार में इन हरयो भूतल-भार।
सेष संभु स्वयंभु भाषत नेति निगमन जासु।
ताहि लघुमति बरनि कैसे सकत केसवदासु ॥२४॥

(दोहा)—यहि बिधि चौदह भुवन के गावत मुनि जस-गाथ।
प्रेमसहित पहिराइ सब बिदा किये रघुनाथ ॥२५॥

(झूलना)—अभिषेक की यह गाथ श्रीरघुनाथ की नर कोय।
पल एक गावत पाइहै बहु पुत्र संपति सोय।
जरि जाइगी सब बासना भव बिष्णुभक्त कहाइ।
जमराज के सिर पाँउ दै सुरलोक लोकनि जाइ ॥२६॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां ब्रह्मादि-स्तुतिवर्णनं नाम सप्तविंशः प्रकाशः ॥२७॥

२८

(भुजंगप्रयात)

अनंता सबै सर्बदा सस्यजुक्ता। समुद्रावधिः सप्तईतिर्बिमुक्ता।
सदा बृक्ष फूले फले तत्र सोहैं। जिन्हैं अल्पधी कल्पसाखी बिमोहैं ॥१॥
सबै निम्नगा क्षीर के पूर पूरी। भई कामगो सी सबै धेनु रूरी।
सबै बाजि स्वर्बाजि तें तेजपूरे। सबै दंति स्वर्दंति तें दर्परूरे ॥२॥
सबै जीव है सर्बदानंद पूरे। क्षमी संजमी बिक्रमी साधु सूरे।
जुवा सर्बदा सर्बबिद्याबिलासी। सदा सर्बसंपत्तिसोभाप्रकासी ॥३॥
चिरंजीवि संजोग-जोगी अरोगी। सदा एकपत्नीब्रती भोगभोगी।
सबै सीलसौंदर्य सौगंधधारी। सबै ब्रह्मज्ञानी गुनी धर्मचारी ॥४॥
सबै स्नानदानादिकर्माधिकारी। सबै चित्तचातुर्यचिंताप्रहारी।
सबै पुत्रपौत्रादि के सुख्ख साजैं। सबै भक्त माता-पिता के बिराजैं ॥५॥
सबै सुंदरी सुंदरी साधु सोहैं। सची सी सती सी जिन्हैं देखि मोहैं।
सबै प्रेम की पुन्य की सद्मिनी सी। सबै चित्रिनी पुत्रिनी पद्मिनी सी ॥६॥

---

[२४] भाषत—गावत (दीन० १)। न—सु (दीन० १), हु (कौमुदी)। लघु०—बपुरा (दीन० २)। सकत—कहै (दीन० १)। [२५] भुवन—लोक (दीन० १)। गावत०—जन गाए (कौमुदी); गावत जन (प्रताप०)। पहिराइ—सुख पाइ (वही)। [२६] भव०—जग रामभक्त (कौमुदी)। लोकनि—बसिहै (वही)। पल०—सुख माँझ गाइ सुनाइहै फल पाइहै सुभ सोइ (दीन०)।

[१] सस्य—सत्व (दीन० १)। [३] है—तो (दीन०, सर०)। [४] गुनी—ब्रती (दीन० २)। धर्म०—धर्मधारी (दीन० १)। [५] चित्त—सत्य (दीन० २, सर०); सबै (दीन० १)। [६] पुन्य०—जुक्ति सी (दीन० १)। सी—ह (दीन०)।

भ्रमै संभ्रमी जत्र सोकै ससोकी। अधर्मै अधर्मी अलोकै अलोकी।
दुखै तौ दुखी ताप तापाविकारी। दरिद्रै दरिद्री बिकारै बिकारी ॥७॥

(चौपही)—होमधूममलिनाई जहाँ। अति चंचल चलदल हैं तहाँ।
बालनास है चूड़ाकर्म। तीछनता आयुध के धर्म ॥८॥

लेत जनेऊ भिक्षादानु। कुटिल चाल सरितानि बखानु।
व्याकरनै द्विज बृत्तिन हरैं। कोकिलकुल पुत्रन परिहरैं ॥९॥

फागुहि निलज लोग देखियै। जुवा दिवारी कों लेखियै।
नित उठि बेझोई मारियै। खेलत में केंहूँ हारियै ॥१०॥

(दंडक)

भावै जहाँ व्यभिचारी बेंदै रमै परनारी, द्विजगन दंडधारी चोरी परपीर की।
मानिनीन ही के मन मानियत मानभंग, सिंधुहि उलंघि जाति कीरति सरीर की।
मूलै तौ अधोगतिन पावत है 'केसोदास' मीचु ही सों है बियोग इच्छा गंगानीर की।
बंध्या बासनानि जानु बिधवा सुबाटिकाई, ऐसी रीति राजनीति राजै रघुबीर की ॥११

(दोहा)—कबिकुल ही के श्रीफलन उर अभिलाष समाज।
तिथि ही को क्षय होत है रामचंद्र के राज ॥१२॥

(दंडक)

लूटिवे के नातें पापपट्टनै तौ लूटियत, तोरिबे कों मोहतरु तोरि डारियत है।
घालिबे के नातें गर्ब घालियत देवन के, जारिये के नातें अघओघ जारियत हैं।
बाँधिवे के नातें ताल बाँधियत 'केसोदास' मारिबे के नातें तौ दरिद्र मारियत है।
राजा रामचंद्रजू के नाम जग जीतियत, हारिबे के नातें आन जन्म हारियत है ॥१३

(चंद्रकला)

सबकें कलपद्रुम के बन हैं सबकें बर बारन गाजत हैं।
सबकें घर सोभित देवसभा सबकें जयदुंदुभि बाजत हैं।
निधि सिद्धि बिसेष असेषन सों सब लोग सबै सुख साजत हैं।
कहि 'केसव' श्रीरघुराज के राज सबै सुरराज से राजत हैं ॥१४॥

(दंडक)

जूझहि में कलह कलह-प्रिय नारदै, कुरूप है कुबेरै लोभ सबके चयन को।
पापन की हानि डर गुरुन को बैरी काम, आगि सर्बभक्षी दुखदायक अयन को।

---

[७] संभ्रमी–संभ्रमै (दीन०)। तौ–है (कौमुदी०)। [९] लेत–देत (दीन०, सर०)। [१०] नित–दिन (दीन०, सर०)। [११] पर०–चित धीर (दीन०, सर०)। सु–है (वही)। [१३] घालियत०–घालियै अदेवन (दीन०)। नाम–राज (वही)। [१४] जय–घर (दीन०)।

बिद्या ही में बादु बहुनायक है बारिनिधि, जारज है हनुमंत मीत उदयन को।
आँखिन अछत अंध नारिकेर, कृस कटि, ऐसो राज राजै राम राजिवनयन को ।।१५।।

(दोहा)—कुटिल कटाक्ष कठोर कुच, एकै दुख्ख अदेय।
द्विस्वभाव अस्लेष में, ब्राह्मन जाति अजेय ।।१६।।

(तोमर)—बहु सब्द बंधक जानि। अलि पस्यतोहर मानि।
नर छाँहई अपवित्र। सर खड्ग निर्दय मित्र ।।१७।।

(सोरठा)—गुन तजि अवगुनजाल, गहत नित्यप्रति चालनी।
पुंस्चलीनि तेहि काल, एकै कीरति जानियै ।।१८।।

(दोहा)—धनदलोक सुरलोकमय, सप्तलोक के साज।
सप्तद्वीपवति महि बसी, रामचंद्र के राज ।।१९।।

दस सहस्र दस सै बरष, रसा बसी यहि साज।
स्वर्ग नरक कें मग थके, रामचंद्र के राज ।।२०।।

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां राम-राज्यवर्णनं नामाष्टविंश: प्रकाश: ।।२८।।

२९

(चौपही)—एक काल अति रूपनिधान। खेलन कों निकरे चौगान।
हाथ धनुष-सर मन्मथ-रूप। संग पयादे सोदर भूप ।।१।।

जाको जबहीं आयसु होइ। जाइ चढ़ै गज-बाजिन सोइ।
पसुपति से रघुपति देखियै। अनुगत-सेष महा लेखियै ।।२।।

बीथी सब असवारिन भरी। हय हाथिन सों सोहन खरी।
तरु पुंजन स्यों सरिता भली। मानहु मिलन समुद्रहिं चली ।।३।।

यहि बिधि गए राम चौगान। सावकास सब भूमि समान।
सोभन एक कोस परिमान। रची रुचिर तापर चौगान ।।४।।

---

[१५] में–को (दीन०)। [१६] में–ही (दीय०)।

[१] निकरे–निकसे (दीन०, प्रताप०, सर०)। [२] अनु०–अनुगन (कौमुदी)। सेष–सेन (दीन०, प्रताप०, सर०, कौमुदी)। [४] रची–रच्यो (काशि०)।

एक कोद रघुनाथ उदार। भरथ दूसरी कोद बिचार।
सोहत हाथे लीन्हें छरी। कारी पीरी राती हरी ॥५॥

देखन लगो सब जगजाल। डारि दयो भुव गोला हाल।
गोला जाइ जहाँ जहँ जबै। होत तहीं तितही तित सबै ॥६॥

मनौ रसिक लोचन रुचिरचे। रूपसंग बहु नाचनि नचे।
लोकलाज छाँडे अँगअंग। डोलत जनु जनमन के संग ॥७॥

गोला जाके आगें जाइ। सोई ताहि चलै अपनाइ।
जैसें तियगन कों पति रयो। जेहि पायो ताही को भयो ॥८॥

उत तें इत इत तें उत होइ। नेकौ ढील न पावै सोइ।
काम क्रोध मद मढ़्यो अपार। मानौ जीव भ्रमै संसार ॥९॥

जहाँ तहाँ मारै सब कोइ। ज्यों नर पंच-बिरोधी होइ।
घरी घरी प्रति ठाकुर सबै। बदलत बासन बाहन तबै ॥१०॥

(दोहा)—जब जब जीतैं हाल हरि, तब तब बजत निसान।
हय गय भूषन भूरि पट, दीजत लोगनि दान ॥११॥

(चौपही)—तब तेहि समय एक बेताल। पढ़्यो गीत गुनि बुद्धिबिसाल।
गोलन की बिनती सुख पाइ। रामचंद्र सों कीन्ही आइ ॥१२॥

(दंडक)

पूरब की पूरा पूरी पापर पुरी से तन, बापुरी वै दूरिहि तें पायन परति हैं।
दक्षिन की जक्षिनी सी गच्छैं अंतरिक्ष मग, पच्छिम की पक्षहीन पक्षी ज्यों डरति हैं
उत्तर की देती हूँ उतारि सरनागतनि, बातन उतायली उतार उतरति हैं।
गोलन की मूरतिन दीजियै जू अभैदान, रामबैर कहाँ जायँ बिनती करति हैं ॥१३॥

---

[५] कोद—कैत (दीन०)। हाथे—हाथनि (दीन०, प्रताप ; सर०)। [६] हाल—लाल (दीन०, प्रताप०, सर०)। तहीं-सबै (दीन०, सर०); तितैं (दीन०); सुजुगु त (प्रताप०)। सबै—तबै (दीन० १, प्रताप०, सर०)। [७] जनु०—मन जनु (दीन० १); जिय ज्यों (दीन० २); तनु जिय (सर०)। मन कै—जाया (कौमुदी)। [८] ताहि०-तहीं चलै अकुलाइ (दीन० १) [९] ढील—ठालि (दीन० १); गली (प्रताप०, सर०)। क्रोध—लोभ (दीन० २); मोह (प्रताप०)। मद—जनु (दीन० १)। मढ़्यो—बँध्यो (दीन०,सर०)। मानौ—जैसें (कौमुदी)। [१०] नर—जन (दीन० १)। बासन०—बाहन घंटक (दीन० १); बासन सबहिन दीन० २)। [११] हरि—प्रभु (दीन० २)। लोगनि—बिप्रनि (दीन० १)। [१२] गुनि—गुन (दीन० १)। पढ़्यो०—बढ़ो बुद्धि गुन रूप (दीन० २)। [१३) पूरा०—पुरी पूरी पापरी (दीन० १)। जक्षिनी—पक्षिनी (कौमुदी); दक्षिनी (दीन० १)। डरति—ढरति (प्रकाशिका, कौमुदी)। बान—पद (दीन० २)।

(चौपही)—गोलन की बिनती सुनि ईस। घर कों गमन करयो जगदीस।
पुर पैठत अति सोभा भई। बीथिन असवारी भरि गई ॥१४॥

मनौ सेतु मिलि सहित उछाह। सरितन के फिरि चले प्रबाह।
ताही समै दिवस नसि गयो। दीप-उदोत नगर महँ भयो ॥१५॥

नखतन की नगरी सी लसी। मानौ अवध दिवारीं बसी।
नगर असोक बृक्ष रुचि रयो। मधु प्रभु देखि प्रफुल्लित भयो ॥१६॥

अध, अधफर, ऊपर आकास। चलत दीप देखियत प्रकास।
चौकी दै जनु अपने भेव। बहुरे देवलोक कों देव ॥१७॥

बीथी बिमल सुगंध समान। दुहुँ दिसि दीसत दीप-प्रमान।
महाराज कों सहित सनेह। निज नैननि जनु देखत गेह ॥१८॥

बहु बिधि देखत पुर के भाइ। राजसभा महँ बैठे जाइ।
पहर एक निसि बीती जहीं। बिनती कौं सुक आयो तहीं ॥१९॥

शुक—(हरिप्रिया)

पौढ़िये कृपानिधान, देवदेव रामचंद्र,
चंद्रिकासमेत चंद्र, रैनि चित्त मोहै।
मनहु सुमन सुमति संग, रुचे रुचिर सुकृत रंग,
आनँदमय अंग-अंग, सकल सुखन सोहै।
ललित लतन के बिलास, भ्रमरबृंद ह्वै उदास,
अमल कमल-कोस आसपास बास कीन्है।
तजि तजि माया दुरंत, भक्त रावरे अनंत,
तव पद कर नैन बैन, मानहु मन दीन्है ॥२०॥

घर घर संगीत गीत, बाजन बाजैं अजीत,
काम भूप आगम जनु, होत हैं बधाए।
राजभौन आसपास, दीपवृक्ष के बिलास,
जगत्ति जोति जोबन जनु जोतिवंत आए।
मोतिनमय भीति नई, चंद्रचंद्रिकानि मई,
पंक-अंक-अंकित भव, भूरि भेद सों करी।

[१४] बीथिन०—बीथी असवारनि (दीन० १, प्रताप०, सर०)। ताही—तेही (प्रताप०, सर०)। दिवस—सुरुज (दीन० १)। नसि—निसि (दीन० २, प्रताप०, सर०)। [१७] देखियत—दीपत (दीन० १), देखी सब बास (दीन० २)। [१८] समान—अमान (दीन० १)। प्रमान—अमान (कौमुदी)। दुहुँ०—ताहि करनि को कहै बखान (दीन० १)। [१९] राज—राम (दीन० २)। [२०] रामचंद्र—रामदेव (दीन०, प्रताप०, सर०)।

मानहु ससि पंडित करि, जोन्ह जोति मंडित श्री-
खंड सेल की अखंड, सुभ्र सुंदरी दरी ॥२१॥

एक दीप दुति बिभाति, दीपति मनि दीपपाँति,
मानहु भुवभूप तेज, मंत्रिन मय राजै।
आरे मनिखचित खरे, बासन बहु बास भरे,
राखत गृह गृह अनेक, मनहु मैन साजै।
अमल, सुमिल, जलनिधान, मोतिन के सुभ बितान,
तातर पलिका जराय जटित, जीव हरषै।
कोमल तापर रसाल, तनसुख की सेज लाल,
मनहु सोम सूरज पै, सुधाबिंदु बरषै ॥२२॥

फूलन के बिबिध हार, घुरिलनि उरमति उदार,
बिच बिच मनिस्याम हार, उपमा सुक भाषी।
जीत्यो सब जगत जानि, तुमसों हरि हार मानि,
मनहु मदन निज धनु तें गुन उतारि राखी।
जल थल फल फूल भूरि, अंबर पटबास धूरि,
स्वच्छ जक्षकर्दम हिय देवन अभिलाषे।
कुंकुम मेदोजबादि, मृगमद करपूर आदि,
बीरा बनितन बनाइ, भाजन भरि राखे ॥२३॥

पन्नगी नगी कुमारि, आसुरी सुरी निहारि,
बिबिध बीन किंनरीन, किंनरी बजावैं।
मानो निष्काम भक्ति, सक्ति आप आपनीन,
देहनि धरि प्रेमनि भरि, भजनभेद गावैं।
सोदर, सामंत, सूत, सेनापति, दास, दूत,
देस देस के नरेस, मंत्रि मित्र लेखियै।
बहुरे सुर असुर सिद्ध, पंडित मुनि कबि प्रसिद्ध,
'केसव' बहु राय राज, राजलोक देखियै ॥२४॥

(दोहा)—कहि 'केसव' सुक के बचन, सुनि सुनि परम बिचित्र।
राजलोक देखन चले, रामचंद्र जगमित्र ॥२५॥

---

[२१] बधाए, आए—बधायो, आयो (कौमुदी)। भूरि०—भेद सों प्रकासै (प्रताप०); भूरि भेदवारी (कौमुदी)। सुदरी०—दरी मासैं (प्रताप०); दरी सारी (कौमुदी)। [२२] वासन—भाजन (दीन० २)। तातर—तापर (प्रकाशिका); तामहँ (कौमुदी)। जापर—तनु तरु (दीन० २)। [२३] हरि—हिय (कौमुदी); प्रभु (प्रताप०)। कर्दम—गंधर्ब तिय (दीन० २)। हिय—जिय (दीन० १, प्रताप०, सर०)। [२४] आपनीन—आपनी सु (दीन० २, कौमुदी)।

(नराच)

सुदेस राजलोक आसपास कोट देखियो। रची बिचारि चारि पौंरि पूरबादि लेखियो
सुबेष एक सिंहपौरि एक दंतिराज है। सु एक बाजिराज एक नंदिबेष साज है ॥२६॥

(दोहा)—पाँच चौक मध्यहि रचे, सात लोक, तरहारि।
षट ऊपर तिनके तहाँ, चित्रे चित्र बिचारि ॥२७॥

(चामर)

भोज एक चौक मध्य, दूसरे रची सभा। तीसरे बिचार मंत्र और नृत्य की प्रभा।
मध्य चौक में तहाँ बिदेहकन्यका बसै। सर्ब भाव रामचंद्रलीन सर्बथा लसै ।२८॥

(दोधक)—मंदिर कंचन को एक सोहै। सेत तहाँ छतुरी मन मोहै।
सोहत सीरष मेरुहि मानौ। सुंदर देव-दिवान बखानौ ॥२९॥
मंदिर लालन को एक सोहै। स्याम तहाँ छतुरी मन मोहै।
ताहि यहै उपमा सब साजै। सूरज अंग मनौ सनि राजै ॥३०॥
मंदिर नीलन को एक सोहै। सेत तहाँ छतुरी मन मोहै।
मानहु हंसन की अवली सी। प्राबिट-काल उड़ाइ चली सी ॥३१॥
मंदिर सेत लसै अति भारी। सोहत है छतुरी अति कारी।
मानहु ईस्वर के सिर सोहै। मूरति राघव की मन मोहै ॥३२॥

(तोटक)—सब धामन में एक धाम बन्यो। अति सुंदर सेत सरूप सन्यो।
सनि सूर बृहस्पति मंडल में। परिपूरन चंद्र मनौ बल में ॥३३॥

(चौपाई)—बहुधा मंदिर देखे भले। देखन सुभ्र सालिका चले।
सीत भीत ज्यों नैक न त्रसै। पलक वसनसाला महँ लसै ॥३४॥
जलसाला चातक ज्यों गए। अलि ज्यों गंधसालिका ठए।
निपट रंक ज्यों सोभित भए। मेवा की साला में गए ॥३५॥
चतुर चोर से सोभत भए। धरनीधर धनसाला गए।
मानिनीन कैसे मन भेव। गए मानसाला में देव ॥३६॥

---

[२८] और–चौथ (कौमुदी)। [२९] मंदिर–मंडप (कौमुदी)। सेत०–चित्त तहाँ छतुरी सन (दीन० १)। [३०] मंदिरि–मंडप (कौमुदी)। ताहि०–ताहित या उपमा हिव (वहो)। साजै, राजै–जानौ, मानौ (दीन० २)। [३१] मंदिर–मंडप (कौमुदी)। नीलन–नीलम (कौमुदी)। नीलम०–नील लखै मन लोभै (दीन० १); नोल बन्यो मन लोभै (दीन० २)। प्राविट–पावस (दीन० १)। मन०–इक सोहै (दीन० २); गन सोहै (दीन० १)। [३२] मंदिर–मंडप (कौमुदी)। अति–सुम (दीन० २); सुख (दीन० १)। [३३] सुंदर०–उत्तम रूपनि रूप (दीन० १)। [३४] सुभ्र–वस्त्र (कौमुदी)। लसै–बसै (दीन० २)। [३६] ठए–रए (दीन० १)।

मंत्रिन स्यों बैठे सुख पाइ। पलक मंत्रसाला में जाइ।
सुभ सिंगारसाला कों देखि। उलटे ललित नयन से लेखि ॥३७॥

(तोटक)—जब रावर में रघुनाथ गए। बहुधा अवलोकत सोभ भए।
सब चंदन की सुभ सुद्ध करी। मनिलालसिरानि सुधारि धरी ॥३८॥
बरँगा अति लाल सुचंदन के। उपजे बन सुंदर नंदन के।
गजदंतन की सुभ सींक नई। तिन बीचन बीचन स्वर्नमई ॥३९॥
तिनके सुभ छप्पर छाजत हैं। कलसा मनि नील बिराजत हैं।
अति अद्भुत थंभन की दुगई। गजदंत सुकंचन चित्रमई ॥४०॥
तिन माँझ लसैं बहुभायन के। सुभकंचन फूल जरायन के ॥४१॥

(रूपमाला)

बर्न बर्न जहाँ तहाँ बहुधा तने सुबितान। झालरैं मुकुतान की अरु झूमके बिन मान
चौकठैं मनि नील की फटिकान के सुकपाट। देखि देखि सो होत हैं सब देवता जनु भाट
सेत पीत मनीन के परदे रचे रुचिलीन। देखिकै तहँ देखियै जनु लोल लोचन मीन
सुभ्र हीरन को सुअंगन हैं हिंडारा लाल। सुंदरी जहँ झूलहीं प्रतिबिंब के तहँ जाल

(स्वागता)—धाम धाम प्रति आसन सोह। देखि देखि रघुनाथ बिमोहैं।
बर्नि सोभ कबि कौन कहै जू। जत्र तत्र मन भूलि रहैं जू ॥४४॥

(दोहा)—जाके रूप न रेख गुन, जानत बेद न गाथ।
रंहमहल रघुनाथ गे, राजश्री के साथ ॥४५॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकाया श्रीमदिंद्रजिद्विरचितायां लोकवर्णनन्नामैकोनत्रिंशः प्रकाशः ॥२९॥

---

[३७] उलटे–पलटे (कौमुदी)। से–सौं (दीन०, प्रताप०)। लेखि–देखि (कौमुदी)। [३८] बहुधा–चहुधाँ (कौमुदी)। [४०] छप्पर–छत्तर (दीन० २)। लाल–नील (दीन०)। [४१] सुभ–बहु (दीन० २)। कौमुदी में ये पंक्तियाँ अधिक हैं—

तिनकी उपमा मन क्यौं हुं न आवै। बहुलोकन को बहुभाँति भ्रमावै।

[४२] बहुधा०–बहुभाँति के (दीन० २)। [४३] तहँ–जनु (दीन० १)। जनु–सम (दीन० १); जहँ (दीन० २)। तहँ–सुभ (दीन० १); गन (दीन० २)। [४५] रघुनाथ०–में राम (दीन०, प्रताप०, सर०)।

३०

(चतुष्पदी)—दुति रंगमहल की, सहसबदन की, बरनै मति न बिचारी।
अध ऊरध राती, रंग-सँघाती, रुचि बहुधा सुखकारी।
चित्री बहुत चित्रनि, परम बिचित्रनि, रघुकुलचरित सुहाए।
सब देव अदेवनि, अरु नरदेवनि, निरखि निरखि सिर नाए॥१॥

आईं बनि बाला, गुन-गन-माला, बुधिबल रूपन बाढ़ी।
सुभ जाति चित्रिनी चित्रगेह तें, निकसि भईं जनु ठाढ़ी।
मानौ गुनसंगनि, यों प्रतिअंगनि, रूपक-रूप बिराजैं।
बीनानि बजावैं, अद्‌भुत गावैं, गिरा रागिनी लाजैं॥२॥

(पद्धटिका)

स्वर नाद ग्राम नृत्यति सताल। मुखबर्ग बिबिध आलाप काल।
बहु कला जाति मूर्छना मानि। बड़ भाग गमक गुन चलत जानि॥३॥

बहुबर्न बिबिध आलाप कालि। मुखचालि, चारु अरु सब्दचालि।
बहु उड़ुप, त्रियगपति, पति, अडाल। अरु लाग, धाउ, रापैरंगाल॥४॥

उलथा टेकी, आलम, स-दिंड। पदपलटि, हुस्मयी, निसंक, चिंड।
असु तिनकी भ्रमनि देखि मतिधीर। भ्रमि सीखत है बहुधा समीर॥५॥

(मोटनक)—नाचैं रस बेष असेष तबै। बर्षैं सुरसैं बहु भाँति सबै।
नौहूँ रस मिश्रित भाव रचैं। कौनौ नहिं हस्तकभेद बचैं॥६॥

(दोहा)—पायं पखाउज ताल स्यों, प्रतिधुनि सुनियत गीत।
मानहु चित्र बिचित्रमति, पढ़त सकल संगीत॥७॥

अमल कमलकर आँगुरी, सकल गुनन की मूरि।
लागत मूठ मृदंगमुख, सब्द रहत भरिपूरि॥८॥

(दंडक)

अपघन घाय न बिलोकियत घायलनि, घनो सुख 'केसोदास' प्रगट प्रमान है।
मोहै मन, भूलै तन, नयन रुदन होत, सूखै सोच पोच, दुख-मारन-बिधान है।

---

[१] महल—सदन (दीन०, प्रताप०)। [२] माला—साला (दीन०, सर०)। यों—स्यों (कौमुदी)। [३] मुख—सुख (प्रताप० सर०); सुभ (दीन० कौमुदी)। बर्ग—गर्ब (दीन० १, सर०); बरन (कौमुदी)। चलत—नचत (दीन०, प्रताप०, सर०)। [४] बहु०—बहु बचन (प्रताप०, सर०); सुभ गान (कौमुदी) [५] तिनकी०—तियन भ्रमनि लखि (कौमुदी)। बहुधा—सतधा सु (दीन० १, प्रताप०)। [६] भेद—भाव (दीन० २)। [७] पढ़त०—सिखत नृत्य (कौमुदी)। [८] मूठ—पाप (कौमुदी)।

आगम अगम तंत्र सोधि, सब जंत्र मंत्र, निगम, निवारिबे कौं केवल अयाम हे।
बालनि को तनतान, अमित अमान स्वर, रीझि रामदेव कहैं काम कैसो बान है ॥९॥

(दोहा)—कोटि भाँति संगीत सुनि, 'केसव' श्रीरघुनाथ।
सीताजू के घर गए, गहें प्रीति को हाथ ॥१०॥

(सुंदरी)

सुंदरि मंदिर में मन मोहति। स्वर्नसिंहासन ऊपर सोहति।
पंकज के करहाटक मानहु। है कमला बिमला यह जानहु ॥११॥
फूलन को सु बितान तन्यो बर। कंचन की पलिका इक ता तर।
जोति जराय जरयो अति सोभनु। सूरजमंडल तें निकस्यो जनु ॥१२॥

(कुसुमविचित्रा)

दरसत ही नैनन रुचि बनै। बसन बिछाए सब सुख सनै।
अति सुचि सोहैं कबहुँ न सुन्यो। जनु तनु लैकैं ससिकर चुन्यो ॥१३॥
(चौपही)—चंपकदल दुति के गेंडुए। मनहु रूप के रूपक उए।
कुसुम गुलावन की गलसुई। बरनो जाइ न नयननि छुई ॥१४॥

(दोहा)—रामचंद्र रमनीयतर, तापर पौढ़े जाइ।
पदपंकज पखराइकै, कहि 'केसव' सुख पाइ ॥१५॥

(तोमर)—जिनके न रूप रेख। ते पौढ़ियो नरबेष।
निसि नासियो तेहि बार। बहु बंदि बोलत द्वार ॥१६॥

(दोहा)—राजलोक जाग्यो सबै, बंदीजन के सोर।
गए जगावन राम पै, सारिकादि उठि भोर ॥१७॥

सारिका—(हरिप्रिया)

जागियै त्रिलोकदेव, देवदेव रामदेव,
भोर भयो, भूमिदेव भक्त दरस पावै।
ब्रह्मा मन मंत्र बरन, बिष्नुहृदय-चातक घन,
रुद्रहृदय-कमल-मित्र, जगत गीत गावै।
गगन उदित रबि अनंत, सुक्रादिक जोतिवंत,
छिनछिन छबि छीन होत, लीन पीन तारे।

---

[९] यह 'दीन०' में नहीं है। [१०] कोटि–भाँति। (दीन० १)। घर०–गेह गए (दीन० १); गेह गे (दीन० २, प्रताप०)। कों–सों (दीन०, प्रताप०, सर०)। [१२] निकस्यो–उतरयो (दीन० १)। [१३] अति०–नैननि कौं बहु भाँतन गुनै (दीन० १)। जनु०–मानौ (काशि० सर०)। चुन्यो–बनै (दीन० १)। [१४] बरनो०–बरनि न (प्रताप०, कौमुदी)। [१५] रमनीय०–रमनीनिजुत (दीन० १)।

मानहु परदेस देस, ब्रह्मदोष के प्रबेस,
ठौर ठौर तें बिलात जात भूप भारे ॥१८॥

अमल कमल तजि अमोल, मधुप लोल टोल टोल,
बैठत उड़ि करि-कपोल, दान-मानकारी।
मानहु मुनि ज्ञानबृद्ध, छोड़ि छोड़ि गृह समृद्ध,
सेवत गिरिगन प्रसिद्ध, सिद्धि सिद्धि-धारी।
तरनि-किरनि उदित भई, दीपजोति मलिन गई,
सदय हृदय बोध-उदय, ज्यों कुबुद्धि नासै।
चक्रवाक निकट गई, चकई मन मुदित भई,
जैसे निज जोति पाइ, जीव जोति भासै ॥१९॥

अरुन तरनि के बिलास, एक दोइ उडु अकास,
कलि कैसे संत ईस, दिसन अंत राखै।
दीसत आनंदकंद निसि खिन दुतिहीन चंद,
ज्यों प्रबीन जुवतिहीन पुरुष दीन भाखै।
निसिचरचय के बिलास, हास होत है निरास,
सूर के प्रकास त्रास, नासत तम भारे।
फूलत सुभ सकल गात असुभ सैल से बिलात,
आवत ज्यों सुखद राम नाम मुख तिहारे ॥२०॥

सारो सुक सुभ मराल, केकी कोकिल रसाल,
बोलत कल पारावत, भूरि भेद गुनियै।
मनहु मदन पंडित रिषि, सिष्य गुनन मंडित करि,
अपनी गुदरैनि देन, पठए प्रभु सुनियै।
सोदर सुत मंत्रि मित्र, दिसि दिसि के नृप बिचित्र,
पंडित मुनि कबि प्रसिद्ध, सिद्ध द्वार ठाढ़े।
रामचंद-चंद ओर मानहु चितवत चकोर,
कुबलय जल जलधि जोर, चोप चित्त बाढ़े ॥२१॥

नचत रचत रुचिर एक, जाचक गुनगन अनेक,
चारन मागध अगाध, बिरद बंदि टेरे।
मानहु मंडूक मोर, चातक चय करत सोर,
तड़ित बसन संजुत घन स्याम हेत तेरे।

---

[१९] हृदय–चित्त (दीन०, प्रताप०, सर०)। [२०] दीसत–दीखत (कौमुदी)। खिन–बिनु (दीन०, प्रताप० सर०, कौमुदी)। हीन–मंद (दीन० १, सर०)। नासत–मागत (दीन० १)। [२१] पठए–आए (दीन० १)।

'केसव' सुनि बचन चारु, जागे दसरथ-कुमारु,
रूप प्याइ ज्याइ लीन, जन जल थल ओक के।
बोलि हँसि बिलोकि बीर, दान मान हरी पीर,
पूरे अभिलाष लाख, भाँति लोक लोक के ॥२२॥

(दोहा)—जागत श्रीरघुनाथ के, बाजे एकहि बार।
निगर नगारे नगर के, 'केसव' आठहु द्वार ॥२३॥

(मरहट्ठा)—दिन दुष्ट निकंदन, श्रीरघुनंदन, आँगन आए जानि।
आईं नव नारी, सुभग सिंगारी, कंचनझारी पानि।
दात्योनि करत हैं, मर्ननि हरत हैं, बोरि बोरि घनसार।
सजि सजि बिधि मूकनि, प्रति गंडूषनि, डारत गहत अपार ॥२४॥

(दोहा)—संध्या करि रबि पाँय परि, बाहिर आए राम।
गनक चिकित्सक आसिषा, बंधुन किये प्रनाम ॥२५॥

(मरहट्ठा)—सुनि सत्रु-मित्र की, नृपचरित्र की, रैयत-रावत-बात।
सुनि जाचकजन के, पसुपक्षिन के, गुनगन अति अवदात।
सुभ तन मज्जन करि न्हान दान करि, पूजे पूरन देव।
मिलि मित्र सहोदर बंधु सुभोदर कीन्हें भोजन भेव ॥२६॥

(दंडक)

निपट नवीन रोगहीन बहुछीरलीन, पीन बक्ष पीन तन तापन हरत हैं।
ताँबे मढ़ी पीठि लागे रूपे के खुरन डीठि, डीठि स्वंर्न सृंग मन आनँद भरत हैं।
काँसे की दोहनी स्याम पाट की ललित नोई, घंटन सों पूजि पूजि पाँयन परत हैं।
सोभन सनौढ़ियन रामचंद्र दिन प्रति, गोसत सहस्र दै के भोजन करत हैं ॥२७॥

(तोटक)—तहँ भोजन श्रीरघुनाथ करैं। षट रीति मिठाइन चित्त हरैं।
पुनि खीर सों चौंबिधि भात बन्यो। तक तीनि प्रकारनि सोभ सन्यो ॥२८

षट भाँति पहीति बनाइ सँची। पुनि पाँच सो ब्यंजन रीति रची।
बिधि पाँच सो रोटिन माँगत हैं। बिधि पाँच बरा अनुरागत हैं ॥३९॥

बिधि पाँच अथान बनाइ किये। पुनि द्वै बिधि छीर सो माँगि लिये।
पुनि झारि सो द्वै बिधि स्वाद घने। बिधि दोइ पछ्यावरि सात पने ॥३०॥

---

[२२] ओक०—ओकै (कौमुदी)। लोक०—लोकै (वही)। [२३] निगर—निकर (कौमुदी)। [२४] बोरि०—ओर बोरि (कौमुदी)। [२७] तन—थन (कौमुदी)। तापन—हीयन (दीन० २, कौमुदी)। डीठि०—देखि देखि (दीन० २); डीठि देखि (कौमुदी); डीठि (सर०)। मन—देखि (प्रताप०); देखिकै (सर०); मई (दीन० १)। रामचंद्र—रामदेव (दीन०, प्रताप०, सर०)। दै०—दैदै (दीन०, प्रताप०, सर०)। [२७] हरैं—करैं (दीन०, प्रताप०, सर०)। [३०] अथान—सुथार (दीन० २, प्रताप०); सुथान (दीन० १, सर०)।

(दोहा)—पाँच भाँति ज्योनारि सब षट रस रुचिर प्रकास।
भोजन करि रघुनाथजू बोले 'केसवदास' ॥३१॥

(हरिलीला)

बैठे बिसुद्ध गृह-अग्रज-अग्र जाइ। देखो बसंत रितु सुंदर मोददाइ।
बौरे रसाल कुल कोयल केलि काल। मानो अनंद-ध्वज राजत श्रीबिसाल ॥३२॥
फूली लवंग लवली लतिका बिलोल। भूले जहाँ भ्रमर बिभ्रम मत्त डोल।
बोलैं सुहंस सुक कोकिल केकिराज। मानो बसंत भट बोलत जुद्ध काज ॥३३॥
सोहै पराग चहुँ भाग उड़ै सुगंध। जातें बिदेस बिरहीजन होत अंध।
पालासमाल बिन पत्र बिराजमान। मानो बंसत दिय कामहिं अग्निबान ॥३४॥

(विजय)

फूले पलास बिलास थली बहु 'केसवदास' प्रकास न थोरे।
सेष असेष मुखानल की जनु ज्वाल बिसाल चली दिबि ओरे।
किंसुकश्री सुकतुंडन की रुचि राचे रसातल में चित चोरे।
चंचुनि चाँपि चहूँ दिसि डोलत चारु चकोर अँगारन भोरे ॥३५॥

(मोतियदाम)

जरैं बिरहीजन जोवत गात। धरे उर सीत लसे जलजात।
किधौं मन मीनन को रघुनाथ ; पसारि दियो जनु मन्मथ हाथ ॥३६॥
जिते नर नागर लोग बिचारि। सबै बरनैं रघुनाथ निहारि।
किधौं परमानंद को यह मूल। बिलोकतहीं सु हरै सब सूल ॥३७॥
किधौं बन जीवन को मधुमास। रचे जग-लोचन-भौंर-बिलास।
किधौं मधु को सुख देत अनंग। धरचो मन-मीन निकारन अंग ॥३८॥
किधौं रति कीरति-बेलि-निकुंज। बसै गुन पक्षिन को जहँ पुंज।
किधौं सरसीरुह ऊपर हंस। किधौं उदयाचल ऊपर हंस ॥३९॥
(दोहा)—प्राची दिसि ताही समय, प्रगट भयो निसिनाथ।
बरनत ताहि बिलोकिकै सीता सीतानाथ ॥४०॥

(हरिणी)

फूलन की सुभ गेंद नई। सूंघि सची जनु डारि दई।
दर्पन सो ससि श्री रति को। आसन काम महिपति को ॥४१॥

---

[३३] भूले—भूले (दीन० १); फूले (दीन० २)। [३५] बहु—कहि (दीन०)। [३६] धरे—उघरे (काशि०, सर०, प्रकाशिका); अंधरे (दीन० २); खिले (कौमुदी)। किधौं—मनो (दीन०, प्रताप०, सर०)। जनु—बहु (कौमुदी)। [३७] मूल—फूल (दीन० २, प्रताप०)। सु—जु (कौमुदी)। [३९] बसै—सबै (प्रताप०, सर०)। ऊपर—के सिर (दीन०, प्रताप०)। हंस—अंस (प्रताप०)। [४१] नई०—नई है, दई है (कौमुदी)।

(हरिणी)—मोतिन को श्रुतिभूषन भनौ। भूलि गई रवि की तिय मनो।
अंगद को पितु सो सुनियै। सोहत तारहि संग लियै ॥४२॥
भूप मनोभव छत्र धरयो। लोक बियोगिन को बिडरयो।
देवनदी-जल राम कह्यो। मानहु फूलि सरोज रह्यो ॥४३॥
फेन किधौं नभसिंधु लसै। देवनदी जल हंस बसै ॥४४॥

(दोहा)—चारु चंद्रिका सिंधु में सीतल स्वच्छ सतेज।
मनो सेषमय सौभिजै हरिनाधिष्ठित सेज ॥४५॥

(दंडक)

'केसोदास' है उदास कमलाकर सो कर, सोषक प्रदोष ताप तमोगुन तारियै।
अमृत असेष के बिसेष भाव बरसत, कोकनद मोद चंड खंडन बिचारियै।
परमपुरुषपद-बिमुख परुष रुख, सुमुख सुखद बिदुषन उर धारियै।
हरि हैं री हिये में न हरिन हरिननैनी, चंद्रमा न चंद्रमुखी नारद निहारियै ॥४६॥

(दोहा)—आई जानि बसंत रितु बनहिं बिलोकत राम
धरनीधर सीतासहित, रति समेत जनु काम ॥४७॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां वसंतदर्शनं नाम त्रिंशत्प्रकाशः ॥३०॥

३१

(चंचला)—भोर होत ही गयो सु राजलोक मध्य बाग।
बाजि आनियो सु एक इंगितज्ञ सानुराग।
सुभ्र सुद्ध चारिहून अंस रेनु के उदार।
सीखि सीखि लेत हैं ते चित्त चंचला प्रकार ॥१॥

(तोमर)—चढ़ि बाजि ऊपर राम। बन कों चले तजि धाम।
चढ़ि चित्त ऊपर काम। जनु मित्र को सुनि नाम ॥२॥

---

[४२] मनो०-जानो, मानो (कौमुदी)। सुनियै—सुनियै जू (वही)। [४३] पादांत में 'ज्यों, जू' अधिक (कौमुदी)। [४४] जल—जनु (दीन०)। 'कौमुदी' में ये दो चरण और हैं—संख किधौं हरि के कर सोहै। अंबर सागर ते निकसो है।

[१] सुद्ध—पुंम (दीन०, प्रताप०, कौमुदी)।

मग में बिलंब न कीन। बनराज मध्य प्रबीन।
सब भूपरूप दुराइ। जुवती बिलोकीं जाइ ॥३॥

(स्वागता)—राम संग सुक एक प्रबीनो। सीयदासि गुन बर्नन कीनो।
केस पास सुभ स्याम सनेही। दास होत प्रभु जीव बिदेही ॥४॥
भाँति भाँति कबरी सुभ देखी। रूपभूप-तरवारि बिसेषी।
पीय प्रेम पन राखन हारी। दीह दुष्ट छल खंडन कारी ॥५॥

(चौपई)

किधौं सिंगार-सरित सुखकारि। बंचकतानि बहावनिहारी।
कंचन पत्रपाँति सोपान। मनौ सिंगार लोक के जान ॥६॥
सीसफूल अरु बेंदा लसै। भाग सोहाग मनौ सिर बसै।
पाटिन चमक चित्त चौंधिनी। मानौ दमकति घन दामिनी ॥७॥
सेंदुर माँग भरी अति भलीं। तिहि पर मोतिन की आवली।
गंग-गिरा तन सों तन जोरि। निकसीं जनु जमुना-जल फोरि ॥८॥
सीसफूल सुभ जरयो जराय। माँगफूल सोहै सुभ भाय।
बेनीफूलन की बर माल। भाल भले बेंदाजुत लाल ॥९॥
तम-नगरी पर तेजनिधान। बैठे मनौ बारहौ भान।
भृकुटि कुटिल बहु भायन भरी। भाल लाल दुति दीसत खरी ॥१०॥
मृगमद तिलक रेख जुग बनी। तिनकी सोभा सोभति घनी।
जनु जमुना खेलति सुभगाथ। परसन पितहि पसारे हाथ ॥११॥

(पंकजवाटिका)

लोचन मनहु मनोभव जंत्रनि। भ्रूजुग उपर मनोहर मंत्रनि।
सुंदर सुखद सुअंजन अंजित। बान मदन बिष सों जनु रंजित ॥१२॥
सुखद नासिका जग मोहियो। मुक्ताफलनि जुक्त सोहियो।
आनंदलतिका मनहु सफूल। जनु सूँघि तजत ससि सकल सूल ॥१३॥

(पद्धटिका)

जनु भालतिलक रबि ब्रतहि लीन। नृपरूप अकासहि दीप दीन।
ताटंक जटित मनि श्रुति बसंत। सब एकचक्र रथ से लसत ॥१४॥

---

[४] कीनो—लीनो (दीन०, प्रताप०) [५] पन—क्रम (दीन० १, प्रताप०, सर०)। दुष्ट०—बिरहदुख काटनहारी (दीन० १)। छल—बल (दीन० २)। [६] पत्र—पान (कौमुदी)। [९] सुभ—भ्रति (दीन० १); सिर (दीन २, सर०)। सुभ—सम (कौमुदी)। जुत—जुग (वही)। [१०] बैठे—ऊगे (दीन० १); मानो सोभत द्वादस मान (दीन० २)। [११] पसारयो—पसारे (दीन०, प्रताप० सर०)। [१२] जंत्रनि०—जंत्रहि, मंत्रहि (कौमुदी)। [१३] जनु०—सूँघि तजत ससि सकल कुसूल (कौमुदी)।

अति झुलमुलीन सह झलक लीन। फहरात पताका जनु नवीन।
अति तरुन अरुन द्विज दुति लसंति। निजु दाड़िम बींजन कों हसंति ॥१५॥

संध्याहि उपासत भूमिदेव। जनु बाकदेव की करत सेव।
सुभ तिनके सुख मुख के बिलास। भयो उपबन मलयानिल निवास ॥१६॥

(चौपही)

मृदु मुसुकानि लता मन हरैं। बोलत बोल फूल से झरैं।
तिनकी बानी सुनि मनहारि। बानी बीना धरयो उतारि ॥१७॥

लटके अलिक अलक चीकनी। सूक्षम अमल चिलक सों सनी।
नकमोती दीपकदुति जानि। पाटी रजनी ही उनमानि ॥१८॥

जोति बढ़ावत दसा उसारि। मानहु स्यामल सींक पसारि।
जनु कबिहित रबि रथ तें छोरि। स्यामपाट की बाँधी डोरि ॥१९॥

रूप अनूप रुचिर रसभीनि। पातुर नैननि की पुतरीनि।
नेह नचावत हित रतिनाथ। मरकत-लकुट लियें जनु हाथ ॥२०॥

(दोहा)—गगन-चंद्र तें अति बड़ो तिय-मुख-चंद्र बिचारु।
दई बिचारि बिरंचि चित कला चौगुनी चारु ॥२१॥

(दंडक)

दीन्हो ईस दंडबल, दलबल, द्विजबल, तपबल, प्रबल समेत कुलबल की।
'केसव' परमहंसबल, बहु कोसबल, कहा कहौं बड़ीयै बड़ाई दुर्ग-जल की।
बिधिबल, चंद्रबल, श्री को बल श्रीसबल, करत है मित्रबल रक्षा पल पल की।
मित्रबल हीन जानि अबला मुखनि बल, नीकेहीं छड़ाइ लई कमला कमल की ॥२२॥

(दोहा)—रमनी-मुखमंडल निरखि राकारमन लजाइ।
जलद जलधि सिव सूर में राखत बदन दुराइ ॥२३॥

(विशेषक)

भूषन ग्रीवन के बहु भांतिन सोहत हैं। लाल सितासित पीत प्रभा मन मोहत हैं।
सुंदर रागन के बहु बालक आनि बसे। सीखन कों बहु रागिनि 'केसवदास' लसे ॥२४

---

[१४] सब—रबि (कौमुदी)। [१५] निजु—जन (प्रताप०) [१६] बाकदेव—बामदेव (प्रताप०, सर०); बाकदेवि (कौमुदी)। बिलास—सुबास (दीन०, प्रताप०)। मलया०—मलयाचल (दीन०, प्रताप०, सर०)। [१८] ही०—हियहित मानि (दीन०, प्रताप०)। [१९] उसारि—उनारि (कौमुदी); बिचारि (दीन० २)। बाँधी—डारी (दीन०, प्रताप०, कौमुदी)। [२२] द्विज—बीज (कौमुदी)। ही—कै (वही)। [२३] दुराइ—छिपाय (कौमुदी)। [२४] बहु—जनु (दीन०, प्रताप, सर०)। बहु—मनु (दीन०)।

(चौपही)—हरिपुर सी सुरपुरदूषिता। मुक्ताभरन - प्रभाभूषिता।
कोमलसब्दनिवंत सुबृत्त। अलंकारमय मोहनमित्त ॥२५॥
काव्यापद्धति - सोभा गहे। तिनके बाहुपास कबि कहे।
नव रँग बहु असोक के पत्र। तिन महँ राखत राजकलत्र ॥२६॥
देखहु देव दीन के नाथ। हरत कुसुम के हारत हाथ।
सुंदर अँगुरिन मुँदरी बनी। मनिमय सुबरन-सोभा-सनी ॥२७॥
राजलोक के मन रुचिरए। मानो कामिनि कर करि लए।
अति सुंदर उर में उरजात। सोभासर में जनु जलजात ॥२८॥
अखिल लोक जलमय करि धरे। बसीकरन-चूरनचय भरे।
कामकुँवर-अभिषेक-निमित्त। कलस रचे जनु जौबन मित्त ॥२९॥

(दोहा)—रोमराजि सृंगार की ललित लता सी राज।
ताहि फले कुचरूप फल लै जगजोति-समाज ॥३०॥

(चौपही)—सूक्षम रोमावली सुबेष। उपमा दीन्ही सुक सबिसेष।
उर में मनहु मदन की रेख। ताकी दीपति दिपति असेष ॥३१॥

(दोहा)—कटि के तत्व न जानियै सुनि प्रभु त्रिभुवनराव।
जैसें सुनियत जगत के सत अरु असत सुभाव ॥३२॥

(नराच)—नितंब-बिंब फूल से कटिप्रदेस छीन है।
बिभूति लूटि ली सबै सुलोकलाज लीन है।
अमोल ऊजरे उदार जंघजुग्म जानियै।
मनोज के प्रमोद सों बिनोदजंत्र मानियै ॥३३॥
छवान की छुई न जाति सुभ्र साधु माधुरी।
बिलोकि भूलि भूलि जात चित्त-चालि-आतुरी।
विसुद्ध पाद-पद्म चारु अंगुली नखावली।
अलक्तजुक्त मित्र की सुचित्त-बैठकी भली ॥३४॥

(दोहा)—कठिन भूमि, अति कोंवरे, जावकजुत सुभ पाइ।
जनु मानिक तनत्रान कौं पहिरी तरी बनाइ ॥३५॥

(चौपही)—बरन बरन अँगिया उर धरे। मदन मनोहर के मन हरे।
अंचल अति चंचल रुचि रचैं। लोचन चल जिनके सँग नचैं ॥३६॥

---

[२५] 'हरि···भूषिता' कौमुदी में नहीं है। [२६] काव्या०—काव्य सुपद्धति (कौमुदी); काव्यपद्म सी (प्रताप०)। तिनके—तिनसों (प्रताप०, सर०); इनके (कौमुदी)। [२७] सनी—घनी (दीन०, सर०)। [२८] उर में—उर पै (कौमुदी)। [२९] कौमुदी में ये दो पंक्तियाँ अधिक हैं—कामकेलि कंदुक कमनीय। मनो छिपाए रति निज हीय। [३३] ली—सी (दीन० २)।

(दोहा)—नखसिख भूषित भूषननि, पढ़ि सुबरनमय मंत्र।
जौबनश्री चल जानि जनु, बाँधे रक्षा-जंत्र ॥३७॥

(चित्रपदा)—मोहन सक्तिन ऐसी। मकरध्वजध्वज जैसी।
मंत्र बसीकर साजैं। मोहनमूरि बिराजैं ॥३८॥

(रूपमाला)—भाल में भव राखियो ससि की कला सुभ एक।
तोषता उपजावहीं मृदुहास चंद्र अनेक।
मार इक बिलोकिकै हर जारिकै कियो छार।
नैनकोर चितै करैं पतिचित्त मार अपार ॥३९॥

(चौपही)

कंटक अटकत फटि फटि जात। उड़ि उड़ि बसन जात बस बात।
तऊ न तिनके तन लखि परे। मनिगन अंगअंग प्रति धरे ॥४०॥

(दोहा)—उपमागन उपजाइ हरि बगराए संसार।
तिनको परसपरोपमा, रचि राखीं करतार ॥४१॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां सीता-सखीजनवर्णनन्नामैकत्रिंशः प्रकाशः ॥३१॥

३२

(सुंदरी)—औचक डीठि परे रघुनायक। जानकि के जिय के सुखदायक।
ऐसे चले सबके चल लोचन। पंकज बात मनो मनरोचन ॥१॥

राम सों रामप्रिया कह्यो यों हँसि। बाग दिखावहु लोकन के ससि।
राम बिलोकत बाग अनंतहि। ज्यों अवलोकत काम बसंतहि ॥२॥

बोलत मोर तहाँ सुखसंजुत। ज्यों बिरदावलि भाटन के सुत।
कोमल कोकिल के कुल बोलत। ज्ञानकपाट कुंची जनु खोलत ॥३॥

फूल तजै बहु बृक्षन को गनु। छाँडत आनँद-आँसुन को जनु।
दाड़िम की कलिका मन मोहति। हेमकुपी जनु बंदन सोहति ॥४॥

---

[३८] मक्र०—मीन=धुजाधुज (कौमुदी)। [४१] तिनको—इनको (दीन० २, कौमुदी)। परस०—उपमा परसपर (दीन०)।

[१] औचक—अचानक (काशि०, सर०)। डीठि—दृष्टि (कौमुदी)। मनो—लगे (प्रताप०)। [२] ज्यों०—मानो बिलोकत (दीन० २, कौमुदी)। [कुंची—कुंजी (दीन० २, प्रकाशिका); कुटी (प्रताप०)। [४] जनु बंदन—जुत बंदन (कौमुदी)

(दोहा)—मधुबन फूल्यो देखि सुक बरनत है निरसंक।
सोहत हाटकघटित रितु-जुवतिन के तार्टक ॥५॥

(दोधक)—बेल के फूल लसैं अति फूले। भौंर भवैं तिनके रस भूले।
यों करबीर करी बन राजैं। मन्मथआनन की गति साजैं ॥६॥
केतक-पुंज प्रफुल्लित सोहैं। भौंर उड़ैं तिनमें अति मोहैं।
श्रीरघुनाथ के आवत भागे। जे अपलोक हुते अनुरागे ॥७॥

(दोहा)—स्याम सोन दुति फूल की फूले बहुत पलास।
जरैं कामकौला मनो मधुरितु-ज्ञात-बिलास ॥८॥

(तोटक)—बहु चंपक की कलिका हुलसी। तिनमें अति स्यामल ज्योति लसी।
उपमा सुक सारिक चित्त धरी। जनु हेमकुपी सब सोंध भरी ॥९॥

(चौपही)—अलि उड़ि धरत मंजरीजाल। देखि लाज साजति सब बाल।
अलि अलिनी के देखत भाइ। चुंबत चतुर मालती जाइ ॥१०॥
अद्भुत गति सुंदरी बिलोकि। बिहँसति हैं घूँघट-पट रोकि।
गिरत सदाफल श्रीफल ओज। जनु धर धरत देखि बक्षोज ॥११॥

(तारक)—उदरे उरदाड़िम दीह बिचारे। सुदतीन के सोभन दंत निहारे।
अति मंजुल बंजुलकुंज बिराजैं। बहु गुंजनिकेतन-पुंजनि साजैं ॥१२॥
नर अंध भए दरसे तरु मौरे। तिनके जनु लोचन हैं इकठौरे।
थल सीतल तप्त सुभावनि साजे। ससि सूरज के जनु लोक बिराजे ॥१३॥
जलजंत्र बिराजत भाँति भली है। धर तें जलधार अकास चली है।
जमुनाजल सूक्षम बेष सँवारयो। जनु चाहत है रबिलोक बिहारयो ॥१४॥

(चंचरी)—भाँति भाँति कहौं कहाँ लगि बाटिका बहुधा भली।
ब्रह्मघोष घने तहाँ जनु है गिरा बन की थली।
नीलकंठ नचैं बने जनु जानियै गिरिजा बनी।
सोभिजै बहुधा सुगंध मनो मलैबन की धनी ॥१५॥

---

[५] सुक-सो (दीन० १); कबि (दीन० २)। [७] में-तें (दीन०, प्रताप, सर०)। आनन-मन (प्रताप०, कौमुदी)। जे-जो (प्रताप०); ज्यों (कौमुदी)। [९] में-पै (कौमुदी) ज्योति-सोम (दीन०, प्रताप०)। लसी-बसी (दीन०)। [१०] भाइ-धाइ (कौमुदी); जाइ (दीन० २)। [११] हैं०-घूँघटपट मुह (दीन०, प्रताप०, सर०)। धर०-धँसि देत (दीन०, सर०); धर धँसत (प्रताप०); धर परत (कौमुदी)। [१२] उदरे-बिदरे (कौमुदी)। [१३] सुभावनि-सुगंधनि (प्रताप०, सर०); सुभायन (कौमुदी०)। [१४] भाँति-पाँति (कौमुदी)। जमुना-सरजू (कौमुदी+)। [१५] घोष-दोष (दीन०, सर०)। घने-गने (दीन० १)।

(चौपही) -करुनामय बहु कामनि फली। जनु कमला की बासस्थली।
सोभैं रंभा सोभा सनी। मनो सची की आनँद-बनी ॥१६॥

(कमल)—तरुचंदन उज्वलता तन धरे। लपटी नव नागलता मन हरे।
नृप देखि दिगंबर बंदन करे। चिर चंद्रकलाधर रूपनि भरे ॥१७॥

अति उज्वलता सब कालहुँ बसै। सुक केकि पिकादिक कंठहुँ लसै।
रजनीदिन आनँद-कंदनि रहै। मुखचंदन की जनु चंदनि अहै ॥१८॥

(तोटक)—सब जीवन को बहु सुक्ख जहाँ। बिरहीजन ही कहँ दुक्ख तहाँ।
जहँ आगम पौनहि को सुनिये। नित हानि असौंधहि की गुनिये ॥१९॥

(दोहा)—तप ही को ताड़न जहाँ, तृष चातक के चित्त।
पात फूल फल दलन को, भ्रम भ्रमरनि के मित्त ॥२०॥

(तारक)—तिनमें इक कृत्रिम पर्वत राजै। मृग पक्षिनकी सब सोभहि साजै।
बहु भाँति सुगंध मलैगिरि मानौ। कलधौतस्वरूप सुमेरु बखानौ ॥२१॥

अति सीतल संकर को गिरि जैसो। सुभ सेन लसै उदयाचल ऐसो।
दुतिसागर में मयनाक मनो है। अजलोक मनो अजलोक बने है ॥२२॥

(तोटक)—सरिता तिहि तें सुभ तीन चली। सिगरी सरितान की सोभ दली।
इक चंदन के जल उज्वल है। जग जन्हुसुता सुभसील गहै ॥२३।

(चौपही)—सुरगज को मारग छबि छायो। जनु दिबि तें भूतल पर आयो।
जनु धरनी में लसत बिसाल। त्रुटित जुही की घन बनमाल ॥२४॥

(दोहा)—तज्यो न भावै एक पल, 'केसव' सुखद समीप।
जासों सोहत तिलक सो, दीन्हे जंबू दीप ॥२५॥

(दोधक)—एनन के मद के जल दूजी। है जमुना-दुति कै जनु पूजी।
धार मनो रसराज बिसाल। पंकजजालमयी जनु माल ॥२६॥

---

[१७] करे–कीने (प्रताप०)। चिर–सिर (प्रताप०); जनु (कौमुदी)। रूपनि–रूपहि (वही)। भरे–धरे (दीन० १, सर०); लीने (प्रताप०)। [१८] कालहुँ–कालहु (सर०, कौमुदी); काल (प्रताप०)। केकि०–हू पिक के मुख (प्रताप०, सर०)। कंठहुँ०–मुह ही सुरसै (दीन० १); मुख बिलसै (दीन० २); हौं बिलसै (प्रताप०); ही बिच लसै (सर०); सब्दहु लसै (कौमुदी)। [१९] नित०–अति हानि ससोकहि (दीन० १); नित हानि असोकहि (दीन० २, प्रताप०, सर०)। [२०] तप ही–तापहि (प्रताप०, सर०, कौमुदी)। मित्त–नित्त (दीन०, प्रताप०, सर०)। [२२] अजलोक बनो–जुत हंसघनो (दीन०, प्रताप०, (सर०)। [२३] सुभसील–जनु सीतल है (दीन० २); सुभ लागत है (प्रताप०); सुभ लील गहै (सर०)। [२४] घन–जनु (दीन० १, प्रताप०, सर०); छन (काशि०)। [२६] कै–कों (प्रताप०, कौमुदी)। जाल–नील (दीन० १, कौमुदी)।

(दोहा)—दुखखंडनि तरवारि सी, किधौं शृंखला चारु।
क्रीड़ागिरि मातंग की, यहै कहै संसारु ॥२७॥
क्रीड़ागिरि तें अलिन कीं अवली चली प्रकास।
किधौं प्रतापानलन की पदवी 'केसवदास' ॥२८॥

(दोधक)—और नदी जल कुंकुम सोहै। सुद्ध गिरा मन मानहु मोहै।
कंचन के उपबीतहि साजै। ब्राह्मन सो यह खंड बिराजै ॥२९॥

(स्वागता)—लौंगफूलमय सेवटि लेखी। एलबीज बहु बालुक देखी।
केरिफूल-दल नावन माहीं। श्रीसुगंध तहं है बहुधाहीं ॥३०॥

(दोहा)—खेवत मत्त मलाह अलि, को बरनै वह जोति।
तीनौ सरिता मिलत जहँ, तहाँ त्रिवेनी होति ॥३१॥
सीता श्रीरघुनाथजू देखी श्रमित सरीर।
द्रुम अवलोकन छाँड़िकै गए जलासय-तीर ॥३२॥

(चौपही)—आई कमल-बास सुखदैन। मुख-बासन आगे ह्वै लैन।
देख्यो जाइ जलासय चारु। सीतल सुखद सुगंध अपारु ॥३३॥

(मरहट्टा)

बनश्री कों दर्पनु, चंद्रातप जनु किधौं सरद आवास।
मुनिजनगन-मन सो, बिरहीजन सो, बिस-बलयानि बिलास।
प्रतिबिंबित थिर चर, जीव मनोहर, मनु हरिउदर अनंत।
बंधनजुत सोहै, त्रिभुवन मोहै, मानो बलि जसवंत ॥३४॥

(चौपही)—विषमय पै सब सुख को धाम। संबररूप बढ़ावै काम।
कमलनि मध्य भ्रमर सुख देत। संतहृदय जनु हरिहि समेत ॥३५॥
बीच बीच सोहैं जलजात। तिनतें अलिकुल उड़ि उड़ि जात।
संतहियन तें मानहु भाजि। चंचल चली असुभ की राजि ॥३६॥

(दंडक)

एक दमयंती ऐसी हरै हंसि हंसबंस, एक हंसिनी सी बिसहार हियें रोहिये।
भूषन गिरत एक लेत बूड़ि बूड़ि बीच, मीन गति लीन हीन उपमान टोहिये।

---

[२७] क्रीडा—सोभा (दीन०)। मातंग—गजकाम (प्रताप०); गजगंध (सर०)। [२६] सुद्ध—स्वर्ग (दीन० १); सुभ्र (दीन० २, सर०)। इसके अनंतर दीन०, प्रताप०, सर० में दो चरण अधिक हैं—फूल परागनि के मन मोहै। पावन कूल दुहूँ दिसि सोहै। [३०] मय—दल (कौमुदी)। बीज०—फूल दल बालक (वही); बीज जातीफल (प्रताप०); बीज बहु कालक (सर०)। [३१] मिलत०—मिलत ही (प्रताप०); मिलित जहँ (काशि०); मिलति जहँ (कौमुदी)। [३२] गए—चले (कौमुदी)। [३३] आई—आए (दीन०, प्रताप०, सर०)। [३४] बलि०—बनिज बसंत (प्रताप०); बलित बसंत (सर०)। [३५] संत—चंद (प्रताप)।

एक पतिकंठ लागि लागि बूड़ि बूड़ि जात, जलदेवता सी दिगदेवता बिमोहिये।
'केसोदास' आसपास भँवर भँवत जलकेलि में जलजमुखी जलज सी सोहिये ॥३७॥

(दोहा)—क्रीड़ा-सरबर मे नृपति, कीन्ही बहु बिधि केलि।
निकसे तरुनिसमेत जनु, सूरज किरन सकेलि ॥३८॥

(हाकलिका)—नीरनि तें निकसीं तिय सबै। सोहति हैं बिन भूषन तबै।
चंदन-चित्र कपोलन नहीं। पंकज-केसर सोभत तहीं ॥३९॥

मोतिन की बिथुरी सुभ छटैं। हैं उरझी उरजातन लटैं।
हास-सिंगार-लता मनु बनी। भेंटति कल्पलता हित घनी ॥४०॥

केसनि ओरनि सीकर रमै। रिक्षनि को तमपी जनु बमै।
तज्जल अंबर छोड़त बने। छूटत हैं जल के कन घने।
भोग भले तिनसों मिलि करे। छूटत जानि ते रोवत खरे ॥४१॥

भूषन जे जलमध्यहि रहे। ते बनपाल बधूटिन लहे।
भूषन बस्त्र जवै सजि लए। चारिहु द्वारन दुंदुभि भए ॥४२॥

(दोहा)—गूँगे कुबजे बावरे, बहरे बामन बृद्ध।
बान लिये जन आइगे, खोरे खंज प्रसिद्ध ॥४३॥

(चौपही)—सुखद सुखासन बहु पालकी। फिरक-बाहिनी सुखचाल की।
एकनि जोते हय सोहिये। बृषभ कुरंग अंग मोहिये ॥४४॥

तिन चढ़ि राजलोक सब चल्यो। नगर-निकट सोभाफल फल्यो।
मनिमय कनकजालिका घनी। मोतिन की झालरि अति बनी ॥४५॥

घंटा बाजत चहुँदिसि भले। रामचंद्र तिहि गज चढ़ि चले।
चपला चमकत चारु अगूढ़। मनहु मेघ मघवा आरूढ़ ॥४६॥

आसपास नरदेव अपार। पाइ पियादे राजकुमार।
बंदीजन जस पढ़त अपार। यहि विधि गए राजदरबार ॥४७॥

---

[३७] बूड़ि बीच बीचि बीच (कौमुदी)। पति०—मत कै कै लागि लागि बूड़ि जात (वही)। लागि०—लागि बूड़ि बूड़ि जाति जल (प्रताप०); लागि लागि जल लीन होति (सर०)। दिग—दृग (काशि०); देवि (कौमुदी)। [३९] नीरनि—नीरधि (कौमुदी)। सबै—जबै (वही)। [४०] बनी, घनी—बने, घने (कौमुदी)। हित—नित (दीन०)। [४१] तमपी-तमयी (कौमुदी)। तिन—जिन (प्रताप०, सर०); तन (कौमुदी)। छूटत—बिछुरत (काशि०, सर०); छोड़त (कौमुदी)। [४३] कुबजे—लुंजे (सर०)। जान०—दान लेन (प्रताप०)। खंज—षंढ (सर०)। [४४] बहु—गन (दीन० १, प्रताप०)। [४५] चल्यो, फल्यो—चले, फले (कौमुदी)। निकट०—निगर० (दीन० १, प्रताप०); असोक बृक्ष कहँ (दीन० २)। [४६] चमकत०—चमक बारिगत गूढ़ (दीन० १); चमक चारु अति गूढ़ (दीन० २, प्रताप०, सर०)।

(विजय)—भूषित देह बिभूति दिगंबर नाहिन अंबर अंग नवीने।
दूरिकै सुंदर सुंदरि, 'केसव' दौरि दरीन में आसन कीने।
देखिय मंडित दंडन सों भुजदंड दुवौ असिदंडबिहीने।
राजनि श्रीरघुनाथ के बैर, कुमंडल छाँडि कमंडल लीने ॥४८॥

(दोहा)—कमल-कुलन में जात ज्यों, भँवर भर्‌यो रस चित्त।
राजलोक में त्यों गए, रामचंद्र जगमित्त ॥४६॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां वनविहारवर्णनन्नाम द्वात्रिंश: प्रकाश: ॥३२॥

३३

(त्रिभंगी)—दुर्जन-दल-घायक, श्रीरघुनायक, सुखदायक त्रिभुवनसासन।
सोहैं सिंहासन, प्रभाप्रकासन, कर्मबिनासन, दुखनासन।
सुग्रीव बिभीषन, सुजन, बंधुजन, सहित तपोधन, भूपतिगन।
आए सँग मुनिजन, सकल देवगन, मृगतपकानन चतुरानन ॥१॥

(तोटक)—उठि आदर सों अकुलाइ लयो। अति पूजन कै बहुधा बिनयो।
सुखदायक आसन सोभरए। सब को सो जथाबिधि आन दए ॥२॥

(दोहा)—सबन परसपर बूझियो, कुसल-प्रस्न सुख पाइ।
चतुरानन बोले बचन, स्लाघा बिनय बनाइ ॥३॥

ब्रह्मा—(मनोरमा)

सुनिये चित दै जग के प्रतिपालक। सबके गुरु हौ हरि जद्यपि बालक।
सबकों सब भाँति सदा सुखदायक। गुन गावत बेद मनो बच कायक ॥४॥

तुम लोक रचे बहुधा रुचि कै तब। सुनिये प्रभु ऊजर हैं सिगरे अब।
जग कोउ न भूलिहु जाइ निरैभग। मिटि गे सब पापन पुन्यन के नग ॥५॥

(दोहा)—बरुनपुरी धनपतिपुरी, सुरपतिपुर सुखदानि।
सप्तलोक बैकुंठ सब, बस्यो अवध में आनि ॥६॥

---

[४८] आसन-मंदिर (दीन०, प्रताप०, सर०)। [४६] में त्यों-देखन (प्रताप०)।

[२] को सो-काहि (कौमुदी)। बिधि-मति (दीन० १)। [३] बोले०-बूझत (दीन०)। [५] जग-नर (दीन० १); जनु (प्रताप०, सर०) पापन०-पापहु पुन्य के मारग (दीन०, सर०); पापहु के मुनि मारग (प्रताप०)। [६] दानि-साज (दीन० १)। में आनि-सुखराज (वही)।

(तोमर)—हँसि यों कह्यो रघुनाथ। समझी सबै बिधि गाथ।
मम इच्छ एक सुजान। कबहूँ न होइ सु आन ॥७॥

तब पुत्र जे सनकादि। मम भक्त जानहु आदि।
सुत मानसिक तिन केति। भुवदेव भुव प्रगटे ति ॥८॥

हम दियो तिन सुभ ठाउँ। कछु और दीवे गाउँ।
अब देहिं हम केहि ठौर। तुम कहौ सुर-सिरमौर ॥९॥

ब्रह्मा (मरहट्टा)—सब वै मुनि रूरे, तपबल पूरे, बिदित सनाढ्य सुजाति।
बहुधा बहु बारनि, प्रति अवतारनि, दै आए बहु भाँति।
सुनि प्रभु-आखंडल, मथुरामंडल में दीजै सुभ ग्राम।
बाढ़ै बहु कीरति, लवनासुर हति, अति अजय संग्राम ॥१०॥

(दोधक)—जिनके पूजे तुम भए अंतरजामी श्रीप।
तिनकी बात हमैं कहा पूछत त्रिभुवन-दीप ॥११॥

द्विज आयो ताही समय, मृतक-पुत्र के साथ।
करत बिलाप-कलाप हा रामचंद्र रघुनाथ ॥१२॥

(मल्लिका)—बालकै मृतै सु देखि। धर्मराज सों बिसेखि।
बात यों कही निहारि। कर्म कौन को बिचारि ॥१३॥

धर्मराज—(मनोरमा)

निज सूद्रन की तपसा सिसुघालक। बहुधा भुवदेवन के सब बालक।
करि बेगि बिदा सिगरे सुरनायक। चढ़ि पुष्पक आसु चले रघुनायक ॥१४॥

(दोधक)—राम चले सुनि सूद्र की गीता। पंकजजोनि गए जहँ सीता।
देखि लगी पग राम की रानी। पूछिकै बूझति कोमल बानी ॥१५॥

सीता—कौनहु पूरब पुन्य हमारे। आजु फले जु इहाँ पगु धारे।
ब्रह्मा—देवन को सब कारज कीन्हो। रावन मारि बड़ो जस लीन्हो ॥१६॥

मैं बिनती बहु भाँतिन कीनी। लोकन की करुनारस भीनी।
उत्तर मोहिं दियो सुनि सीता। जाकी न जानि परै जिय गीता ॥१७॥

---

[७] होइ–होत (कौमुदी)। [१०] प्रभु–जग (दीन०)। [१२] रघुनाथ–पुरनाथ (दीन० १)। [१३] मृतै०–गतासु (दीन०, प्रताप०, सर०)। [१४] सब–बहु (दीन०)। आसु–अस्व (दीन० २); आपु (प्रताप० सर०); जान (कौमुदी)। [१६] इहाँ–इतै (कौमुदी)। बड़ो–सबै (दीन० २)। [१७] जिय–सुभ (दीन० १); कछु (दीन० २) जय (प्रताप० सर०)।

माँगत हौं बर मोकहँ दीजै। चित्त में और बिचार न कीजै।
आजु तें चाल चलौ तुम ऐसे। राम चलैं बयकुंठहि जैसे ॥१८॥

सीय जहीं कछु नैन नवाए। ब्रह्म तहीं निज लोक सिधाए।
राम तहीं सिर सूद्र को खंड्यो। ब्राह्मन को सुत जीवन मंड्यो ॥१९॥

(मोदक)—एक समै रघुनाथ महामति। सीतहि देखि सगर्भ बढ़ी रति।
राम—सुंदर माँगि जो जी महँ भावत। मो मन तो निरखे सुख पावत ॥२०॥

सीता—जो तुम होत प्रसन्न महामति। मेरे बढ़ै तुमहीं सो सदारति।
अंतर की सब बात निरंतर। जानत हौ सबकी सबतें पर ॥२१॥

राम (दोहा)—निर्गुन तें मैं सगुन भो, सुनु सुंदरी तब हेत।
और कछू माँगौ सुमुखि, रुचै जु तुम्हरे चेत ॥२२॥

सीता—(मोदक)

जो सबतें हित मोपर कीजत। ईस दया करिकै बरु दीजत।
हैं जितने रिषि देवनदी-तट। हौं तिनकों पहिराइ फिरौं पट ॥२३॥

राम (दोहा)—प्रथम दोहदै क्यों करौं, निष्फल सुनि यह बात।
पट पहिरावन रिषिन कों, जैयो सुंदरि प्रात ॥२४॥

(मोदक)—भोजन कै तब श्रीरघुनंदन। पौढ़ि रहे बहु दुष्टनिकंदन।
बाजे बजे अधरात भई जब। दूतन आइ प्रनाम कर्यो तब ॥२५॥

(चंचला)

दूत भूत-भावना कही न जाइ बैन। कोटिधा बिचारियो परै कछू बिचार मैं न।
सूर के उदोत होत बंधु आइयो सुजान। रामचंद्र देखियो प्रभातचंद्र के समान ॥२६॥

(संयुक्ता)—बहु भाँति बंदनता करी। हँसि बोलियो न दया धरी।
हम तें कछू द्विज दोष है। जेहि तें कियो प्रभु रोष है ॥२७॥

(दोहा)—मनसा बाचा कर्मना, हम सेवक सुनि तात।
कौन दोष नहिं बोलियत ज्यों कहि आए बात ॥२८॥

राम (संयुक्ता)—कहियै कहा न कही परै। कहियै तौ ज्यौ बहुतै डरै।
तब दूत बात सबै कही। बहु भाँति देहदसा दही ॥२९॥

---

[१८] बर—कछु (दीन०, सर०)। [१९] तहीं—जहीं (दीन०, प्रताप०, सर०)। [२०] निरखे—दरसे (दीन० १)। [२१] तुमहीं—सबहीं (दीन० २)। [२४] रिषिन—मुनिन (दीन० २)। [२५] करयो—किये (दीन०, सर०); करी (प्रताप०, कौमुदी)। [२६] होत—सूर (दीन०, सर०)। प्रभात—बिमात (दीन०, प्रताप०, सर०)। [२७] दया०—कृपा करी (दीन०, प्रताप०, सर०)। [२९] रही—गही (दीन० २)।

भरत (दोहा)—सदा सुद्ध अति जानकी, निंदत यों खलजाल।
जैसे श्रुतिहि सुनावहीं, पाखंडी सब काल ॥३०॥
भव अपबादन तें तज्यो, यों चाहत सीताहि।
ज्यों जग के संजोग तें जोगीजन समताहि ॥३१॥

(झूलना)—मन मानिकै अतिसुद्ध सीतहिं आनियो निज धाम।
अवलोकि पावक-अंक ज्यों रबि-अंक पंकजदाम।
केहि भाँति ताहि निकारिहौ अपबाद-बादि बखानि।
सिव ब्रह्म धर्म समेत श्री पितु साखि बोल्यो आनि ॥३२॥
जमनादि के अपबाद क्यों द्विज छोड़िहै कपिलाहि।
बिरहीन को दुख देत, क्यों हर डारि चंद्रकलाहि।
यह है असत्य जू, होहिगो अपबाद सत्य सु नाथ।
प्रभु छाँडि सुद्ध सुधानि पीवहु आपने बिष हाथ ॥३३॥

(दोहा)—प्रिय पावनि प्रियबादिनी पतिब्रता अतिसुद्ध।
जग को गुरु अरु गुर्बिनी छाँडत बेद बिरुद्ध ॥३४॥
वा माता वैसे पिता तुम सो भैया पाइ।
भरथ भए अपबाद के भाजन भूतल आइ ॥३५॥

राम—(हरिलीला)

साँची कही भरथ बात सबै सुजान। सीता सदा परम सुद्ध कृपानिधान।
मेरी कछू अबहिं इच्छ यहै सु हेरि। मोकों हतौ बहुरि बात कहौ जु फेरि ॥३६॥

लक्ष्मण—(दोधक)

दूषत जैन सदा सुभ गंगा। छाँडहुगे बहु तुंग-तरंगा।
मायहि निंदित हैं सब जोगी। क्यों तजिहैं भव भूपति भोगी ॥३७॥
ग्यारसि निंदत हैं मठधारी। भावति है हरिभक्तनि भारी।
निंदत हैं तव नामहिं बामी। का कहियै तुम अंतरजामी ॥३८॥

(दोहा)—तुलसी को मानत प्रिया, गौतम-तिय अति अज्ञ।
सीता कों छाँडन कहौ, कैसे कै सर्बज्ञ ॥३९॥

(शत्रुघ्न)—स्वप्नहू नहिं छाँडिये तिय गुर्बिनी पल दोइ।
छाँडियो तब सुद्ध सीतहि गर्भमोचन होइ।

---

[३१] समताहि–ममताहि (दीन०, सर०)। [३२] अति–तुम (प्रताप०, सर०)। सिव–रिषि (प्रताप०)। [३३] डारि–छाड़ि (दीन० १)। सुधा०–सुधाहि पीवत बिषहि अपने (कौमुदी)। [३५] अपबाद०–अपलोक० (दीन० २ सर०); भवलोक में अपजस भाजन (दीन० १)। [३६] कृपा०–क्रियाविधान (कौमुदी)। [३७] बहु–वह (कौमुदी)। भव–सब (वही)। [३९] कैसे०–काहे कौं (दीन०, सर०); कैसे हो (प्रताप०)।

पुत्र होइ कि पुत्रिका यह बात जानि न जाइ।
लोकलोकन में अलोक न लीजिये रघुराइ ॥४०॥

(दोहा)—रामचंद्र ! जगचंद्र तुम, फल दल फूल समेत।
सीता पावन पद्मिनी, न्यायनहीं दुख देत ॥४१॥
घर घर प्रति सब जग सुखी, राम तुम्हारे राज।
अपनेहि घर तक करत हौ, सोक असोक समाज ॥४२॥

राम—(तोटक)

तुम बालक हौ बहुधा सबमें। प्रतिउत्तर देहु न फेरि हमें।
जु कहैं हम बात सु जाइ करौ। मन मध्य न और बिचार धरौ। ४३॥

(दोहा)—और होइ तौ जानियै, प्रभु सों कहा बसाइ।
यह बिचारिकै सत्रुहा भरथ गए अकुलाइ ॥४४॥

राम (दोधक)—सीतहि लै अब अत्वर जैये। राखि महाबन में पुनि ऐये।
लक्ष्मन जौ फिरि उत्तर देहौ। सासनभंग को पातक पैहौ ॥४५॥
लक्ष्मन लै बन सीतहि धाए। थावर जंगमहू दुख पाए।
गंगहि देखि कह्यो यह सीता। श्रीरघुनायक की जनु गीता ॥४६॥
पार भए जबहीं जन दोऊ। भीम बनी जनु जंतु न कोऊ।
निर्जल निर्जन कानन देख्यो। भूतपिचासन को घर लेख्यो ॥४७॥

सीता (नगस्वरूपिणी)—सुनौं न ज्ञान-कारिका। सुकी पढ़ैं न सारिका।
न होम-धूप देखियै। न गंधबंधु पेखियै ॥४८॥
सुनीं न बेद की गिरा। न बुद्धि होति है थिरा।
रिषीन की कुटी कहाँ। पतिब्रता बसैं जहाँ ॥४९॥
मिलै न कोउवै कहूँ। न आवतै न जातहूँ।
चले हमें कहाँ लियें। डराति हौं महा हियें ॥५०॥

(दोहा)—सुनि सुनि लक्ष्मन भीत अति, सीताजू के बैन।
उत्तर मुख आयो नहीं, जल भरि आयो नैन ॥५१॥

(नराच)

बिलोकि लक्ष्मनै भई बिदेहजा बिदेह सी। गिरी अचेत ह्वै मनो घनै बनै तड़ित्त सी।
करी जु छाँह एक हाथ एक बात बास सों। सिंच्यौ सरीर बीर-नैन-नीरहीं प्रकास सों

[४०] न लीजिये–बिलोकिबो (दीन०); बिलोकियौ (प्रताप०, सर०)। [४४] गए–उठे (दीन० २) अकुलाइ–सुख पाय (दीन० १); दुख पाइ (प्रताप०)। [४५] में पुनि–में फिरि (दीन० १, प्रताप०, कौमुदी); भीतर (दीन० २)। [४६] सीतहि०–सीय सिधाए (दीन०, प्रताप०, सर०)। [५२] इसके अनंतर 'दीन०' में यह दोहा और है—

मृतक जानि लछिमन तबै मरन लगे ततकाल। भइ अकासबानी तबै जाहु जियैगी बाल।

(रूपमाला)—राम की जपसिद्धि सी सिय कों चले बन छाँड़ि।
छाँह एक फनी करी फन दीह मालनि माँडि।
बालमीकि बिलोकियो बन-देवता जनु जानि।
कल्पवृक्ष-लता किधौं दिवि तें गिरी भुव आनि ॥५३॥

सींचि मंत्र-सँजीव-जीवन जी उठी तेहि काल।
पूँछियो मुनि कौन की दुहिता बधू अरु बाल।
सीता– हौं सुता मिथिलेस की दसरथ्थपुत्र-कलत्र।
मुनि—कौन दोष तजी (सीता-) न जानती, कौन आपुन अत्र ॥५४॥

मुनि—पुत्रिके सुनि मोहि जानहि बालमीकि द्विजाति।
सर्बथा मिथिलेस को गुरु सर्बदा सुभ भाँति।
होहिंगे सुत द्वै सुधी पगु धारिये मम ओक।
रामचंद्र छितीस के सुत जानिहैं तिहुँ लोक ॥५५॥

सर्बथा गुनि सुद्ध सीतहि लै गए मुनिराइ।
आपनी तपसानि की सुभ सिद्धि सी सुख पाइ।
पुत्र द्वै भए एक श्री कुस दूसरो लव जानि।
जातकर्मंहि आदिदै सब किये बेद बखानि ॥५६॥

(दोहा)–बेद पढ़ायो प्रथम ही धनुर्बेद सबिसेष।
अस्त्र सस्त्र दीन्हे घने दीन्हे मंत्र असेष ॥५७॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां जानकी-त्यागवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशत् प्रकाश: ॥३३॥

३४

(दोधक)—एक समै हरि धर्म-सभा में। बैठे हुते नरदेव-प्रभा में।
संग सबै रिषिराज बिराजैं। सोदर मंत्रिन मित्रन साजैं ॥१॥

कूकर एक फिरादहि आयो। दुंदुभि धर्म-दुवार बजायो।
बाचतहीं उठि लक्ष्मन धाए। स्वानहि कारन बूझन आए ॥२॥

---

[५३] किधौं–मनो (दीन० १)। [५४] दुहिता०–बिटिया बहू (दीन , प्रताप०, सर०)। [५६] मुनि–रिषि (दीन०, प्रताप०, सर०)। पाइ–दाइ (वही)। [५७] घने–सबै (दीन०, प्रताप०)।

[१] बैठे०–सोहत हे (दीन०, प्रताप०)।

कूकर—काहु के क्रोध बिरोध न देखौं। राम को राज तपोमय लेखौं।
तामहँ मैं दुख दीरघ पायो। रामहिं हौं सो निवेदन आयो ॥३॥

लक्ष्मण—धर्म-सभा महँ रामहिं जानौ। स्वान चलौ निज पीर बखानौ।
श्वान—हौं अब राजसभा नहिं आऊँ। आऊँ तौ 'केसव' सोभ न पाऊँ ॥४।

(दोहा)—देव, अदेव, नृदेव घर, पावन थल समुदाइ।
बिनु बोले आनंदमति, कुत्सित जीव न जाइ ॥५॥

(दोधक)—राजसभा महँ स्वान बोलायो। रामहिं देखत ही सिर नायो।
राम कह्यो जु कछू दुख तेरे। स्वान निसंक कहौ पुर मेरे ॥६॥

श्वान—(तारक)

तुम हौ सरबज्ञ सदा सुखदाई। अरु हौ सबकों समरूप सदाई।
जग सोवत है जगतीपति जागे। अपने-अपने सब मारग लागे ॥७॥
नरदेवन पाप परै परजा को। निसिवासर होइ न रक्षक ताको।
गुन दोषन को जब होइ न दर्सी। तबहीं नृप होइ निरैपदपर्सी ॥८॥

(दोहा)—निज स्वारथ ही सिद्धि द्विज, मोकों करयो प्रहार।
बिन अपराध अगाधमति, ताको कहा बिचार ॥९॥

(तारक)—तब ताकहँ लेन गए जन धाए। तबहीं नगरी महँ ते गहि लाए।
राम—यहि कूकर क्यों बिन दोषहि मार्यो। अपने जिय त्रास कछू न बिचार्यो १०

ब्राह्मण (दोहा)—यह सोवत हो पंथ में हौं भोजन कौं जात।
मैं अकुलाइ अगाधमति याकों कीन्हो घात ॥११॥

राम—(स्वागता)

ब्रह्म ब्रह्मरिषिराज बखानौ। धर्म कर्म बहुधा तुम जानौ।
कौन दंड द्विज कों अब दीजै। चित्त चेति कहिये सोइ कीजै ॥१२।

कश्यप—है अदंड भुवदेव सदाई। जत्र तत्र सुनिये रघुराई।
ईस सीख अब याकहँ दीजै। चूकहीन अरि कोउ न कीजै ॥१३॥

राम (तोमर)—सुनि स्वान कहि तू दंड। हम देहिं याहि अखंड।
कहि बात तू डर डारि। जिय मध्य आपु बिचारि ॥१४॥

---

[४] पीर-दुक्ख (दीन०, प्रताप०)। आऊँ-जाऊँ (कौमुदी)। आऊँ तौ-आपत (दीन०); जायकै (कौमुदी)। [८] होइ न रक्षक-होत··· (दीन०, प्रताप०)। नृप०-नृप होत (वही)। [११] अकुलाइ०-अपडर अकुलाइकै (दीन०, प्रताप०)। कीन्हो०-मारी लात (दीन०)। [१२] तुम-सब (दीन० १, सर०)। बहुधा०-बहु भाँतिन (दीन० २, प्रताप०)। [१४] मध्य-माँझ (दीन०, प्रताप०, सर०)। आपु-देखि (दीन० १)।

श्वान (दोहा)—मेरो भायो करहु जौ, रामचंद्र हित मंडि।
कीजै द्विज यहि मठपती, और दंड सब छंडि ॥१५॥

(निशिपालिका)

पीत पहिराइ पट बाँधि सिर सों पटी। बोरि अँगराग अरु जोरि बहुधा गटी।
पूजि परि पाइँ मठ ताहि तबहीं दयो। मत्त गजराज चढ़ि बिप्र मठ कों गयो ॥१६॥

(दोहा)—भयो रंक तें राज द्विज, करच्यो स्वान-करतार।
भोगन लाग्यो भोगवै, दुंदभि बाजत द्वार ॥१७॥

(सुंदरी)—बूझत लोग सभा महँ स्वानहिं। जानत नाहिन या परमानहिं।
बिप्रहिं त जु दई पदवी यह। है यह निग्रह कैधौं अनुग्रह ॥१८॥

श्वान—(दोधक)

एक कनौज हुतो मठधारी। देव चतुर्भुज को अधिकारी।
मंदिर कोउ बड़ो जब आवै। अंग भली रचनानि बनावै ॥१९॥
जा दिन 'केसव' कोउ न आवै। ता दिन पालक तें न उठावै।
भेटनि लै बहुधा धन कीनो। नित्य करै बहु भोग नवीनो ॥२०॥
एक दिना इक पाहुन आयो। भोजन सो बहु भाँति बनायो।
ताहि परोसन को पितु मेरो। बोलि लयो हितु हो सब केरो ॥२१॥
ताहि तहाँ बहु भाँति परोस्यो। केंहूँ कहूँ नख माहिं रह्यो घ्यो।
ताहि परोसि जहीं घर आयो। रोवत हौं हँसि कंठ लगायो ॥२२॥

(चामर)

मोहिं मातु तप्त दूध भात भोज कौं दियो। बात सों सिराइ तात छीर अंगुली छियो
घ्यो द्रयो भष्यो गयो अनेक नर्कबास भो। हौं भ्रम्यौं अनेक जोनि औध आनि स्वान भो

(दोहा)—वाको थोरो दोष, मैं दीन्हो दंड अगाध।
राम चराचर ईस तुम छमियो यह अपराध ॥२४॥
लोक करच्यो अपवित्र वहि लोक नरक को बास।
छुवै जु कोऊ मठपतिहिं ताको पुन्य-विनास ॥२५॥

रामायणे यथा—ब्रह्मस्वं देवद्रव्यं च स्त्रीणां बालधनं च यत्।
दत्तं हरति यो मोहात्स पचेन्नरके ध्रुवम् ॥

---

[१६] अँगराग—अनुराग (दीन० २, कौमुदी) । अरु—अँग (प्रताप०, सर०)। [१८] महँ-सब (दीन० १, प्रताप०, सर०); प्रति (दीन० २)। [१९] मंदिर—तापहँ (दीन०, प्रताप०, सर०)। [२०] बहु०—भुवभोगप्रबीनो (दीन०, १); बहुभोगप्रबीनै (सर०)। [२३] अनेक०—मरच्यो अनेक नर्क गो (दीन०, प्रताप०, सर०); अनेक नर्कवान भो (कौमुदी)। [२५] छुवै—छियै (कौमुदी)।

स्कंदपुराणे यथा—हरस्य चान्यदेवस्य केशवस्य विशेषतः ।
माठपत्यं च यः कुर्य्यात्सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥

पद्मपुराणे यथा—पत्रं पुष्पं फलं तोयं द्रव्यमन्नं मठस्य च ।
योऽश्नाति स पचेद्घोरान्नरकानेकविंशतिः ॥

देवीपुराणे यथा—अभोज्यं मठिनामन्नं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ।
स्पृष्ट्वा मठपतिं विप्रं सवासा जलमाविशेत् ॥

(दोहा)—औरौ एक कथा कहौं, बिकल भूप की राम ।
वहौ अजोध्या बसत है, बंसकार के धाम ॥२६॥

(वसंततिलका)

राजा हुतो प्रबल दुष्ट अनेक हारी । बारानसी बिमल छेत्रनिवासकारी ।
सो सत्यकेतु यहि नाम प्रसिद्ध सूरो । बिद्याबिनोदरत धर्मबिधान पूरो ॥२७॥
धर्माधिकारपर एक द्विजाति कीन्हो । संकल्पद्रव्य बहुधा तेहि चोरि लीन्हो ।
बंदीबिनोद गनिकादि - बिलास-कर्ता । पावैं दसांस द्विजदान, असेषहर्ता ॥२८॥
राजा बिदेस बहु साजि चमू गयो हो । जूझ्यो तहाँ समर जोधन सौं भयो हो ।
आए कराल किल दूत कलेसकारी । लीन्हे गए नृपति कों जहँ दंडधारी ॥२९॥

(भुजंगप्रयात)

धर्म—कहा भोगवैगो महाराज दू में । कि पापै कि पुन्यै करयो भूरि भू में ।
राजा—सुनौ देव मो कों कछू सुद्धि नाहीं । कहौ आप ही पाप जो मोहि माहीं ॥३०॥
धर्म—कियो तैं द्विजाती जु धर्माधिकारी । सु तौ नित्य संकल्प-बित्तापहारी ।
दियो दुष्ट रंडानि मुंडानि लै लै । महापाप माथे तिहारे सु दै दै ॥३१॥
हुतो तैं सबै देस ही को नियंता । भले की बुरे की करी तैं न चिंता ।
महा सूक्ष्म है धर्म की बात देखौ । जितो दान दीनो तितो पाप लेखौ ॥३२॥

(दोहा)—कालसर्प से समुझियै सबै राज के कर्म ।
ताहू तें अति कठिन है नृपति दान के धर्म ॥३३॥

(भुजंगप्रयात)

भयौ कोटिधा नर्कसंपर्क ताको । हुते दोष संसर्ग के सुद्ध जाको ।
सबै पाप भे क्षीन, भो मुक्तलेखी । रह्यो औध में आनि ह्वै कोलबेषी ॥३४॥

[२६] कार–तिलक (दीन०)। [२७] अनेक०–अनै प्रहारी (कौमुदी)। [२८] कर्ता, हर्ता–कारी, हारी (दीन० १, सर०)। [२९] किल–जम (कौमुदी)। [३०] कि पापै०–अधर्मैं कि धर्मैं (दीन०)। [३१] मुंडानि–बिस्वानि (दीन०)। [३२] दान०–पुन्य कीनो (दीन० १)। [३३] अति०–बिषम गनि (दीन० १, प्रताप०, सर०)।

(तारक)—तब बोलि उठो दरबार-बिलासी। द्विज द्वार लसैं जमुना-तट-बासी।
अति आदर सों ते सभा महँ बोल्यो। बहु पूजन के मग को श्रम खोल्यो

राम (रूपमाला)—सुद्ध देस ये रावरे सीं, भे सबै यहि बार।
ईस आगम संगमादिक ही अनेक प्रकार।
धाम पावन ह्वै गयो पदपद्म को पय पाइ।
जन्म सुद्ध भयो छुए कुल दृष्टि ही मुनिराइ ॥३६॥
पादपद्म प्रनाम ही भए, सुद्ध सीरष हाथ।
सुद्ध लोचन रूप देखत ही भए मुनिनाथ।
नासिका रसना बिसुद्ध, भए सुगंध सुनाम।
कर्न कीजिय सुद्ध सब्द, सुनाइ पीयुष-धाम ॥३७॥

राम (दोधक)—आए कहँ सोइ आयसु दीजै। आज मनोरथ पूरन कीजै।
द्विज—जीवति सों सब राज तिहारौ। निर्भय ह्वै भुवलोक बिहारौ ॥३८॥

(मरहट्ठा)—तुम हौ सब लायक, श्रीरघुनायक, उपमा दीजै काहि।
मुनिमानस-रंता, जगत-नियंता, आदिहु अंत न जाहि।
मारौ लवनासुर, जैसे मधु-मुर, मारे श्रीरघुनाथ।
जग-जयरसभीनो, श्रीसिव दीनो, सूलहि लीन्हें हाथ ॥३९॥

(दोहा)—जापै मेलत सूल वह, सुनिये त्रिभूवनराइ।
ताहि भस्म करि सर्वथा, वाही के कर जाइ ॥४०॥

(दोधक)—देव सबै रन हारि गए जू। और जिते नरदेव भए जू।
श्रीभृगुनंदन जुद्ध न मंड्यो। श्रीसिव को गनि सेवक छंड्यो ॥४१॥

(दोहा)—पादारघ हमकों दियो मथुरामंडल आप।
वासों बसन न पावहीं बिना बसे अति पाप ॥४२॥

राम (दोहा)—रक्षहिगे सत्रुघ्नसुत, रिषि तुमकों सब काल।
बासुदेव ह्वै रक्षिहौं, हँसि कह दीनदयाल ॥४३॥

(भुजंगप्रयात)

चलौ बेगि सत्रुघ्न ताको सँहारौ। वहै देस तौ भावतो है हमारो।
सदा सुद्ध बृंदाबनी भू भली है। तहाँ नित्य मेरी बिहारस्थली है ॥४४॥

यहै जानि भू मैं द्विजन्मानि दीनी। बसै जत्र बृंदाप्रिया प्रेम-भीनी।
सनाढ्यानि की भक्ति जौ जीय जागै। महादेव को सूल ताकें न लागै ॥४५॥

बिना ह्वै चले राम पै सत्रुहंता। चलै साथ हाथी रथी जुद्धरंता।
चतुर्धा चमू चारिहू ओर गाजैं। वजै दुंदुभी दीह दिग्दंति लाजैं ॥४६॥

---

[३५] लसैं-खड़े (दीन० १); बसै (प्रताप०)। [३६] ये-ति (प्रताप०)।
[३८] भुव-सुर (दीन० १)। [४१] श्रीसिव-संकर (दीन०, प्रताप०, सर०)।

(दोहा)—'केसव' बासर बारहें, रघुपति के सब बीर।
लवनासुर के जमहि जनु, मेले जमुना-तीर ॥४७॥

(मनोरमा)—लवनासुर आइ गयो जमुनातट। अवलोकि हँस्यो रघुनंदन के भट।
धनु-बान लिये निकसे रघुनंदन। मंद के गज कों सुत केहरि को जनु ॥

लवणासुर—(भुजंगप्रयात)

सुन्यो तैं नहीं जौ यहाँ भूलि आयो। बड़ो भाग मेरो बड़ो भक्ष पायो।
शत्रुघ्न—महाराज श्रीराम हैं क्रुद्ध तोसों। तजौ देस कों कै सजौ जुद्ध मोसों ॥४९॥

लवणासुर—वहे राम राजा दसग्रीवहंता। सु तौ बंधु मेरो सुरस्त्रीनरंता।
हतौं तोहि वाकों करौं चित्तभायो। महादेवकी सौं बड़ो भक्ष पायो ॥५०॥

भए क्रुद्ध दोऊ दुद्धौ जुद्धरंता। दुवौ अस्त्रसस्त्रप्रयोगी निहंता।
बली बिक्रमी धीर सोभाप्रकासी। नस्यो हर्ष दोऊ सबर्षै बिनासी ॥५१॥

शत्रुघ्न (दोहा)—लवनासुर सिवसूल बिनु और न लागै मोहिं।
सूल लिये बिन भूलिहूँ हौं न मारिहौं तोहिं ॥५२॥

(मोटनक)—लीन्हो लवनासुर सूल जहीं। मारचो रघुनंदन बान तहीं।
काट्यो सिर सूलसमेत गयो। सूलीकर सुख्ख त्रिलोक भयो ॥५३॥

बाजे दिवि दुंदुभि दीह तबै। आए सुर इंद्रसमेत सबै।
देव—कीन्हो बहु बिक्रम या रन में। माँगौ वरदान रुचै मन में ॥५४॥

शत्रुघ्न (प्रमाणिका)—सनाढ्यबृत्ति जो हरै। सदा समूल सो जरै।
अकालमृत्यु सो मरै। अनेक नर्क सो परै ॥५५॥

सनाढ्य-जाति सर्बदा। जथा पुनीत नर्मदा।
भजैं सजैं ते संपदा। बिरुद्ध ते असंपदा ॥५६॥

(दोहा)—मथुरा-मंडल मधुपुरी 'केसव' सुबस बसाइ।
देखे तब सत्रुघ्नजू रामचंद्र के पाइ ॥५७॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां लवणासुर-बधवर्णनन्नाम चतुस्त्रिंशत् प्रकाशः ॥३४॥

———

[४७] सब–बर (दीन० २)। [५१] दोऊ०·दोऊ न वर्षैं (दीन० २, सर०); द्वौ ईषु वर्षैं (कौमुदी)। [५७] तब०—तबहीं सत्रुहन (दीन० १); यह कहि सत्रुहन (प्रताप०); तब सत्रुघ्नश्री (सर०)।

३५

(दोहा)—बिस्वामित्र बसिष्ठ स्यौं एक समय रघुनाथ।
आरंभी 'केसव' करन अस्वमेध की गाथ ॥१॥

राम (चामर)—मैथिली-समेत तौ अनेक दान मैं दियो।
राजसूय आदि दै अनेक जज्ञ मैं कियो।
सीय-त्याग पाप तें हियें सु हौं महा डरौं।
और एक अस्वमेध जानकी बिना करौं ॥२॥

कश्यव (दोहा)—धर्म कर्म कछु कीजई, सफल तरुनि के साथ।
ता बिन जो कछु कीजई, निष्फल सोई नाथ ॥३॥

(तोटक)—करियै जुतभूषन रूपरई। मिथिलेससुता इक स्वर्नमई।
रिषिराज सबै रिषि बोलि लिये। सुचि सों सब जज्ञबिधान किये ॥४॥
हयसालन तें हय छोरि लियो। ससिबर्न सा 'केसव' सोभरयो।
स्रुति स्यामल एक बिराजत है। अलि स्यौं सरसीरुह लाजत है ॥५॥

(रूपमाला)

पूजि रोचन स्वच्छ अक्षत पट्ट बाँधिय भाल। भूषि भूषन सत्रु दूषन छाड़ियो तेहि काल
संग लै चतुरंग सैनहि सत्रुहंता साथ। भाँति भाँतिन मान दे पठए सु श्रीरघुनाथ ॥६॥
जात है जित बाजि 'केसव' जात हैं तित लोग। बोलि बिप्रन दान दीजत जत्रतत्र सभोग
बेनु बीन मृदंग बाजत दुंदुभी बहुभव। भाति भाँतिन हात मंगल देव से नरदेव ॥७॥

(कमल)—राघव की चतुरंग चमूचय को गनै 'केसव' राजसमाजनि।
सूर-तुरंगन क उरझें पग तुंग पताकनि की पटसाजनि।
टूटि परें तिनतें मुकता धरनी उपमा बरनी कबिराजनि।
बिंदु किधौं मुखफेनन के किधौं राजसिरी स्रवै मंगललाजनि ॥८॥

(विजय)—राघव की चतुरंग चमू चपि धूरि उठी जलहू थल छाई।
मानौ प्रतापहुतासन-धूम सो 'कसवदास' अकास न माई।
मेटिकै पंच प्रभूत किधौं बिधि रेनुमयी नव रीति चलाई।
दुख्ख-निवेदन कौं भुवभार को भूमि किधौं सुरलोक सिधाई ॥९॥

(दडक)—नाद पूरि धूरि पूरि तूरि बन चूरि गिरि,
सोखि सोखि जल भूरि भूरि थल गाथ की।

---

[१] आरंभी—आरंभ्यो (कौमुदी)। करन—कहन (दीन०, प्रताप०, सर०)। [३] तरुनि—त्रिया (दीन० १)। सोई०—सो रघुनाथ (दीन० २)। [४] सुचि०—बिधि सों सब जज्ञप्रयोग किये (दीन० १)। [५] केसव०—केसर केस—रयौ (दीन०, प्रताप०, सर०)। [६] सु०—सुश्री (दीन० १); तिनै (दीन० २)। [८] बिंदु०—सिंधु मनो अहिफेन सजै (दीन० २)।

'केसोदास' आसपास ठौर ठौर राखि जन,
तिनकी संपत्ति सब आपने ही हाथ की।
उन्नत नवाइ नत उन्नत बनाइ भूप,
सत्रु न की जीविका ति मित्रन के साथ की।
मुद्रित समुद्र सात मुद्रा निज मुद्रित कै,
आई दिसि दिसि जीति सेना रघुनाथ की ॥१०॥

(दोहा)—दिसि बिदिसिन अवगाहिकै, सुख ही 'केसवदास'।
बालमीकि के आश्रमहिं, गयो तुरंग प्रकास ॥११॥

(दोधक)—दूरिहि तें मुनिबालक धाए। पूजित बाजि बिलोकन आए।
भाल को पट्ट जहीं लव बाँच्यो। बाँधि तुरंगम जैरस राच्यो ॥१२॥

(श्लोक)—एकवीरा च कौसल्या तस्याः पुत्रो रघूद्वहः।
तेन रामेण मुक्तोऽसौ वाजी गृह्णात्विमं बली ॥१३॥

(दोधक)—घोर चमू चहूँ ओर तें गाजी। कौनेहि रे यह बाँधियो बाजी।
बोलि उठे लव मैं यहि बाँध्यो। यों कहिकै धनुसायक साँध्यो ॥१४॥
मारि भगाइ दए सिगरे यों। मन्मथ के सर ज्ञान घने ज्यों।

(धीर)—जोधा भगे बीर सत्रुघ्न आए। कोदंड लीन्हें महा रोष छाए।
ठाढ़ो तहाँ एक बालै बिलोक्यो। रोक्यो तहीं जोर नाराच मोक्यो ॥१५॥

शत्रुघ्न—(सुंदरी)

बालक छाँडि दै छाँड़ि तुरंगम। तोसों कहा करौं संगर संगम।
ऊपर बीर हिये करुना रस। बीरहि बिप्र हते न कहूँ जस ॥१६॥

लव—(तारक)

कछु बात बड़ी न कहौ मुख थोरें। लव सों न जुरौ लवनासुर मोरें।
द्विज-दोषन ही बल ताकौ सँघारचो। मरही जु रह्यो सु कहा तुम मारचो ॥१७॥

(चामर)—रामबंधु बान तीनि छोंडियो त्रिसूल से।
भाल में बिसाल ताहि लागियो ते फूल से।

---

[१०] साथ–हाथ (दीन०, काशि०, प्रकाशिका)। [१२] तुरंगम०–तुरंग तबै रन (दीन० १); तुरंग बिजैरस (दीन० २)। [१४] घोर–दौरि (दीन० २)। ओर–देस (दीन० १)। म०–हौं हय (दीन०, प्रताप०, सर०)। [१५] जोर–ज्यौं न (दीन०); जौन (प्रताप०, सर०)। प्रताप० में और सर० में भी क्वचित् यह भुजंगप्रयात कर दिया गया हैं, आरंभ में एक लघु बढ़ाकर—जोधा–सुजोधा। कोदंड–जु कोदंड। ठाढ़ो०–खड़ो है तहीं। रोक्यो०–रुक्यो सो तहीं। [१६] बीरहि–बीरन (दीन०, सर०)। [१७] जुरौ–भिरौ (दीन० २, प्रताप०)।

लव—घात कीन्ह राज तात गात तैं कि पूजियो।
कौन सत्रु तैं हत्यो जु नाम सत्रुहा लियो॥१८॥

(निशिपालिका)

रोष करि बान बहु भाँति लव छंडियो। एक ध्वज, सूत जुग तीन रथ खंडियो।
सस्त्र दसरथ्थसुत अस्त्र कर जो धरै। ताहि सियपुत्र तिल तूलसम खंडरै॥१९॥

(तारक)

रिपुहा तब बान वहै कर लीन्हो। लवनासुर कों रघुनंदन दीन्हो।
लव के उर में उरभयो वह पत्री। मुरझाइ गिरयो धरनी महँ छत्री॥२०॥

(मोटनक)

मोहे लव भूमि परे जबहीं। जै-दुंदुभि बाजि उठे तबहीं।
भू तें रथ-ऊपर आनि धरे। सत्रुघ्न सु यों करुनाहि भरे॥२१॥
घोरो तबहीं तिन छोरि लयो। सत्रुघ्नहि आनँद चित्त भयो।
लैकै लव कों ते चले जबहीं। सीता पहँ बाल गए तबहीं॥२२॥

बालक (झूलना)—सुनि मैथिली नृप एक को लव बाँधियो बर बाजि।
चतुरंग सेन भगाइकै सब जीतियो वह आजि।
उर लागि गो सर एक को भुव में गिरो मुरझाइ।
तब बाजि लै लव लै चल्यो नृप दुंदुभीन बजाइ॥२३॥

(दोहा)—सीता गीता पुत्र की सुनिकै भई अचेत।
मनौ चित्र की पुत्रिका मन क्रम बचन समेत॥२४॥

(झूलना)—रिपुहाथ श्रीरघुनाथ को सुत क्यों परै करतार।
पतिदेवता सब काल तौ लव जी उठै यहि बार।
रिषि हैं नहीं कुस है नहीं लव लेइ कौन छँडाइ।
बन माँझ टेर सुनी जहीं कुस आइयो अकुलाइ॥२५॥

कुश (दोहा)—रिपुहि मारि संघारि दल जम तें लेहुँ छँडाइ।
लवहि मिलें हौं देखिहौं माता तेरे पाइ॥२६॥

(विजय)—गाहियो सिंधु सरोवर सो जेहि बालि बली बर सो बर पेरयो।
ढाहि दिये सिर रावन के गिरि से गुरु जात न जा तन हेरयो।

---

[१८] तात—पुत्र (दीन०); भ्रात (प्रताप०)। [१९] तूल०—तूल खंडन करै (दीन०, प्रताप०, सर०)। [२०] रघु०—रघुनायक (दीन०, प्रताप०, सर०)। गिरयो०—परयो रन में वह (दीन० २); गिरयो धर में तब (प्रताप०), गिरयो महि में वह (सर०)। [२३] लागि०—लागियो (दीन०)। भुव में—धरनी (दीन० १)। [२५] तौ०—जौ लव जीतियो (दीन० २); जौ लव जोवितै (प्रकाशिका)। टेर—बात (दीन०)। [२६] मिलें—मिलैहौं (कौमुदी); लिये हौं (प्रताप०, सर०)।

साल समूल उखारि लिये लवनासुर पीछे तें आइ सो टेर्‌यो।
राघव को दल मत्त करीसुर अंकुस दै कुस 'केसव' फेर्‌यो ॥२७॥

(दोहा)—कुस की टेर सुनी जहीं, फूलि फिरे सत्रुघ्न।
दीप बिलोकि पतंग ज्यों, जदपि भयो बहु विघ्न ॥२८॥

(मनोरमा)

रघुनंदन को अवलोकत ही कुस। उर माँझ हयो सर सुद्ध निरंकुस।
ते गिरे रथ ऊपर लागत ही सर। गिरि-ऊपर ज्यों गजराज-कलेबर ॥२९॥

(सुंदरी)—जूझि गिरे जबहीं अरिहा रन। भाजि गए तबहीं भट के गन।
काढ़ि लियो जबहीं लव को सर। कंठ लग्यो तब हीं उठि सोदर ॥३०॥

(दोहा)—मिले जु कुस लव कुसल सों, बाजि बाँधि तरुमूल।
रनमहि ठाढ़े सोभिजैं, पसुपति गनपति तूल ॥३१॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणि श्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां शत्रुघ्नसंमोहो नाम पंचत्रिंशः प्रकाशः ॥३५॥

३६

(रूपमाला)—जज्ञमंडल में हुते रघुनाथजू तेहि काल।
चर्म अंग कुरंग को सुभ स्वर्न की सँग बाल।
आसपास रिषीस सोभित सूर सोदर साथ।
आइ भग्गुल लोग बरनी जुद्ध की सब गाथ ॥१॥

भग्गुल—(स्वागता)

बालमीकि-थल बाजि गयो जू। विप्र-बालकन घेरि लयो जू।
एक बाँधि पट घोटक बाँध्यो। दीरि दीह धनुसायक साँध्यो ॥२॥
भाँति भाँति सब सैन संघार्‌यो। आपु हाथ जनु ईस सँवार्‌यो।
अस्त्र सस्त्र तव बंधु जु धारै। खंडखंड करि ताकहँ डारै ॥३॥
रोष बेष वह तान लयो जू। इंद्रजीत लगि आपु दयो जू।
कालरूप उर माहि हयो जू। बीर मूर्छि तब भूमि भयो जू ॥४॥

---

[२७] आइ–जाय (दीन०, प्रताप०, सर०)। करीसुर–करी तेहि (दीन० २)। [२८] भयो–होइ (दीन० २); है (दीन० १)। [२९] हयो–हन्यो (दीन० २)। सुद्ध–क्रुद्ध (दीन० १); जुद्ध (कौमुदी); ते–सु (दीन०, प्रताप०, सर०)।

[३] सँवार्‌यो–सुधार्‌यो (दीन०, प्रताप०, सर०)। [४] इंद्रजीत–मेघनाद (दीन० १)।

(तोमर)—वह्नि बीर लै अरु बाजि। जबहीं चले दल साजि।
तब और बालक आनि। मग रोकियो तजि कानि॥५॥
तेहि मारियो तुव बंधु। तब ह्वै गए सब अंधु।
वह बाजि बल लै अरु बीर। रन रह्यो रूपि धीर॥६॥

(दोहा)—बुधि बल विक्रम रूप गुन सील तुम्हारे राम।
काकपक्षधर बाल द्वै जीते सब संग्राम॥७॥

राम (चतुष्पदी)—गुनगनप्रतिपालक रिपुकुलघालक बालक ते रनरंता।
दसरथ नृप को सुत मेरो सोदर लवनासुर को हंता।
कोऊ द्वै मुनिसुत काकपक्षजुत सुनियत हैं तिन मारे।
यहि जगतजाल के करम काल के कुटिल भयानक भारे॥८॥

(मरहट्टा)—लक्ष्मन सुभलक्षन, बुद्धिबिचक्षन, लेहु बाजि को सोधु।
मुनिसिसु जनि मारेहु, बंधु उधारेहु, क्रोध न करेहु प्रबोध।
बहु सहितदक्षिना, दे प्रदक्षिना, चल्यो परम रनधीर।
देख्यो मुनिबालक, सोदर, उपज्यो करुना अद्भुत बीर॥९॥

कुश (दोधक)—लक्ष्मन को दल दीरघ देख्यो। कालहु तें अति भीम बिसेख्यो।
दो में कहौ सो कहा लव कीजै। आयुध लैहौ कि घोटक दीजै॥१०॥

लव—बूझत हौ तौ यहै मत कीजै। मो असु दै बरु अस्व न दीजै।
लक्ष्मन को दल सिंधु निहारो। ताकहँ बान अगस्त तिहारो॥११॥
कौन यहै घटिहै अरि घेरे। नाहिन हाथ सरासन मेरे।
नेकु जहीं दुचितो चित कीन्हो। सूर बड़ो इषुधी धनु दीन्हो॥१२॥
लै धनुबान बलौ तब धायो। पल्लव ज्यों दल मारि उड़ायो।
यों दोउ सोदर सैन सँघारैं। ज्यों बन पावक पौन बिहारैं॥१३॥
भागत हैं भट यों लव आगे। राम के नाम तें ज्यों अघ भागे।
जूथपजूथ यों मारि भगायो। बात बड़े जनु मेघ उड़ायो॥१४॥

---

[५] दल—रथ साजि (दीन० १); हय बाजि (दीन० २); दलि आजि (प्रताप०, सर०)। मग०—दल रोकियो सजि बानि (दीन० २); तेहि फेरियो रथ जानि दीन० १); दल……(प्रताप०, सर०)। [६] तब०—दल ह्वै गयो (कौमुदी)। [८] कुटिल—परम (दीन० २)। बुद्धि०—रघुकुलरक्षन (दीन०, प्रताप०, सर०)। देख्यो०—लीने भट को गन चतुर महारन पहुँचे लक्षन बीर (दीन० २)। [१०] अति०—अतिभीतक लेख्यो (दीन० २, प्रताप०); अरिभूषन लेख्यो (दीन० १); अति भीषन लेख्यो (सर०)। आयुध०—ओट गहौ किधौं (दीन० २, सर०); ओट गहौ कि तौ (प्रताप०)। [१२] कौन—एक (कौमुदी)। सूर०—सूरज एक बड़ो (दीन० १); सूर बड़ो इषु दै (दीन० २)। बड़ो०—तहीं (वही)। [१३] उड़ायो—भगायो (दीन०)। [१४] बड़े—बढ़े (दीन०); बड़ी (कौमुदी)।

(दुर्मिला)—अति रोषरसे कुस 'केसव' श्रीरघुनायक सों रनरीति रचैं।
तेहि बार न बार भई बहु बारन खग्ग हने न गिनैं बिरचैं।
तहँ कुंभ फटैं गजमोति कटैं ते चले बहि स्रोनित रोचि रचैं।
परिपूरन पूर पनारन तें जनु पीक कपूरन की किरचैं ॥१५॥

(नराच)

भगे चपे चमूचमूप छाँडि छाँडि लक्ष्मनै। भगे रथी महारथी गयंद-बृंद को गनै।
लवै कुसै निरंकुसै बिलोकि बंधु राम को। उठ्यो रिसाइकै बली बँध्यो जु लाजदाम को

कुश—(मौक्तिकदाम)

न हौं मकराक्ष न हौं इंद्रजीत। बिलोकि तुम्हैं रन होहुँ न भीत।
सदा तुम लक्ष्मन उत्तमगाथ। करौ जनि आपनि मातु अनाथ ॥१६॥

लक्ष्मण—कहौ कुस जो कहि आवति बात। बिलोकत हौं उपबीतहि गात।
इते पर बालबहिक्रम जानि। हियें करुना उपजै अति आनि ॥१८॥

बिलोचन लोचत हैं लखि तोहि। तजौ हठ आनि भजौ किन मोहि।
क्षम्यो अपराध अजौं घर जाहु। हियें उपजाउ न मातहि दाहु ॥१९॥

(दोधक)—हौं हतिहौं कबहूँ नहिं तोहीं। तू बरु बानन बेधहि मोहीं।
बालक बिप्र कहा हनियै जू। लोक अलोकन में गनियै जू ॥२०॥

कुश (हारिणी)—लक्ष्मन हाथ हथ्यार धरौ। जज्ञ बृथा प्रभु को न करौ।
हौं हय कों कबहूँ न तजौं। पट्ट लिख्यो सोइ बाँचि लजौं ॥२१॥

(स्वागता)—बान एक तब लक्ष्मन छंड्यो। चर्म बर्म बहुधा तेहि खंड्यो।
ताहि हीन कुस चित्तहि मोहे। धूमभिन्न जनु पावक सोहे।
रोषवेस कुस बान चलायो। पौनचक्र जिमि चित्त भ्रमायो।
मोह मोहि रथ-ऊपर सोए। ताहि देखि जड़-जंगम रोए ॥२३॥

(नराच)—बिराम राम जानिकै भरथ्थ सों कथा कहैं।
बिचारि चित्त माँहि बीर बीर वै कहाँ रहैं।
सरोष देखि लक्ष्मनै त्रिलोक तौ बिलुप्त ह्वै।
अदेव देवता त्रसैं कहा ते बाल दीन द्वै ॥२४॥

राम (रूपमाला)—जाहु सत्वर दूत लक्ष्मन हैं जहाँ यहि बार।
जाइकै यह बात बनँहु रक्षियो मुनि-बार।

---

[१५] गिनैं०—खनै खिरचै (दीन० २)। [१६] चपे—चये (**कौमुदी**)। बली—हठी (दीन०, सर०)। [१८] बिलोकत०—बिलोकि कहौं (दीन० १)। [२१] बाँचि—देखि (दीन० १)। [२३] जिमि—जनु (दीन०)। [२४] वै—द्वै (दीन०) दीन०—दीस द्वै (दीन०)।

हैं समर्थ सनाथ वै असमर्थ और अनाथ।
देखिबे कहँ लाइयो मुनि-बाल उत्तमगाथ ॥२५॥

(सुंदरी)—भग्गुल आइ गए तबहीं बहु। बार पुकारत आरत रक्षहु।
वै बहु भाँतिन सैन सँघारत। लक्ष्मन तौ तिनको नहिं मारत ॥२६॥

बालक जानि तजे करुना करि। वै अति ढीठ भए दल संघरि।
कैंहुँ न भाजत गाजत हैं रन। बीर अनाथ भए बिन लक्ष्मन ॥२७॥

जानहुँ जैं उनको मुनिबालक। वै कोउ हैं जगतीप्रतिपालक।
हैं कोउ रावन के कि सहायक। कै लवनासुर के हित लायक ॥२८॥

भरत—बालक रावन के न सहायक। ना लवनासुर के हित लायक।
हैं निज पातकबृक्षन के फल। मोहत हैं रघुबंसिन के बल ॥२९॥

जीतहि को रन माँझ रिपुघ्नहि। को कर लक्ष्मन के बल विघ्नहि।
लक्ष्मन सीय तजी जब तें बन। लोक अलोकन पूरि रहे तन ॥३०॥

छोड़िइ चाहत ते तब तें तन। पाइ निमित्त करयो मन पावन।
भाइ तज्यो तन सोदर लाजनि। पूत भए तजि पापसमाजनि ॥३१॥

(दोधक)—पातक कौन तजी तुम सीता। पावन होत सुने जग गीता।
दोषबिहीनहिं दोष लगावै। सो प्रभु ये फल काहे न पावै ॥३२॥

हौं तेहि तीरथ जाइ मरौंगो। संगतिदोष असेष हरौंगो।
बानर रक्षस रिक्ष तिहारे। गर्ब बढ़े रघुबंसहिं भारे।
ता लगि कै यह बात बिचारी। हौ प्रभु संतत गर्बप्रहारी ॥३३॥

(चंचरी)—क्रोध कै अति भर्थ अंगद संग संगर कों चले।
जामवंत चले बिभीषन और बीर भले भले।
को गनै चतुरंग सेनहिं रोदसी नृपता भरी।
जाइकै अवलोकियो रन में गिरे गिरि से करी ॥३४॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां भरतसमागमो नाम षट्त्रिंशः प्रकाशः ॥३६॥

---

[२५] बाल–पुत्र (दीन० १, सर०)। [२६] बार–बीर (तीन०)। [२८] हित०–सुत लायक (दीन० १); सुखदायक (दीन० २, सर०)। [२९] हैं–त्रै (दीन० २, सर०)। [३३] बढ़े–चढ़े (कौमुदी, प्रकाशिका)।

३७

(रूपमाला)—जामवंत बिलोकियो रन भौम-भू हनुमंत।
स्रोन की सरिता बही सु अनंत रूप दुरंत।
जत्र तत्र धुजा पताका दीह देहनि भूप।
टूटि टूटि परे मनौ बहु बात वृक्ष अनूप ॥१॥

पुंज कुंजर सुभ्र स्यंदन सोभिजैं सुठि सूर।
ठेलि ठेलि चले गिरीसनि पेलि सोनितपूर।
ग्राह तुंग तुरंग कच्छप चारु चर्म बिसाल।
चक्र से रथचक्र पैरत बृक्ष गृद्ध मराल ॥२॥

केकरे कर बाहु मीन, गयंद सुंड भुजंग।
चीर चौंर सुदेस केस सिवाल जानि सुरंग।
बालुका बहु भाँति हैं मनिमालजाल प्रकास।
पैरि पार भए ते द्वै मुनिबाल 'केसवदास' ॥३॥

(दोहा)—नाम बरन लघु बेष लघु, कहत रीझि हनुमंत।
इतो बड़ो बिक्रम कियो, जीते जुद्ध अनंत ॥४॥

भरत—(तारक)

हनुमंत दुरंत नदी अब नाखौ। रघुनाथ-सहोदर जी अभिलाषौ।
तब जो तुम सिंधुहि नाँघि गए जू। अब नाँघहु काहे न, भीत भए जू ॥५॥

हनुमान (दोहा)- सीतापद सनमुख हुते, गयौं सिंधु के पार।
बिमुख भए क्यों जाहुँ तरि, सुनौ भरथ यहि बार ॥६॥

(तारक)—धनुबान लिये मुनिवालक आए। जनु मन्मथ के जुग रूप सोहाए।
करिबे कहँ सूरन के मद हीने। रघुनायक मानहु द्वै बपु कीने ॥७॥

भरत—मुनिबालक हौ तुम जज्ञ करावौ। सु किधौं बर बाजिहि बाँधन धावौ।
अपराध छमौ अब आसिष दीजै। वर बाजि तजौ जिय रोष न कीजै ॥८॥

(दोहा)—बाँध्यो पट्ट जो सीस यह, क्षत्रिन काज प्रकास।
रोष कर्‌यो बिन काज तुम, हम बिप्रन के दास ॥९॥

कुश—(दोधक)

बालक वृद्ध कहौ तुम काकों। देहनि कों किधौं जीव-प्रभा कों।
है जड़ देह कहै सब कोई। जीव सो बालक बृद्ध न होई ॥१०॥

---

[१] बहु०—सुम बृक्षजाल (दीन०, सर०)। [२] सुठि—बहु (दीन० १); जनु (दीन० २); सुरू (सर०)। गिरीसनि-ति भूड़नि (दीन० १)। [८] बर-नृप (दीन० १); मख (कौमुदी)। [१०] वृद्ध-सब्द (दीन०)।

जीव जरै न मरै नहिं छीजै। ताकहँ सोक कहा अब कीजै।
जीवहि बिप्र न क्षत्रिय जानौ। केवल ब्रह्म हिये महँ आनौ ॥११॥

जौ तुम देव हमैं कछु सिक्षा। तौ हम देहिं तुम्हैं हय-भिक्षा।
चित्त बिचार परै सोइ कीजै। दोष कछू न हमें अब दीजै ॥१२॥

(स्वागता)—बिप्र-बालकन की सुनि बानी। क्रुद्ध सूरसुत भे अभिमानी।
सुग्रीव—बिप्रपुत्र तुम सीस सँभारो। राखि लेहि अब ताहि पुकारो ॥१३॥

लव—(गौरी)

सुग्रीव कहा तुमसों रन माँडौं। तोकों अतिकायर जानिकै छाँडौं।
बाली तुमहीं बहु नाच नचायो। मोसों अब ह्याँ रनमंडन आयो ॥१४॥

(तारक)—फलहीन सो ताकहँ बान चलायो। अति बात भ्रम्यो बहुधा मुरझायो।
तब दौरिकै बान बिभीषन लीन्हो। लव ताहि बिलोकतहीं हँसि दीन्हो ॥१५

(सुंदरी)—आउ बिभीषन तूँ रनदूषन। एक तुँही कुल को निज भूषन।
जूझ जुरैं जो भगे भय जी के। सत्रुहि आनि मिले तुम नीके ॥१६॥

(दोधक)—देवबधू जबहीं हरि ल्यायो। क्यों तबहीं तजि ताहि न आयो।
यों अपने जिय के डर आयो। क्षुद्र सबै कुल-छिद्र बतायो ॥१७॥

(दोहा)—जेठो भैया अन्नदा राजा पिता समान।
ताकी पत्नी तुँ करी पत्नी मातु समान ॥१८॥

को जानै कै बार तूँ कही न ह्वैहै माइ।
सोई तैं पत्नी करी सुनि पापिन के राइ ॥१९॥

(तोटक)—सिगरे जग माँझ हँसावत हैं। रघुबंसिन पाप नसावत हैं।
धिक तोकहँ तूँ अजहूँ जु जियै। खल जाइ हलाहल क्यों न पियै ॥२०॥

कछु है अब तोकहँ लाज हियें। कहि कौन बिचार हथ्यार लियें।
अब जाइ करीष की आगि जरौ। अरु बाँधिकै सागर बूड़ि मरौ ॥२१॥

(दोहा)—कहा कहौं हौं भरथ कों, जानत है सब कोइ।
तो सो पापी संग है, क्यों न पराजय होइ ॥२२॥

---

[११] केवल—पूरन (दीन० १)। [१४] तुमही०—सबको कहँ (कौमुदी)। मोसों०—कहा रनमंडत मो सन (दीन० २ काशि०, प्रकाशिका); तौ ह्याँ रनमंडन मो सन (कौमुदी)। [१८] पत्नी तू—तिय कै तू (दीन०); त्रिम तै लै (सर०)। [२०] रघुबंसिन—रिपुबंसहि (दीन० १); रघुबंसहि (सर०)। पाप—दोष (दीन० २)। नसावत—लगावत (कौमुदी)। [२२] इसके अनंतर दीन०, सर० में यह छंद अधिक है—

बहुत जुद्ध भो भरथ सों, देव अदेव समान।
मोहि महारथ पर गिरे, मारे मोहन-बान ॥२३॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां भरत-मोहनो नाम सप्तत्रिंशत्प्रकाशः ॥३७॥

— —

३८

(दोहा)—भरथहि भयो बिलंब कछु, आए श्रीरघुनाथ।
देख्यो वह संग्राम-थल, जूझि परे सब साथ ॥१॥

(तोटक)—रघुनाथहि आवत आइ गए। रन में मुनि बालक रूपरए।
गुन रूप सुसीलन सों रन में। प्रतिबिंब मनौ निज दर्पन में ॥२॥

(मधुतिलका)

सीतासमान मुखचंद्र बिलोकि राम। बूझ्यो कहाँ बसत हौ तुम कौन ग्राम।
माता पिता कवन कौनेंहि कर्म कीन। बिद्या बिनोद सिख कौनेंहि अस्त्र दीन ॥३॥

कुश (रूपमाला)—राजराज तुम्हैं कहा मम बंस सों अब काम।
बूझि लीजो ईस लोगन जीतिकै संग्राम।

राम—हौं न जुद्ध करौं कहे बिन बिप्रबेष बिलोकि।
बेगि बीर कथा कहौ तुम आपनी रिस रोकि ॥४॥

कुश—कन्यका मिथिलेस की हम पुत्र जाए दोइ।
बालमीक असेष कर्म करे कृपारस मोइ।
अस्त्र सस्त्र सबै दए अरु बेदभेद पढ़ाइ।
बाप को नहिं नाम जानत आजु लौं रघुराइ ॥५॥

(दोधक)—जानकि के मुख अक्षर आने। राम तहीं अपने सुत जाने।
बिक्रम साहस सील बिचारे। जुद्ध बृथा गहि आयुध डारे ॥६॥

हाँसिनिहीं कुस मारि बिभीषन आनन ही में हते जो गरूरे।
भूमि गए उठि बैठतहीं उर में अति रोष के मारि मरूरे।
सोमित दंतन की किरचैं बिच छाँडत लोहू के लोल दरूरे।
खाइ तमोर तरुन्नि के संग करै मनो कामी कपूर-करूरे ॥
[भूमि०—भूमि भए (सर०)। संग—काम। कामी—भूमि (वही)।]

[३] बूझ्यो—पूछे (सर०)। कौन—कौने (वही)। सिख०—सिखए केहि (वहीं)। दीन—दीने (वही)। [४] बेष—बाल (दीन० १)। [६] बृथा—कथा कहि (प्रकाशिका); व्यथा गाहे (कौमुदी)।

राम—अंगद जीति इन्हैं गहि ल्यावौ। कै अपने बल मारि भगावौ।
बेगि बुझावहु चित्तचिता कों। आजु तिलोदक देहु पिता कों ॥७॥
अंगद तौ अँगअंग न फूले। पौन के पुत्र कह्यो अति भूले।
जाइ जुरे लव सों तरु लैकै। बात कही सत खंडन कैकै ॥८॥

लव—अंगद जो तुम पै बल होतौ। तौ वह सूरज को सुत को तौ।
देखत हौं जननी जु तिहारी। वा सँग सोवति ज्यों बर नारी ॥९॥
जा दिन तें जुवराज कहाए। विक्रम बुद्धि बिबेक बहाए।
जीवत पै कि मरे पहुँ जैहैं। कौन पिताहि तिलोदक दैहै ॥१०॥
अंगद हाथ गहै तरु जोई। जात तहीं तिल सो कटि सोई।
पर्वतपुंज जिते उन मेले। फूल के तूल लै बाननि झेले ॥११॥
बाननि बेधि रही सब देही। बानर तें जु भए अब सेही।
भूतल तें सर मारि उड़ायो। खेल के कंदुक को फल पायो ॥१२॥
सोहत है अध ऊरध ऐसें। होत बटा नट को नभ जैसें।
जान कहूँ न इतै उत पावै। गोबल चित्त दसौ दिसि धावै ॥१३॥
बोल घट्यो सु भयो सुरभंगी। ह्वै गयो अंग त्रिसंकु को संगी।
हा रघुनायक हौं जन तेरो। रक्षहु गर्ब गयो सब मेरो ॥१४॥
दीन सुनी जन की जब बानी। जी करुना लव बाननि आनी।
छाँड़ि दियो गिरि भूमि परयोई। बिह्वल ह्वै अति मानौं मरयोई ॥१५॥

(विजय)—भैरव से भट भूरि भिरे बल खेत खरे करतार करे कै।
भारे भिरे रन-भूधर भूप न टारे टरे इभ-कोट अरे कै।
रोष सों खर्ग हने कुस 'केसव' भूमि गिरे न टरेहू गरे कै।
राम बिलोकि कहैं रस अद्भुत खाएँ मरे नग नाग मरे कै ॥१६॥

(दोधक)—बानर रिक्ष जिते निसिचारी। सैन सबै इक बान सँघारी।
बानबिधे सब ही जब जोए। स्यंदन में रघुनंदन सोए ॥१७॥

(गीतिका)—रन जोइकै सब सीसभूषन संग्रहे जु भले भले।
हनुमंत को अरु जामवंतहि बाजि स्यौं ग्रसि लै चले।
रन जीतिकै लव साथ लै करि मातु के कुस पाँ परे।
सिर सूँघि कंठ लगाइ आनन चूमि गोद दुवौ धरे ॥१८॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां कुशलव-जयवर्णनन्नामाष्टत्रिंशत् प्रकाशः ॥३८॥

---

[१२] कंदुक–गेंदुक (दीन०)। [१५] गिरि–खसि (दीन० २)। विह्वल–ब्याकुल (कौमुदी)। [१६] टरेहू–कटेहू (दीन०, सर०)। मरे कै परे कै (कौमुदी)। [१८] धरे–भरे (दीन० २)।

३९

(रूपमाला)—चीन्हि देवर के बिभूषन देखिकै हनुमंत।
पुत्र हौं बिधवा करी तुम कर्म कीन दुरंत।
बाप कों रन मारियो अरु पितृभ्रातृ सँघारि।
आनियो हनुमंत बाँधि न आनियो मोहिं गारि ॥१॥

(दोहा)—माता सब काकी करी बिधवा एकहि बार।
मो सी और न पापिनी पाए बंस-कुठार ॥२॥

(दोधक)—पाप कहाँ हति बापहि जैहौ। लोक चतुर्दस ठौर न पैहौ।
राजकुमार कहै नहिं कोऊ। जारज जाइ कहावहु दोऊ ॥३॥

कुश मोकहँ दोष कहा सुनि माता। बाँधि लियो जो सुन्यो उनि भ्राता।
हौं तुमहीं तेहि बार पठायो। राम पिता कब मोहिं सुनायो ॥४॥

(दोहा)—मोहिं त्रिलोकि त्रिलोकिकै, रथ पर पौढ़े राम।
जीवत छाँड्यौ जुद्ध मे, गाता करि विश्राम ॥५॥

(सुंदरी)—आइ गए तबहीं मुनिनायक। श्रीरघुनंदन के गुनगायक।
बात बिचारि कही सिगरी कुस। दुख्ख कियो मन में कलि-अंकुस ॥६॥

मुनि (गौरी)—कीजै न विडंबन संतति सीते। भावी न मिटै जु कहूँ सुभगीते।
तूँ तौ पतिदेवन की गुरु बेटी। तेरी जग मृत्यु कहावत चेटी ॥७॥

(उपजाति)

सिगरे रनमंडल माँझ गए। अवलोकत ही अति भीत भए।
दुहुँ बालक को अति अद्भूत विक्रम। अवलोकि भयो मुनि के मन संभ्रम ॥८॥

(दंडक)

स्रोनित सलिल नर बानर सलिलचर, गिरि बालिसुत बिष बिभीषन डारे हैं।
चवँर पताका बड़ी बड़वा-अनल सम, रोगरिपु जामवंत 'केसव' बिचारे हैं।
बाजि खुरबाजि सुरगज से अनेक गज, भरथ सबंधु इंदु-अंमृत निहारे हैं।
सोहत सहित सेष रामचंद्र कुसलव, जीतिकै समर-सिंधु साँचहूँ सुधारे हैं ॥९॥

सीता (दोहा)—मनसा बाचा कर्मना जो मेरे मन राम।
तौ सब सेना जी उठै होहि घरी न बिराम ॥१०॥

---

[१] पितृभ्रातृ-मंत्रिमित्र (दीन० १); मारि साधु (दीन० २); पित्र मित्र (सर०)। [३] पाप-पापि (कौमुदी। [४] सुनि-कहि (दीन०, सर०); सुनु (कौमुदी)। उनि-जब (दीन०१, सर); सब (दीन० २)। [५] बिश्राम-संग्राम (दीन० १)। [९] कुस०-केसव से (कौमुदी)। सुधारे-सँवारे (वही)।

(दोधक)—जीय उठी सब सेन सभागी। 'केसव' सोवत तें जनु जागी।
स्यौं सुत सीतहि लै सुखकारी। राघव के मुनि पायनि पारी ॥११॥

(मनोरमा)

सुभ सुंदरि सोदर पुत्र मिले जहँ। बरषा बरषे सुर फूलन की तहँ।
बहुधा दिवि दुंदुभि के गन बाजत। दिगपाल गयंदन के गन लाजत ॥१२॥

अंगद—(स्वागता)

रामदेव तुम गर्बप्रहारी। नित्य तुच्छ अति बुद्धि हमारी।
जुद्ध देउ भ्रम तें कहि आयो। दास जानि प्रभु मारग लायो ॥१३॥

(रूपमाला)—सुंदरी सुत लै सहोदर बाजि लै सुख पाइ।
साथ लै मुनि बालमीकहिं दीह दुख्ख नसाइ।
राम धाम चले भले जस लोकलोक बढ़ाइ।
भाँति भाँति सुदेस 'केसव' दुंदुभीन बजाइ ॥१४॥

भर्थ लक्ष्मन सत्रुहा पुरभीर टारत जात।
चौंर ढारत हैं दुवौ दिसि पुत्र उत्तमगात।
छत्र है कर इंद्र के सुभ सोभिजै बहु भेव।
मत्त दंति चढ़े पढ़ैं जय सबद देव नृदेव ॥१५॥

(दोधक)—जज्ञथली रघुनंदन आए। धामनि धामनि होत बधाए।
श्रीमिथिलेससुता बड़भागी। स्यौं सुत सासुन के पग लागी ॥१६॥

(दोहा)—चारि पुत्र द्वै पुत्रसुत कौसल्या तब देखि।
पायो परमानंद मन दिगपालन सम लेखि ॥१७॥

(रूपमाला)

जज्ञ पूरन कै रमापति दान देत असेष। हीर नीरज चीर मानिक बरषि वर्षाबेष।
अंगराग तड़ाग बाग फले भले बहु भाँति। भवन भूषन भूमि भाजन भूरि बासर राति

(दोहा)—एक अयुत गज बाजि द्वै तीनि सुरभि सुभबर्न।
एक एक बिप्रहिं दई 'केसव' सहित सुबर्न ॥१८॥

देव अदेव नृदेव अरु जितने जीव त्रिलोक।
मनभायो पायो सबनि कीन्हे सबनि असोक ॥२०॥

---

[१२] गन लाजत–मद लाजत (दीन० १); गन गाजत (दीन० २, सर०)। [१५] उत्तम–सुंदर (दीन० १)। [१६] रघुनंदन–रघुनायक (दीन० १)। [१७] दिग०–आसिष दियौ असेष (दीन०)। [१८] वर्षा–बारिद (दीन०, प्रताप०, सर०)।

अपने अरु सोदरन के पुत्र बिलोकि समान।
न्यारे न्यारे देस दै, नृपति करे भगवान॥२१॥

कुस लव अपने भरथ के नंदन पुष्कर तक्ष।
लक्ष्मन के अंगद भए चित्रकेतु रनदक्ष॥२२॥

(भुजंगप्रयात)—भले पुत्र सत्रुघ्न द्वै दीप जाए। सदा साधु सूरे बड़े भाग्य पाए।
सदा मित्रपोषी हनै सत्रुछाती। सुबाहै बड़ो दूसरो सत्रुघाती॥२३॥

(दोहा)—कुस कौं दई कुसावती नगरी कोसल देस।
लव कौं दई अवंतिका उत्तर उत्तमबेस॥२४॥

पस्चिम पुष्कर कौं दई पुष्करवति है नाम।
तक्षसिला तक्षहिं दई लई जीति संग्राम॥२५॥

अंगद कहँ अंगदनगर दीन्हो पच्छिम ओर।
चंद्रकेतु चंद्रावती लीन्ही उत्तर जोर॥२६॥

मथुरा दई सुबाहु कहँ पूरन पावनगाथ।
सत्रुघात कों नृप कर्‌यो देसहि को रघुनाथ॥२७॥

(तोटक)—यहि भाँति सुरक्षित भूमि भई। सब पुत्र भतीजन बाँटि दई।
सब पुत्र महाप्रभु बोलि लिये। बहु भाँतिन के उपदेस दिये॥२८॥

(चामर)—बोलिये न झूठ ईठि मूढ़ पै न कीजई।
दीजई जु बात हाथ भूलि हू न लींजई।
नेहु तोरियै न देहु दुख्ख मंत्रि मित्र कों।
जत्र तत्र जाहु पै पत्याहु जैं अमित्र कों॥२९॥

(नराच)

जुवा न खेलियै कहूँ जुबान बेद रक्षियै। अमित्रभूमि माहिं जैं अभक्ष भक्ष भक्षियै।
करौ न मंत्र मूढ़ सों न गूढ़मंत्र खोलियै। सुपुत्र होहु जैं हठी मठीन सों न बोलियै।
बृथा न पीड़ियै प्रजाहि पुत्र-मान पारियै। असाधु साधु बूझिकै जथापराध मारियै।
कुदेव देव नारि को न बाल-बित्त लीजियै। बिरोध बिप्रबंस सों सु स्वप्नहू न कीजियै

---

[२३] सूरे–पूरे (दीन० १); रूरे (दीन० २)। [२४] अवंतिका–अवस्तिका (कौमुदी)। [२६] पच्छिम–पूरब (कौमुदी)। उत्तर–उत्तम (दीन० १, प्रताप, सर०)। [२७] को–कहँ (कौमुदी)। देसहि०–बायब दिसि (दीन० १); दीपनि को (दीन० २)। देसनि को (प्रताप०)। [२९] जु बात–जु वस्तु (कौमुदी); जुबान (दीन० १)। हाथ–तात (दीन०, सर०)। [३०] माहिं०–मैं रमै न मौन (दीन० १, प्रताप०); मैं रमै रमै न (सर०)। [३१] पीड़ियै०–दंडियै प्रजाहि दुष्ट (दीन० १)। प्रजाहि०–प्रजा हित् समान पालियै (प्रताप०); प्रजा हित् समान मारिये (सर०)।

(भुजंगप्रयात)

परद्रव्य कों तौ बिषप्राय लेखौ। परस्त्रीन कों ज्यों गुरुस्त्रीन देखौ।
तजौ काम क्रोधै महामोहँ लोभै। तजौ गर्ब कों सर्बदा चित्तक्षोभै ॥३२॥

जसै संग्रहौ निग्रहौ जुद्ध जोधा। करौ साधुसंसर्ग जो बुद्धिबोधा।
हितू होइ सो देइ जो धर्मसिक्षा। अधर्मीन कों देहु जैं बाकभिक्षा ॥३३॥

कृतघ्नी कुबादी परस्त्रीबिहारी। करौ बिप्र लोभी न धर्माधिकारी।
सदा द्रव्य संकल्प कों रक्षि लीजै। द्विजातीन कों आप ही दान दीजै ॥३४॥

(विजय)—तेरह मंडल मंडित भूतल भूपति जो क्रम ही क्रम साधै।
कैसहुँ ताकहँ सत्रु न मित्र सु 'केसवदास' उदास न बाधै।
सत्रु समीप, परे तेहि मित्र, सु तासु परे जु उदास कै जोवै।
बिग्रह, संधिनि, दाननि सिंधु लौं लै चहुँ ओरनि तौ सुख सोवै ॥३५॥

(दोहा)—राजश्री बस कैसेहूँ होहु न उरअवदात।
जैसे तैसे आपुबस ताकहँ कीजै तात ॥३६॥

यहि बिधि सिख दै पुत्र सब बिदा करे दै राज।
श्री राजत रघुनाथ-सँग, सोभन बंधु-समाज ॥३७॥

(रूपमाला)—रामचंद्रचरित्र कों जु सुनै सदा चित लाय।
ताहि पुत्र कलत्र संपति देत श्रीरघुराय।
जज्ञ दान अनेक तीरथ न्हान को फल होइ।
नारि का नर बिप्र क्षत्रिय बैस्य सूद्र जु कोइ ॥३८॥

(रूपक्रांता)—असेष पुन्य पाप के कलाप आपने बहाइ।
बिदेहराज ज्यों सदेह भक्त राम को कहाइ।
लहै सुभक्ति लोक लोक अंत मुक्ति होहि ताहि।
पढ़ै कहै सुनै गुनै जु रामचंद्रचंद्रिकाहि ॥३९॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां कुशलव-समागमो नामैकोनचत्वारिंशत्प्रकाशः प्रकाशः ॥३९॥

---

[३५] परे०—करौ जनि मित्र सु को सत्रु सदा करि जोवै (दीन० २)। [३७] राजत—सोहत (दीन० १)। इसके अनंतर 'दीन० १' में यह छंद अधिक है—

दस हजार दस सै बरष कर्‍यो राज जुवराज। बसी अवधि बैकुंठ में सूकर स्वान समाज ॥

[३८] जज्ञ—स्नान (दीन०, प्रताप०, सर०)। न्हान—पुन्य (दीन० १, सर०); दान (दीन० २)। [३९] होहि०—द्रव्य पाइ (दीन० १)।

रामचंद्रचंद्रिका

परिशिष्ट

(१) कथासूची

प्रकाश १—यहि पहिले परकास में मंगलचरन बिसेष।
ग्रंथारंभ'रु आदि की कथा लहहिं बुध लेख ॥ (कौमुदी)।

२—या दूसरे प्रकाश[1] में मुनि-आगमन प्रकास।
राजा सों रचना-बचन राघव-चलन-बिलास ॥ (काशि०)।
१—द्वितीय परकास (कौमुदी)।

३—कथा तृतीय प्रकास में बनबरनन सुभ जानि।
रक्षन जज्ञ मुनीस को श्रवन स्वयंबर मानि ॥ (प्रताप०, काशि०, कौमुदी)।

४—कथा चतुर्थ प्रकास में बानासुर-संबाद।
रावन सों अरु धनुष करि दसमुख-बान-बिबाद[1] ॥ (काशि०, कौमुदी)।
१—मान बिषाद (प्रताप०)।

५—यहि प्रकास[1] पंचम कथा रामगवन मिथिलाहि।
उद्धारन गौतम-घरनि स्तुति अरुनोदय आहि ॥
मिथिलापति के बचन अरु धनुभंजन उर धारि[2]।
जयमाला दुंदुभि अमर बरषन फूल अपार ॥ (काशि०, कौमुदी)।
१—प्रभाव (प्रताप०)। २—धनुर्भंग निरधार (वही)।

६—छठयँ[1] प्रकास कथा रुचिर दसरथ-आगम जानि।
लगनोत्सव श्रीराम को ब्याहबिधान बखानि ॥ (काशि०)।
१—छठे (कौमुदी)।

७—यहि प्रकास सप्तम कथा परसराम सों बादु[1]।
रघुबर सों अरु रोष तेहि भंजन मान बिषादु ॥ (काशि०)।
१—संबाद (कौमुदी)।

८—यहि प्रकास अष्टम कथा अवधि-प्रवेस बखानि।
सीताबर स्यौं[1] दसरथहि और बंधुजन मानि ॥ (काशि०)।
१—बरन्यो (कौमुदी)।

९—यहि प्रकास नवमे कथा रामगमन बन जानि।
जनकनंदनी को सुकृत-बरनन रूप बखानि ॥ (काशि०, कौमुदी)।

१०—यहि प्रकास दसमे कथा आवन भरथ सुनाम[१]।
राजमरन अरु तासु को बसिबो नंदीग्राम ॥ (काशि०)।
१—स्वधाम (कौमुदी)।

११—एकादसे प्रकास में पंचबटी को बास।
सूर्पनखा के रूप कों रघुपति[१] करिहैं नास ॥ (प्रताप०, काशि०, कौमुदी)।
१—करिहैं रघुकुल (सर०)।

१२—या[१] बारहैं प्रकास में दूषनादि को नास।
सीताहरन बिलाष[२] अरु[३] गत सुकंठ के पास ॥ (प्रताप०)।
१—या द्वादसें प्रकास खरदूषन त्रिसिरा (काशि०, कौमुदी); (दोषक) इहि द्वादसे……त्रिसिरा (सर०)। २—प्रलाप (वही)। ३—सुग्रीवँमिलन हरित्रास (काशि०, कौमुदी); सुग्रीव प्रकास मिलाप (सर०)।

१३—या तेरहैं प्रकास में बालि[१] बध्यो कपिराज।
बरषा-बरनन सरद को सिंधु[२]-उलंघन-काज[३] ॥ (प्रताप०)।
१—बलि बधि कपिबरराज (सर०)। २—उदधि (काशि०, सर०, कौमुदी)।
३—साज (काशि० कौमुदी)।
लंक बिलोकन सीय को रावनबचन बिसेषि।
मेघनाद हनुमंत[१] को दरसन बंधन लेखि ॥ (प्रताप०)।
१—हनिवंत (सर०)।

१४—या चौदहैं प्रकास में ह्वैहै लंकादाह।
सागरतीर मिलान पुनि करिहैं रघुकुलनाह ॥ (प्रताप०, काशि०, कौमुदी)।

१५—सुनि[१] पंद्रहें प्रकास में दससिर करै बिचार।
मिलै[१] बिभीषन सेतु रचि रघुपति जैहैं पार ॥ (प्रताप०)।
१—या (काशि०, कौमुदी)। २—मिलन (वही)।

१६—या[१] बरननु है षोडसें 'केसवदास' प्रकास।
रावन अंगद सों बिबिधि सोभित बचनबिलास ॥ (प्रताप०)।
१—यह (काशि०, कौमुदी)।

१७—या सत्रहें प्रकास में लंका को अवरोधु।
सत्रु[१]-चमू-बरनन समर लक्ष्मन को परमोधु[२] ॥ (काशि०, कौमुदी)।
१—मंत्र (प्रताप०,)। २—परबोध (वही)।

१८—अष्टादसें प्रकास में 'केसवदास' कराल।
कुंभकर्न[१] को बरनिबो मेघनाद[१] को को काल ॥ (काशि०, कौमुदी)।
१—मेघनाद–बध (प्रताप०); मेघनाद को (सर०)। २—कुंभकर्न (प्रताप०, सर०)।

१९—ओनईसए[१] प्रकास में रावन दुख्खनिधान[२]।
जूझैगो मकराक्ष पुनि ह्वैहै दूत[३]-बिधान ॥

रावन जैहै गूढ़थल रावर[4] लुटै बिसाल।
मंदोदरी कढ़ोरिबो[5] अरु रावन को काल ॥ (काशि०)।

१—यह वोनईस (प्रताप०)। २—निदान (कौमुदी०)। ३—लंक (दीन०)। ४—जहाँ जज्ञ की साल (प्रताप०)। ५—कढ़ोरिनी (वही)।

२०—या बीसए प्रकास में सीता मिलन बिसेषि।
ब्रह्मादिक की[1] स्तुति गमन अवधिपुरी कों लेखि।
प्राग[2] बरनि अरु बाटिका भरद्वाज की जानि।
रिषि रघुनाथ मिलाप कहि पूजा करि सुख मानि ॥ (काशि०)

१—स्तुति (प्रताप०); अस्तुति (कौमुदी०)। २—बरनि प्रयाग सुबाटिका (प्रताप०) 'दीन० १' में यह पाठ है—

बीस में सीतामिलन ब्रह्मस्तुति जु प्रमान।
बन बर्ननै प्रयाग को भारद्वाज-सनमान।

२१—इकईसए[1] प्रकास में कह[2] रिषि दानबिधान।
भरथ[3] मिलन कपिगुनन कों श्रीमुख आप बखान ॥ (काशि० कौमुदी०)।

१—या इकईस (दीन० १)। २—द्विज सनाढ्य की बृति (प्रताप०)। ३—भरतादिक के मिलन अरु बानरगन की किर्ति (वही); भरतादिक के मिलन अरु बानराशि की कीर्त्ति (दीन० १)।

२२—या बाइसे प्रकास में अवधिपुरीहि प्रवेस।
पुरबासिन मातान सों मिलिवो रामनरेश ॥ (काशि०, कौमुदी०)।

'प्रताप०' में यह पाठ है—

बाईसै बरनन अवधपुरबासिन की प्रीति।
मिलिबो सब मातानि को कहि 'केसव' यह नीति ॥

२३—या तेइसे प्रकास में रिषिजन-आगम लेखि।
राज्यश्री-निंदा कही श्रीमुख राम बिसेषि ॥ (काशि०, कौमुदी)।

२४—चौबीसए प्रकास में राम बिरक्त बखानि।
बिस्वामित्र बसिष्ट सों[1] बोध कही[2] सुभ आनि ॥ (काशि०)।

१—स्यौं (कौमुदी)। २—करयो (वही)।

'दीन०' में यह रूप है—

चौबीसयँ में जानबी जीवनदुख्ख-प्रमाद।
रिषिन सहित श्रीरामजू करिहैं सुख संबाद ॥

२५—कथा पचीस प्रकास में रिषि बसिष्ट सुख पाइ।
जीवउधारन-रीति सब रामहि कह्यो सुनाइ ॥ (काशि०, कौमुदी)।

२६—कथा छबीस प्रकास में कह्यो बसिष्ट बिबेक।
रामनाम को तत्व अरु रघुबर को अभिषेक ॥ (काशि०, कौमुदी)।

२७—सत्ताइसें प्रकास में रामचंद्र मुखसार।
ब्रह्मादिक को[1] स्तुति बिविध निज मति के अनुसार ॥ (काशि०)।
१—अस्तुति (कौमुदी)।

२८—अठ्ठाइसें प्रकास में बर्नन बहुबिधि जानि।
श्रीरघुबर के राज को सुरनर कों सुखदाति ॥ (काशि०, कौमुदी)

२९—वोनतीसएँ प्रकास में बरनि कह्यो चौगान।
अवधि-दीप[1] सुक की बिनति राजलोक-गुनगान ॥ (काशि०)
१—दीप्ति (कौमुदी)।

३०—या तीसएँ प्रकास मैं बरन्यो बहुबिधि जानि।
रंगमहल संगीत अरु, रामसयन सुखदानि।
पुनि सारिका जगाइबो, भोजन बहुत प्रकार।
अरु बसंत रघुबंसमनि बरनन चंद्र उदार ॥ (काशि०, कौमुदी)।

३१—इकतीसएँ प्रकास में रघुबर-बागपयान।
सुकमुख सियदासीन को बर्नन बिबिध बिधान। (काशि०, कौमुदी)।
'दीन० १' में यह पाठ है—
इकतीसें में जानबी प्रात उठन सब गाथ।
बागदिखावन जुवति कों जैहैं श्रीरघुनाथ ॥

३२—बत्तीसएँ प्रकास में उपवनबर्नन जानि।
अरु बहुबिधि जलकेलि कों करेहु राम सुखदानि ॥ (काशि०, कौमुदी)
'दीन० १' में यह रूप है—
बत्तीसयँ में जानबी बाग दिखावत तास।
जलक्रीड़ा श्रीरामजू खेलत हास्यबिलास ॥

३३—त्रयतीसएँ प्रकास में ब्रह्माबिनय बखानि।
संबुक-बध सिय-त्याग अरु, कुसलवजन्म सो जानि ॥ (काशि०, (कौमुदी)।

३४—आयो स्वान फिराद कौ चौतीसएँ प्रकास।
अरु सनाढ्य-द्विज-आगमन लवनासुर को नास ॥ (काशि०, कौमुदी)।
चौंतीसएँ में जानबी करिहै स्वान फिराद।
लवनासुर को बध पुनि मठधारी की आद ॥ (दीन० १)।
चौंतीसएँ प्रकास में स्वानफिरादि बखानि।
द्विजपति सों मठपति कियो लवनासुरबध जानि ॥ (प्रताप०)।

३५—पैंतीसएँ प्रकास में अस्वमेघ किय राम[1]।
मोहन लव सत्रुघ्न को[2] ह्वैहै संगरधाम[3] ॥ (काशि०,)।
१—आरंभ (प्रताप०)। २—कृत (कौमुदी)। ३—देसाटन हय सत्रुहन लव मोहन सारंभ (प्रताप०)।

३६—छत्तीसएँ प्रकास में लक्ष्मन-मोहन जानि[1]।
आयसु लहि श्रीराम को आगम-भरथ बखानि[2] ॥ (काशि० कौमुदी)।

१—कुससंबाद बखानि (प्रताप०)। २—लक्ष्मन सोयो जुद्ध में लक्ष्मन मोहन आनि (वही०)।

३७—सैंतीसएँ प्रकास में लव कटु बैन बखान।
मोहन बहुरि भरथ्थ कों लागे मोहन बान ॥ (काशि०, कौमुदी)।

३८—अठतीसएँ[1] प्रकास मो अंगदजुद्ध बखान।
ब्याज-सैन रघुनाथ को[2] कुसलव-आश्रम जान ॥ (काशि०)।

१—अड़तीसएँ (कौमुदी)। २—के (वही)।

३९—नवतीसएँ प्रकास सिय रामसँजोग निहारि।
जज्ञ पूरि सब सुतन कौं दीन्हो राज बिचारि ॥ (काशि०, कौमुदी)।

---

(२) छंद-लक्षण

(जहाँ कोई संकेत नहीं है वहाँ 'प्रताप०' समझे)

।८ **श्री**—गुरु एक पद कहि। चारि बर्न श्री सु लहि ॥

।१० **टि० मधु**—दुइ लघु को पद अक्षर चारि। ताकों बुध मधु छंद बिचारि ॥

।११ **रमण**—जुगल सगन। छंद रमन ॥

।१२ **तरणिजा**—नगन गुर नगन गुर। तरनिजा धरहु उर ॥

।१३ **प्रिया**—सगन एक द्वै जगन गुरू पुनि। प्रिया छंद यह कहत हिये गुनि ॥

।१५ **कुमारललिता**—जगन सगन अंत गुरु। कुमारललिता छंद कुरु ॥

।१९ **गाहा**—बारह प्रथम द्वितीय में कला अठारह देहु।
तिसरे बारह चउथ में पंद्रह गाहा एहु ॥

।२० **चतुष्पदी**—दस परि करि विश्राम पुनि बसु अरु द्वादस जानि।
देहु अंत गुर द्वै तहाँ चतु:पदी तहँ आनि ॥

।२२ **रोला**—चौबिस कला को चरन। लघु अंत रोला बरन ॥

।२३ **धत्ता**—(लीलावती)—
बत्तिस कला लिलावति जानो। यामें और न नेम बखानो ॥

।२५ **पद्धटिका**—षोडस कला चरन प्रति जानो। पद्धटिका सो छंद बखानो ॥
पद्धटिका नामांतरं पद्धारी ज्ञातव्यम्।÷
प्रतिचरन कला षोडस लसंत। कहि छंद पधारी जगन अंत।+

।२८ **नवपदी**—सोरह मात्रा भेद में छद नवपदी जानि।
गुरु लघु को कछु नेम नहिं अंत एक लघु आनि ॥
।३० **अरिल्ल**— षोडस कला को अड़िला जानहु। बिबि लघु गमक अंत मह आनहु ॥
।३३ **पादाकुलक**—(शशिबदना) नगन यगन जहँ। ससिबदना तहँ ॥+
।३४ **चतुष्पदी** (पद्मावती)– कला अठारह प्रथम में द्वै बिश्राम बिचारि।
द्वादस कला सु अंत में पद्मावती सुधारि ॥
।३६ **हाकलिका**—तीनि भगन जहँ कीजिए लघु इक इक गुरु अंत।
हाकालिका सो छंद है बरनत कबि बुधिवंत ॥
।३८ **आभीर**—सिव कल जगन सुअंत। कही अभीर अनंत ॥
।३९ **हरिगीत**– प्रथमहि द्वै लघु मध्य पुनि इकइस कला प्रतीत।
अंत रगन जहँ दीजिए छंद होत हरिगीत ॥
।४१ **त्रिभंगी**—दस बसु बसु रस पर बिमल बिरति धर जगनहीन कबि करहु जहाँ।
भनि सातो गन जहँ अंत सगन तहँ होत त्रिभंगी छंद तहाँ ॥÷
त्रिभंगी लक्षनांतर दोहा+
दस मात्रा पर बिरति जहँ बसु रस पर संत।
छंद त्रिभंगी जगन बिनु देहु एक गुर अंत ॥+
।४३ **हीरक**—चारि लघुन आदिहि गुर तीनि थलनि कीजियै।
अंत रगन ताहि तबहि हीरक कहि दीजियै ॥
।४४ **सिंहविलोकित** (सिंहावलोकन)—
चारि सगन के द्विज चरन सिंहबिलोकित येहु।
अंत आदि के चरन में मुक्तक पद ग्रसि देहु ॥÷
औ केसवदास याहू कों सिंहबिलोकित लिख्यौ है।÷
लक्षनांतर–रस आयुध बहु कला। तहँ सिंहबिलोकन छंद भला ॥+
।४५ **मरहट्ठा**—धरि छकल चतुःकल पंच धरहु पुनि अंतहु गुर लघु होइ।
कहि कबि सु मरहठा छंद छबीलो जानत सज्जन लोइ ॥
।४६ **सोरठा**—बिषम इगारह होइ, सम में तेरह जानिये।
सोरठ जानिय सोइ, दोहा उलटो करि पढ़े ॥
।४७ **कुंडलिया**—दोहा कहि प्रथमहि बहुरि चारि चरन रोलाहि।
आदि अंत जुरि जमकजुत कुंडलिका कहि ताहि ॥
२।१ **हंस**—आदिहि गुर दै लघु पुनि अंत। पंद्रह कला सु हंस कहंत ॥
।२ **मालती**—आदि नगन पुनि यगन दै रचहु मालती छंद। (कौमुदी)।
।४**समानिका**—रगन जगन अंत गुरु। सो समानिकाहि कुरु ॥
आदि अंत गुर बरनिये जगन नगन तिन माह।
कीनी प्रगट समानिका सप्तबर्न कबिनाह ॥ (सर०)।

१११ मदनमल्लिका—दीर्घ ह्रस्व चारि त्रार। मल्लिका सु छंद यार॥
अष्ट बरन सुभ[1]सहित क्रम गुरुलघु 'केसवदास'।
मदनमल्लिका नाम यह कीजै छंद प्रकास॥(दीन०१, सर, कौमुदी।
१—पद देहु (सर०)।

११३ तोमर—सगन एक जगन दोइ। तोमर सु छंद होइ।
सगन आदि रचि[1] द्वै जगन रचिजै[2] बहु सुखकंद।
चरन चारु[3] नव बरन में प्रगटउ[4] तोमर छंद॥ (सर०, कौमुदी)।
१—पुनि (कौमुदी)। २—धरिए। ३—चारि। ४—प्रगटत (वही)।

११४ अमृतगति—जगन[1] करौ द्वै नगन में देहु एक गुर अंत।
प्रगट[2] करौ यह अमृतगति छंद नाम[3] भगवंत॥
—जगन रच्यौ जू [द्वै] नगन में (सर०); नगन जगन पुनि नगन दै (कौमुदी)। २—प्रगट करयो वह (सर०); तब प्रगटतु है (कौमुदी)
३—महाछबिवंत (कौमुदी)।
लक्षनांतर—द्वादस कला गुरु अंत। यह अमृतगति बुधिवंत॥

११५ दोधक—आदि अंत गुरु मध्य पुनि तीनि[1] सु सगन बिचारु।
पद एकादस बरन को दोधक छंद सुधारु[2]॥
१—कीन्हीं चारु (सर०)। २—प्रचारु (वही)।

११६ तोटक—रचि[1] पद बारह बरन को[2] 'केसवदास' सुजानु।
चारि सगन को चारुमति तोटक छंद बखानु[3]॥
१—प्रति (कौमुदी)। २—दै (वही)। ३—प्रमान (सर०)।

११८ षट्पद (छप्पय)—प्रथम इगारह कला पुनि तेरह रोला रीत।
चारि सु यों पद जुगल में पंद्रह तेरह नीत॥

११९ सुंदरी—चारि भगन को सुंदरी छंद छबीलो होइ।
प्रतिपद द्वादस[1] बरन[2] रचि[3] 'केसव' कबिकुललोइ॥
१—बारह (कौमुदी)। २—बर्न (सर०)। ३—धरि रचौ याहि सब कोय (वही)।

१२७ पंकजवाटिका—आदि भगन पुनि नगन रचि[1] बहुरि जगन द्वै आनि।
[3]पंकजबाटिक अंत लघु तेरह बरन बखानि॥
१—धरि (कौमुदी)। २—अंति लघु पंकजबाटिका तेरह बर्न बखानु (सर०);
अंतहि लघु दै रचु तेरह बरन सुजान (कौमुदी)।

१२८ चामर—दिर्घ ह्रस्व दिर्घ ह्रस्व बर्न पंद्रहो धरो।
पिंगलै बिलोकि चारु छंद चामरै करो॥
रगन जगन पुनि जगन रचि बहुर्यो रगनहि आनि।
आदि अंत गुरु चामरहि पंद्रह बर्न बखानि॥ (सर०)।

।२८ **निशिपालिका** - त्रिगुर आदि तिहु नगन की अंत[1] रगन रचि चारु।
होइ छंद निसिपालिका पंद्रह बरन बिचारु॥
१--अंत र भगन बिचारु (सर०)। [दूसरा दल सर० में नहीं है]।

३।२ **सुप्रिया**[1]—समुझु सबै लघु अंत गुरु सुप्रिय[2] छंद प्रकास।
अक्षर प्रतिपद पंचदस बरनहु[3] 'केसवदास'॥
१--सुखप्रिया (सर०)। २--सुप्रिया (कौमुदी)। ३--बरनत (वही)।

।३ **नराच**—लघुगुरु क्रमहीं देहु पद[1] सोरह[2] बर्न प्रमान।
छंद नराच बखानियै 'केसवदास' सुजान॥
१—देउ (सर०); देव (कौमुदी)। २—षोडस (वही)।

।४ **शिशेषक**—पंच भगनमय[1] अंत गुरु एक[2] रच्यो[3] सुभसाज।
प्रगटहु[4] छंद बिसेषकहि[5] 'केसव' कबिकुलराज॥
१—ब्यय (सर०); धरि (कौमुदी)। २—रचै (सर०)। ३—षोडस बरन सुजान (वही)। ४—प्रगटत (कौमुदी)। ५—बिसेषका कह केसव कविराज (वही)।

।५ **चंचला**--क्रमहीं गुरलघु रुचिर पद प्रतिपद षोडस बर्न।
चारु छंद यह चंचला प्रगटहु[2] कबि मनहर्न॥
१--दीजिये (कौमुदी)। २--प्रगटत (वही)।

।७ **शशिवदना**--आदि नगन अरु यगन पुनि अक्षर षट परमानु।
ससिबदना सो छंद सुभ 'केसवदास' बखानु॥

।१२ **चंचरी**--जगन दोइ पुनि यगन एक बहुरि रगन द्वै आनि।
आदि अंत गुर चंचरी बरन अठारह बानि॥ (सर०)।

।१३ **शार्दूलविक्रीड़ित**—मगन सगन जगनै सगन द्वै गुर यगन लसंत।
सारदूलबिक्रीड़ितै इक लघु इक गुर अंत॥

।१५ **सवैया**--(माधवी)—सात भगन जहँ कीजिये दीजै द्वै गुर अंत।
छंद माधवी कहत हैं तेइस बर्नं लसंत॥

।२८ **घनाक्षरी**--(मनहरण दंडक)--
सोरह पर बिरति पुनि पंद्रह पर कीजिये।
अंत गुर छंद मनहर्न कहि दीजिये।
सौरस्यनामांतरं मनहरण इति बोधव्यम्।

।३१ **गीतिका**—आदि सगन पुनि जगन द्वै भगन रगन जहँ होइ।
सगन देहु लघु एक गुर छंद गीतिका सोइ॥
सगन जगन द्वै भगन पुनि रगन सगन इकु आनु।
लघु गुर अंतहि गीतिका बिसति बर्न बखानु॥ (सर०)।

४।२ **डिल्ल** (तिलक)—सगन दोइ । तिलक होइ ॥

।४ **बिज्जोहा**—रगन द्वै होइ जह । छंद बिज्जोह तह ॥

।७ **मंथान**—द्वै तगन आनि । मंथान जानि ॥

तगन दोय षट बरन जुत रचहु मंथना छंद ॥ (कौमुदी)

।८ **मालती**—द्व जगन जहँ जोइ । तहँ मालती होइ ॥ +

जगन दोइ षट बर्नजुत जानु[1] मालती कंत[2] । (सर०) ।

१—रचहु (कौमुदी) । २—छंद (वही) ।

।१० **तुरंगम**—षट लघु दीजै द्वै गुर अंत । छंद तुरंगम तहाँ लसंत ॥

नगन दोइ गुरु अंत द्वै रचहु तुरंगम तंत[2] । (सर०) ।

१—छंद (कौमुदी) ।

।१३ **कमला**—नगन आदि पुनि सगन दै लघुगुर दीजै अंत ।

अष्ट[1] बरन प्रति पदन[2] के[3] कमला छंद कहंत ॥

१—ग्राठ (कौमुदी) । २—प्रतिपद लखौ (वही) ।३—कै (सर०) ।

।१४ **तोमर**—सगन एक द्वै जगन रचि तोमर छंद प्रसिद्धि ।

प्रतिपद नवधा बरन दै 'केसवदास' सुबुद्धि[1] ॥

१—प्रसिद्ध (सर०) ।

।१७ **संयुता**—सगनै जु द्वै परजंत है । कहि संजुता गुर अंत है ॥

।२४ **मधुभार**—करि कला आठ । मधुभार पाठ ॥

५।१ **तारक**—जहँ तोटक एक गुरूहि बढ़ाई । यह तारक छंद कहो कबिराई ॥

।२ **मोहन**—आदि भगन पुनि नगन रचि जगन यगन पद चारि ।

क्रम तें बारह बर्न जहँ मोहन छंद बिचारि ॥

।६ **कुसुमविचित्रा**—चारि लघु दोइ गुर बार द्वै कीजिये ।

कुसुमबिचित्र सुभ छंद कहि दीजिये ।

।७ **कलहंस**—आदि सगन पुनि जगन द्वै भगन रगन जहँ पाइ ।

छंद कहत कलहंस सो पंद्रह बर्न बनाइ ॥

।८ **चौपाई**—सोरह कला चरन प्रति आनो । चौपाई सो छंद बखानो ॥

।१२ **चंचरी**—रगन सगन दै जगन द्वै भगन रगन दै और ।

होत चंचरी छंद तहँ बरनत कबिसिरमौर ॥ (मिलाइए ३।१२)

।२१ **मोहन**—आदि सगन पुनि जगन रचि अक्षर षट पद मानि।
कबिजन ताकों कहत हैं मोहन छंद सुजान ॥

।३३ **स्वागता**—रगन नगन अरु भगन रचि दीजे द्वै गुर अंत।
होत स्वागता छंद तहँ बरनत हैं बुधिवंत।

।३५ **पद्धटिका** (पज्झटिका)—
तीनि सगन क्रम सों जहाँ जगन अंत मह आनि।
प्रज्झटिका सो छंद कबिकुल कहत बखानि ॥ (मिलाइए १।२५)

।४७ **चित्रपद**—द्वै भगन द्वै गुर अंत जहँ। सो चित्रपद कहि छंद तहँ ॥

६।८ **अनुकूला**—भगन तगन वो नगन पुनि दीजै द्वै गुर अंत।
छंद होत अनुकूल तहँ भाख्यो सुभग अनंत ॥

।१२ **भुजंगप्रयात**—जहाँ चारि कीजै यगन्नै सुपातै। तहाँ छंद जानौ भुजंगप्रयातै ॥

।२२ **तामरस**—आदि नगन द्वै जगन पुनि अंत भगन कह देहु।
छंद तामरस होत तहँ कबिजन जानहु येहु।

।२७ **मालिनी**—षट लघु धरि द्वै गुर धरो फेरि रगन द्वै जत्र।
अंत एक गुर दीजिये होत मालिनी तत्र ॥

७।८ **चन्द्रकला**—करियै सगनै क्रम आठ जहीं। कहि चंद्रकला सुभ छंद तहीं ॥

।१२ **किरीट**—आठ जहाँ भगने करियै क्रमहीन न होइ प्रबीन सुनो सब।
याहि किरीट करो निःसंक मयंक-उदै सम होहु सुखी सब॥

।१४ **दंडक**—आठ आठ पै बिरति त्रय देहु सुकबि अभिराम।
बहुरि सात पर दीजिये दंडक काम ललाम ॥ (मिलाइए ३।२६)

।१९ **मदिरा**—सात भगन जहँ। मदिरा कहि तहँ।

।४८ **मोटनक**—आदि अंत गुर दीजिये मध्य भगन जहँ तीन।
छंद मोटनक कहत सो जे हैं सुकबि प्रबीन ॥

८।१ **सुमुखी**—द्वै लघु अरु सगन तीन। सुमुखी यह छंद कीन ॥

।४ **कलहंस**—आदि सगन पुनि जगन रचि बहुरि सगन दै दोइ।
छंद होत कलहंस तहँ अंत एक गुर होइ ॥

९।७ **मोतियदाम**—जहँ करियै जगनै क्रम चारि। सु मोतियदाम ललाम बिचारि ॥

।१० **सारवती**—दै भगनै भ य अंत गुरै। सारवती यह छंद फुरै ॥

।२५ **सुप्रिया**—चौदह लघु दै इक गुरु अंत। छंद सुप्रिया तहाँ लसंत ॥ (मि० ३।२)

।२९ **द्रुतबिलंबित**—आदि नगन द्वै भगन पुनि अंतरगत जहँ होइ।
द्रुतबिलंबिता छंद सो ताहि कहत सब कोइ ॥

।३४ **जगमोहन** (दंडक)—आठ आठ पै बिरति त्रय बहुरि सात पर जास ।
दंडक काम सु होत तहँ कीन्हो सेष प्रकास ॥ (मि०७।१४)

।३६ **अनंगशेखर** (दंडक)—जगत रगन जगन रगन क्रमहि पाँच पाँच जानि ।
लघु गुरु सु अंत में अनंगसेषरै बखानि ॥

।४० **प्रकर्ष** (दंडक)- षट अक्षर पर बिरति दै दीजे दस पर और ।
पुनि षट पर नव पर बहुरि सो प्रकर्ष सिरमौर ॥
जगमोहनस्य नामांतरं प्रकर्ष इति बोधनम् ।

१०।३८ **इंद्रवज्रा**—तगन दोइ रचि जगन इक द्वै गुर दीजै अंत ।
इंद्रबज्र सो छंद है बरनत सेष अनंत ॥

।४० **उपेंद्रवज्रा**—इंद्रवज्र रचि सर्ब । बरन्यो नाग अखर्ब ।
पूर्ब बरन लघु कीजिये । उपेंद्रबज्र सो छंद है ॥

११।१ **उद्धता**—रगन नगन पुनि रगन रचि लघु गुरु अंत सु आनि ।
होत उद्धता छंद सो कबिसिरमौर बखानि ॥

।२ **चंद्रवर्त्म**—रगन नगन अरु भगन रचि सगन रचो जहँ आनि ।
चंद्रबर्तमनि ताहि कों छंद फनीस बखानि ॥

।३ **वंशस्थविल**—जगन सु द्वै गुर सगन पुनि लघु गुर लघु गुर होइ ।
बंसस्थबिल सु छंद है कहत सयाने लोइ ॥

।६ **प्रतिमाक्षरा**— द्वै लघु गुर लघु गुर लघुहि बहुरि सगन द्वै अंत ।
ताहि कहत प्रमिताक्षरा जे कबिता-बुधिवंत ॥

।७ **लक्ष्मीधर**—तीनि रगन बर । सो लक्ष्मीधर ॥

।८ **मालती**—नगन एक द्वै जगन रचि अंत रगन है जत्र ।
कबि कोबिद सब कहत हैं छंद मालती तत्र ॥

।१० **वसंततिलक**—तगन भगन द्वै जगन रचि द्वै गुर अंत सुधारि ।
तहँ बसंततिलका कहत नाग नरिंद्र बिचारि ॥

।१४ **पृथ्वी**—जगन सगन लघु गुर रचो नगन रगन द्वै अंत ।
पृथिवी छंद फनिंद कहि सत्रह बर्न लसंत ॥

।१५ **पद्मावती**—तीस कला को छंद है बिरति जानि तहँ दोइ ।
अट्ठारह अरु बारहे पदुमावति सो होइ ॥

।१८ **चंद्रकला** (दुर्मिला)
करियै सगनै क्रम आठ जहाँ कहुँ भूलि नहीं गन और परै ।
दुमिला यह छंद फनिंद भनें सुख आनँदचंद न काहि करै ॥+

।१८ **हाकलिका**—भगन तीनि धरिये सुभग पुनि लघु गुरहि मिलाउ।
हाकलिका सुभ छंद रचि 'केसव' हरिगुन गाउ॥ (कौमुदी)
(मि० १।३६)

।२३ **नाराच** (द्वितीय)—नगन दोइ अरु रगन चारि जहँ।
कहत सेष नाराच छंद तहँ।

।३२ **मरहठा**—बोनतिस मात्रा भेद में मारष्टादिक देखि।
आठ लाख बत्तिस सहस चालिस भेद बिसेषि॥

।३४ **मनोरमा** (द्वितीय तारक)—चारि सगन दै द्वै लघु अंत।
तारक छंद सु कह्यो अनंत॥

।३८ **मल्लिका**—दीर्घ ह्रस्व को क्रमै सुबर्न आठ है सहीं।
पिंगलै बिलोकिकै सु छंद मल्लिका कही॥

१२।२१ **हरिलीला**—बीस कला को छंद है तगन आदि जगनंत।
हरिलीला सो छंद है भाख्यो सेष अनंत॥

।२८ **दोधक**—कै भगनै त्रय द्वै गुर पाछे। दोधक छंद कहैं कबि आछे॥ (मि० २।१५)

।४१ **चंद्रकला**—दुर्मिला छंदस्य नामांतरं चंद्रकला इति बोधव्यम्।

।६२ **दंडक**—बिरति तीनि बसु पर परै बहुरि सात पर होइ।
एकतिस अक्षर को चरन दंडक नाम सु होइ॥ (मि० ६।३४)

१३।३६ **दंडक**—आठ आठ पर तीनि बिसराम बर कहत कबितकर आठ पर फेरि होइ।
जानहु घनाक्षरहि बीस-बार अक्षरहि बरतन साक्षरहि कबिकुल सबकोइ

।८८ **सुंदरी**—जहँ रगन नगन द्वै भगन होइ।
उपजाति सुंदरी छंद सोइ॥

१५।१२ **कलहंस**—सगन जगन पुनि द्वै सगन देहु अंत गुर एक।
होत छंद कलहंस सो कीन्हो सेष बिबेक॥ (मि० ८।४)

१६।३ **चित्रपदा**—द्वै भगनै गुर द्वै है। चित्रपदा सु कहैहै। (मि० ५।४।७)

।८ **मत्तमातंगलीलाकार** (दंडक)—

पाइ करो नौ रगन तें चौदह लोचन चाहि।
नाम मत्तमातंग को लीलाकर कहि ताहि॥

औ केसोदास आठहू रगन को मत्तमातंग दंडक लिख्यो है।
औ पिंगल के मते आठ रगन को लक्षी छंद होत है—तद्यथा

रचि भुजंग बसु यगन कों लक्षी रगनै आठ।
आठ भ कहत किरीट है आठ स दुर्मिला पाठ॥

।१८ **द्रुतविलंबित** (सुंदरी)—नगन एक पुनि भगन ह्वै रगन अंत में होइ।
नाग रच्यो यह सुंदरी पिंगलमत तें सोइ ॥ (मि०६।२६)

१७।२७ **चंद्रवर्त्म**—रगन नगन अरु भगन दै अंत सु सगन सुधारि।
चंद्रवर्त्तमा छंद यह भाख्यो सेष बिचारि ॥ (मि० ११।२)

१८।५० **लीलावती**—लघगुरु बर्न सु नेम नहि बिरति नेम नहि होइ।
बत्तिस मात्रा को तहाँ छंद लिलावति सोइ ॥

।५३ **माधवती**—आठ सगन जहँ दीजिये इक गुर अंत प्रमान।
माधवती सो छंद है कबिकुल करत बखान ॥

२०।८ **उपजातिवज्रा**—तक्कार कन्नो सगनो यगन्नो, सो इंद्रबज्रा दस एक बन्नो।
उपेंद्रबज्रा जगनादि सोई, दुहूँ मिले पै उपजाति होई ॥

२१।१ **सोमराजी**—दोइ यगनै जहाँ। सोमराजी तहाँ ॥

।५ **गोपाल**—दोधक अंत परै लघु जाहि। छंद गोपाल कहै सब ताहि।

।७ टि० **अनुष्टुप**—पद आठ अक्षर को प्रथम तहँ चारि तजि लघु गुर धरो।
पद दूसरे श्रुति बरन तजि द्वै बार लघुगुर कों करो।
इहि भाँति रचि पद चारि लेहु बिचारि आनँदकंद है।
तहँ होत आनि अनुष्टुपै सुभ छंद भाखि फनिंद है ॥

।१८ **गौरी** (मोटक)—मोटनक छंद इक अंत गुर और जहँ।
नागपति कह्यो यह मोटक सु छंद तहँ ॥

।३० **मदनमनोहर** (मोहन)—भगन जगन सगन नगन भगन फेरि आनियै।
जगन सगन नगन और भगनै बखानियै।
दीजै लघु एक और रगन अंत में धरौ।
पिंगलै बिचारि छंद मदनमोहनै करौ ॥

२२।२ **तरंगिणी**—तगन भगन रचियै क्रमहि गुर लघु अंत सुधारि।
है तरंगिनी छंद सो कबिजन कहत बिचारि ॥

।८ **विजय**—आठ जगन लघु अंत में छंद सो विजय प्रकास।
बरनबृत्ति की रीत यह भाखै 'केसवदास' ॥

।१६ **मदनहरा**—तिरभंगी के चरन प्रति अंत कला बसु और।
मदनहरा सो छंद है कह्यो सेष करि गौर ॥

२३।७ **रूपमाला**—रगन सगन जहँ होइ जगन जुगल पुनि भगन रचि।
गुर लघु अंतहु सोइ, छंद रूपमाला वहै ॥

।१४ **चौपई**—पंद्रह कला होत चौपई। भाख्यो सेष छंद सुखमई ॥

२४।११ **मकरंद**—सात जगन रचिये क्रमहि मगन एक धरि अंत ।
होत मंजरी छंद तहँ बरनत सुकबि अनंत ॥
मंजरी-छंदस्य नामांतरं मकरंदेति ज्ञातव्यम् ।

२६।३० **झूलना** (रूपमाला)—पद आदि में जहँ सगन । पुनि अंत में जहँ जगन ।
कल बीस दस बसु होइ । कहि रूपमाला सोइ ॥
यह केसोदास के मते दूसरो रूपमाला है ।

२७।१० **रूपमाला** (चंचरी)—चौबिस कल जगनांत जो छंद चंचरी होत ।
मात्रामुक्त प्रकर्न में कीन्हे सेष उदोत ॥

२८।२० **हरिप्रिया**—कला बयालिस धरि चरन द्वै गुर अंत बिलास ।
हरिप्रिया सो छंद है बिरच्यो 'केसोदास' ॥

३१।२४ **विशेषक** (नील)—दै भगनै क्रम सों जहँ पाँच गुरेक सही ।
जानहु नीलहि यों कबिब्रातन बात कही ॥ (मि०३।४)

३३।४३ **तोटक** - करियै सगनै क्रम चारि जहाँ । यह तोटक छंद प्रसिद्ध तहाँ ॥
(मि० २।१६)

३४।३८ **मरहट्ठा**—षठकल । श्रुति थल । जुग कल । गुर हल ॥ (मि० १।४५)

छंदमाला

१

(भुजंगप्रयात)

अनंगारि है पै लसै संग नारी। दिपै मुंडमाला कहैं गंगधारी।
भखे कालकूटै लसै सीस चंदै। कहा एक हो ताहि त्रैलोक बंदै ॥१॥
महादेव जाके न जानै प्रभावै। महादेव के देव कों चित्त भावै।
महानाग सोहै सदा देहमाला। महाभावयंती करौं छंदमाला ॥२॥

(दोहरा)—भाषाकबि समुझैं सबै, सिगरे छंद सुभाइ।
छंदन की माला करी सोभन 'केसवराइ' ॥३॥
एक बर्न को पद प्रगट छब्बिस लौं मतिवंत।
तदुपरि 'केसवराइ' कहि दंडक छंद अनंत ॥४॥

श्री—(दोहा)

(लक्षण)—दीर्घ एक ही बरन को दीजै पद सुखकंद।
मंगल सकल निधान जग नाम सुनहु श्री छंद ॥५॥
(उदाहरण)—श्री धी। री धी—श्री छंद ऽ,ऽ,ऽ,ऽ

नारायण

लक्ष०—लघु दीरघ को जहँ बरन द्वै अक्षर गनि लेहु।
वह **नारायन** छंद है सुखदायक श्रीगेहु ॥६॥
उदा०—रमा। समा। हरी। करी।—**नारायण** ।ऽ, ।ऽ, ।ऽ, ।ऽ

रमण

लक्ष०—द्वै लघु दीजे आदिहीं, एक अंत गुरु जानि।
रमनिरमन के रमन कौं **रमन** छंद करि मानि ॥७॥
उदा०—जगु ज्यों, तजियै। हरि यों, भजियै।—रमण ।।ऽ, ।।ऽ, ।।ऽ, ।।ऽ

५] श्री०—सिद्धिरिद्धि (चंद्रिका १।८)।

तरणिजा

लक्ष०—नगन आदि गुरु अंत है छंद **तरनिजा** जानि।

उदा०—बरनिबो, बरन सो। जगत को सरन जो।

—तरणिजा IIIS, IIIS, IIIS, IIIS

मदन

रगन आदि लघु अंत है; **मदन** छंद परमानि ॥८॥

उदा०—रामचंदु। लोकबंदु। चित्त चाहि। दुख्ख दाहि।

—मदन SISI, SISI, SISI, SISI

माया

रगन अंत द्वै आदिलघु **माया** छंद बखानु।

'केसवदास' प्रकास सो पंचबरन परमानु ॥९॥

उदा०—सुखकंद हैं, रघुनंदजू। जग यों कहै, जगवंदजू।

—माया IISIS, IISIS, IISIS, IISIS

अथ षडाक्षरभेद—मालती

आदि नगन पुनि जगन रचि चरन षडक्षर बानि।

अमल **मालती** छंद यह कबिकुल कौं सुखदानि ॥१०॥

उदा०—बरन तजै न। लगत कुचैन। अरथबिकास। बिरुध सुभास।

—मालती IIIISI, IIIISI, IIIISI, IIIISI

सोमराजी

जगन दोय भय बर्न षट **सोमराजि** सो छंद।

—सोमराजी ISIISI, ISIISI, ISIISI, ISIISI

शंकर

रगन जगन षटबर्नमय सो संकर जगजंद ॥११॥

उदा०—बात तात मानि। चित्त माझ आनि।

एक राम सत्य। दूसरो असत्य।

—शंकर SISISI, SISISI, SISISI, SISISI

बिज्जोहा

रगन दोय षटबर्नजुत **बिज्जोहा** परमान।

उदा०—संभुकोदंडु दै। राजपुत्री कितै।

टूक द्वै तीनि कै। जाहुँ लंका जितै॥

—बिज्जोहा SISSIS, SISSIS, SISSIS, SISSIS

---

[८] जो सो (चंद्रिका १।१२)।

मंथान

तगन जुगल षट बर्न करि मानौ मन **मंथान** ॥१२॥
उदा०—श्री राम सोहैं जु। सीता सती सैं जु।
भाई जती हैं जु। तीन्यौ चले सैं जु।
—मंथानक ऽऽ।ऽऽ।, ऽऽ।ऽऽ।, ऽऽ।ऽऽ।, ऽऽ।ऽऽ।

सुखदा

आदि अंत गुरु दोय दै मध्य दोय लघु आनि।
कहि 'केसव' षट बरन को **सुखदा** छंद बखानि ॥१३॥
उदा०—माया सन रूठौ। जानौ जग झूठौ।
एकै हरि साँचौ। बैराग न पाँचौ।
—सुखदा ऽऽ।।ऽऽ, ऽऽ।।ऽऽ, ऽऽ।।ऽऽ, ऽऽ।।ऽऽ

अथ सप्ताक्षरभेद—कुमारललिता

आदि जगन दै सगन पुनि अंत गुरू इक लेखि।
करि **कुमारललिता** प्रगट बर्न सप्त सुभ देखि ॥१४॥
उदा०—सबै जगत गावै। बिरंचि समझावै।
तऊ न समझै रे। हियें न हरि है रे।
—कुमारललिता ।ऽ।।।ऽऽ

प्रमाणिका

आदि एक गुरु सोभिजै जगन रगन तिन माह।
कीनी प्रगट **प्रमानिका** सप्तबर्न कबिनाह ॥१५॥
उदा०—छाड़ि देहि रे हठै। संग छाड़िजै सठै।
चित्त हाथ कीजियै। मुक्ति छीनि लीजियै।
—प्रमाणिका ऽ।ऽ।ऽ।ऽ

अथ अष्टाक्षरभेद—मल्लिका (ऽ।ऽ।ऽ।ऽ)

जगन रगन रचि आदि गुरु एक अंत लघु लेखि।
सुनौ **मल्लिका** छंद यह अष्ट बरन पद देखि ॥१६॥
उदा०—देस देस के नरेस। सोभिजै सभा सुबेस।
जानिजै न आदि अंत। कौन दास कौन कंत।

---

[१२] जाहुं०—जाउँ लंकाहि लै (चंद्रिका ४।८)।

नगस्वरूपिणी

आठबर्न को बर्न जहँ क्रमहीं लघु गुरु होइ।
कहियत **नगस्वरूपिणी छंद** सकल कबिलोइ ॥१७॥
उदा०—सुमित्र तें न भागिये। अमित्र तें न रागिये।
बिचारि देखि धौं हिये। भली परै कहा किये।
—नगस्वरूपिणी ।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ

मदनमोहनी

तगन आदि दे जगन पुनि गुरु लघु दीजत अंत।
मदनमोहनी छंद यह अष्टबर्न सुनि कंत ॥१८॥
उदा०—जाकों सब जानि ठग्गु। ताकों तजिकै सु भग्गु।
जारै किन जीव दुख्ख। सोचै रहि पाइ सुख्ख।
—मदनमोहन ऽऽ।।ऽ।ऽ।

बोधक

आदि अंत गुरु दोय दे मध्य रचौ लघु चारि।
अष्टबर्न 'केसव' कहत **बोधक छंद** बिचारि ॥१९॥
उदा०—झूठे हय गय तेरे। लक्ष्मी हय गय चेरे।
सीतापति अति साचे। तासों कवनहु राचें।
—बोधक ऽऽ।।।।ऽऽ

तुरंगम

नगन दोय गुरु अंत द्वै रचौ **तुरंगम छंद**।
अष्टबर्न को एक पद 'केसव' आनँदकंद ॥२०॥
उदा०—बहुत बदन जाके। बिबिध बचन ताके।
बहुभुजजुत जोई। सबल कहत सोई।
—तुरंगम ।।।।।।ऽऽ

अथ नवाक्षरभेद—नागसुरूपिणी

आदि अंत रचि जगन सुभ मध्य रगन रचि मित्त।
प्रगटहु **नागसुरूपिनी** नव अक्षर धरि चित्त ॥२१॥
उदा०—भले बुरे जपौ जु ईस। बिराजमान चंद्र सीस।
सिवा बिलास सोभमान। सु सिद्धि निद्धि देत दान।
—नागसुरूपिणी ।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ।

---

[१६] (चंद्रिका २३।२)। [२०] कहत—कहिय (चंद्रिका ४।१०)।

तोमर

सगन आदि गुनि द्वै जगन रचियै बहु सुखकंद।
चरन चारि नव बरन को प्रगटहु **तोमर** छंद ॥२२॥

—तोमर ॥ऽ।ऽ।।ऽ।

उदा०—रघुबंस के अवतंस। सुनि दान-मानस-हंस।
मन माहि जौ अति नेहु। इक बात मो कहिं देहु।

अथ दशाक्षरभेद—हरिणी (ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ)

भगन तीनि रचि आदि पुनि अंत देहु गुरु एक।
हरिणी छंद बखानिजै दसधा बर्न बिबेक ॥२३॥

उदा०—श्रीरघुनाथ चले बन कों। लै सँग सीता लक्ष्मन कों।
सिद्धि चले हरि हेरि हियें। सिद्धिहि सिद्धहि संग लियें।

अमृतगति (।।। ।ऽ। ।।।ऽ)

जगन रचौ दुइ नगन में देहु एक गुरु अंत।
कहि **अमृतगति** छंद यह दस अक्षर गुनवंत ॥२४॥

उदा०—सुमति महारिषि मुनिजै। श्रवन कथा सुनि गुनिजै।
कुमति सदा मन तजियै। तन मन केसव भजियै।

तोमर—(।।। ।।ऽ ।।ऽ ।)

नगन आदि पुनि सगन द्वै एक अंत लघु आनि!
दस अक्षर को बर्न कहि **तोमर** छंद बखानि ॥२५॥

उदा०—सह भरथ लक्ष्मन राम। बहु बिधि किये परनाम।
भृगु रिषिहि आयसु दीन। नर अजय हो परबीन।

संयुक्ता—(।।ऽ ।ऽ।। ऽ। ऽ)

सगन एक रचि जगन द्वै अंत एक गुरु आनि।
दसधा बर्न बखानिजै **संजुक्ता** परमानि ॥२६॥

उदा०—बन नेह गेह सरीर सों। भजि साध संगम धीर सों।
जग कों प्रपंचहि लेखियै। तब आप सो सब देखियै।

---

[२२] मो०—माँगिहि (चंद्रिका २।१३) । [२४] रिषि—मुनि (चंद्रिका २४।१) । श्रवन०—जग महँ सुख न (वही) । [२५] भरथ—भर्थ (चंद्रिका ७।१७) । बहु०—चहुँ कीन आनि प्रनाम । रिषिहि०—नंद आसिष । नर०—रन होहु अजय प्रबीन (वही) ।

अथ एकादशाक्षर—अनुकूला (ऽ।। ऽऽ ।।।। ऽऽ)

भगन तगन पुनि नगन दै द्वै गुरु अंतहि देखि।
अनुकूला यह छंद है ग्यारह अक्षर लेखि ॥२७॥
उदा०—श्रीहरिजू को त्रिभुवन मोहै। देखहु सोभा तनतन सोहै।
जा बिन देखे तन मन बाधा। सो यह पा लागत सुनि राधा।

सुपर्णप्रयात—(ऽऽ। ऽऽ। ऽऽ। ऽऽ)

तगन तीनि गुरु अंत द्वै करि कबित्त अवदात।
ग्यारह अक्षर स्वच्छ पद देहु **सुपर्णप्रयात** ॥२८॥
उदा०—एकै यहै सब्द संसार भाख्यौ। त्रै लोक को मंडि ब्रह्मांड नाख्यो।
मारचो दसग्रीव संग्राम बीत्यो। श्रीराम श्रीराम श्रीराम जीत्यो।

इंद्रवज्रा—(ऽऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽऽ)

आदि तगन द्वै जगन पुनि अंत देहु गुरु दोय।
ग्यारह अक्षर को सुमति **इंद्रबज्र** कहि लोय ॥२९॥
उदा०—राजा सुनौ बात बड़ी बखानौ। साधारनौ आपु कहाऽव ठानौ।
बाधाहि छाड़ौ बड़भाग जाग्यो। आधार जी को हरिपाव लाग्यो।

उपेंद्रवज्रा—(।ऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽऽ)

जगन तगन पुनि जगन करि द्वै गुरु अंत प्रकास।
उपेंद्रबज्रा छंद करि ग्यारह अक्षर जास ॥३०॥
उदा०—अनंत देवादि न अंत पायो। अनेकधा बेदनि गीत गायो।
निजेच्छया भूतल देहधारी। अधर्मसंहारक धर्मचारी।

अथ द्वादशाक्षर—मोतियदाम (।ऽ। ।ऽ। ।ऽ। ।ऽ।)

तीनि भगन दै आदि लघु अंतह गुरु लघु लेखि।
छंद सु **मौक्तिकदाम** भनि द्वादसबर्न बिसेखि ॥३१॥
उदा०—गए जब राम जहाँ सुनि मात। कही यह बात सुनौ बन जात।
कछू जनि जी दुख पावहु भाइ। सु देहु असीस मिलौं फिरि आइ।

तोटक (।।ऽ ।।ऽ।। ऽ।। ऽ)

रचि पद बारह बर्न को 'केसवराय' सुजान।
चारि सगन को चारुमति **तोटक** छंद प्रमान ॥३२॥
उदा०—रघुनाथ अनाथहि राखत हैं। सुनि बेद यहै मुख भाखत हैं।
कहि कौन वही तजि आन ररै। जिनको चरनोदक ईस धरै।

सुंदरी—(ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।।)

चारि भगन को **सुंदरी** छंद छबीलो होय।
रचि पद बारहबर्न को बरनत कबिकुललोय ॥३३॥
उदा०—राज तजै धन धाम तजै सब। नारि तजै सुतसोचु तजै अब।
आपुन यों जग झूठहि निंदह। सत्य न एक तजै हरिचंदह।

मोदक—(।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ)

बरह बर्न बखानिजै प्रतिपद आनँदकंद।
चारि सगन को कीजियत 'केसव' **मोदक** छंद ॥३४॥
उदा०—सब ही जग में मद को दुख है। अरु आनँद को सु महासुख है।
यह तौ मत बेदपुरान ररै। कहिजै सु कछू जु बिचार परै।

भुजंगप्रयात—(।ऽऽ ।ऽऽ ।ऽऽ ।ऽऽ)

बरनत बारह बरनमय 'केसव' कबि अवदात।
चारि यगन को जानिजै छंद **भुजंगप्रयात** ॥३५॥
उदा०—धरे एक बेनी मिलै मैलसारी। मृनाली मनो पंकसोकाधिकारी।
सदा राम रामै ररै दीनबानी। चहूँ ओर हैं राकसी क्लेसदानी।

तामरस—(।।।। ऽ।। ऽ।। ऽऽ)

आदि चारि लघु मध्य द्वै भगन अंत गुरु दोय।
'केसव' बारहबर्न को छंद **तामरस** होय ॥३६॥
उदा०—तन मन में अति लोभ बसाई। गनब न द्रोह बैर दुखदाई।
तपफल केहुँ न पावन पावै। पदुवन कै बलि देहु नपावै।

द्रुतविलंबित—(।।। ऽ।। ऽ।। ऽ।ऽ)

नगन आदि पुनि भगन द्वै रगनहि अंत बिचारु।
त्वरितबिलंबित छंद यह कहि 'केसव' मति चारु ॥३७॥
उदा०—बिपिनमारग राम बिराजहीं। सुखद नागर सुंदरि साजहीं।
बिबिध सिद्ध फलद्रु मनौ फले। सकल साधन तत्पर लै चले।

---

[३३] तजै-तज्यो (चंद्रिका २।२१)। नारि०--नारि तजी सु न सोच तज्यो तब। आपुन०--आपुनपौ जु तज्यो जगबंदह। तजै-तज्यौ (वही)। [३५] मिलै--मिली (चंद्रिका १३।५३)। सोका०-ते काढ़ि डारी। रामै--नामै। क्लेस--दुक्ख (वही)। [३७] नागर०--सुंदरि सोदर भ्राजहीं (चंद्रिका ६।१६)। सिद्ध०--श्रीफल सिद्ध मनो फलो। तत्पर०--सिद्धिहि लै चलो (वही)।

कुसुमविचित्रा—(।।।।ऽऽ ।।।।ऽऽ)

चारि कला गुरु दोय पुनि चारि कला गुरु दोय।
रचि पद बारहबर्न को **कुसुमबिचित्रा** होय ॥३८॥

उदा०—तब कबिराजा रघुपति देखे। मनि नर-नारायन सम लेखे।
द्विजबपुधारी हनुवँत आए। बहुबिध दै आसिष मन भाए।

चंद्रब्रह्म—(ऽ।ऽ ।।। ऽ।। ।।ऽ)

रगन नगन पुनि भगन यह अंत सगन कों आनि।
चंद्रब्रह्म यह छंद है बारह बरन बखानि ॥३९॥

उदा०—स्नान दान जप जाप जु करियो। सोधि सोधि मत जो उर धरियो।
जोग जाग हम जा लगि गहियो। रामचंद्र सबको फल लहियो।

मालती—(।।।। ऽ।। ऽ।। ।ऽ)

चौकल रचि पुनि भगन द्वै लघु गुरु अंत बनाउ।
होय **मालती** छंद यह बारह बर्न प्रभाउ ॥४०।

उदा०—बिपिन बिलोकि बिलोकत दरी। बिचर बिभोर बिकास न करी।
बन निरखें न रहै सुधि खरी। तुमहि न हौं दरसौं इत हरी।

वंशस्वनित—(।ऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽ।ऽ)

जगन तगन पुनि जगन करि अंत रगन रचि मित्र।
बंसस्वनित सु छंद यह बारह बर्न बिचित्र ॥४१॥

उदा०—अनेकधा पूजन अत्रिजू किये। कृपालु ह्वै श्रीरघुनाथजू हिये।
सुबुद्धि सीता सुखदा गई तहाँ। पतिब्रता देव महर्षि की जहाँ।

प्रमिताक्षरा—(।।ऽ ।ऽ। ।।ऽ ।।)

आदि सगन पुनि जगन रचि सगन दोय दै अंत।
छंद होई **प्रमिताक्षरा** बर्न जु द्वादस संत ॥४२॥

उदा०—हरुवाइ जाइ सिय पाँइ परी। रिषिनारि सूँघि सिरु अंक भरी।
बहु अंगराग सब अंग रयो। अति भाँति भाँति उपदेस दयो।

---

[३८] तब--जब (चंद्रिका १२।५२)। मनि—मन। धारी—कै श्री (वही)। [३९] जप—तप (चंद्रिका ११।२। मन०—उर माँझ जु (वही)। [४२] किये—कर्‌यो (चंद्रिका ११।३)। हिये—धर्‌यो। देव—देवि (वही)। [४२] अंक०- गोद धरी (चंद्रिका ११।६)सब--अंग। अति--अरु (वही)।

स्रग्विणी—(ऽ।ऽ ऽ।ऽ ऽ।ऽ ऽ।ऽ)

रगन चारि को **स्रग्विनी** छंद छबीलो होइ।
'केसवदास' प्रकास बस बरनत कविजन लोइ ॥४३॥

उदा०—राम आगे चले मध्य सीता चली। बंधु पीछे भए सोभ सोभा भली।
देखि देही सबै कोटिधा कै भनो। जीव जीवेंस के बीच माया मनो।

अथ त्रयोदशाक्षर—पंकजवाटिका—(ऽ ।।। ।।। ।।ऽ ।।ऽ)

आदि एक गुरु नगन द्वै अंत सगन द्वै देखि।
छंद सु **पंकजबाटिका** तेरह अक्षर लेखि ॥४४॥

उदा०—राम चलत नृप के जुग लोचन। बारिज मिटे हुअ बारिदमोचन।
पाइनि परि रिषि के सजि मौनहिं। 'केसव' उठि गए भीतर भौनहिं।

तारक—(।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ ऽ)

चारि सगन पुनि एक गुरु **तारक** छंद बनाउ।
सोभन तेरह बरन को 'केसव' ताहि सुनाउ ॥४५॥

उदा०—यह कीरति और नरेसन सोहै। सुनि देव अदेवन के मन मोहै।
हम को बपुरा सुनिजै रिषिराई। सब गाँव छ-सातक की ठकुराई।

कलहंस—(।।ऽ ।ऽ। ।।ऽ ।।ऽ ऽ)

आदि सगन तिहि जगन पुनि सगन दोय गुरु एक।
छंद भलो **कलहंस** यह तेरह बरन बिबेक ॥४६॥

उदा०—तजि राज आज घर तें बन जैयै। कहि कौन भाँति परमान न पैयै।
नृपनाथ आदि अपनो मनु कीजै। भजि आप रूप अपनो पदु लीजै।

अथ चतुर्दशाक्षर—हरिलीला—(ऽ ऽ।ऽ ऽ।ऽ ।।। ।ऽ।)

रगन रगन रचि नगन पुनि जगन अंत लघु आनि।
चौदह अक्षर आदिगुरु **हरिलीला** उर आनि ॥४७॥

उदा०—हा राम हा राम हा जगतनाथ धीर।
लंकाधिनाथेस जानि तुम जो सु बीर।

---

[४३] सोभा–सोभै (चंद्रिका ११।७)। [४४] वारिज०–बारि भरित भए बारिद-रोचन (चंद्रिका २।२७)। [४५] के–को (चंद्रिका ५।२३)। [४७] हा राम०–(वसंततिलका) हा राम हा रमन हा रघुनाथ (चंद्रिका १२।२१)। लंका०–लंकाधिनाथ अस जानहु मोहि। ए०–हा पुत्र लक्ष्मन छुड़ावहु बेगि मोहीं। मार्तंड-बंसजस की सब लाज तोहीं (वही)।

ए देखि कोऊ छुड़ाइयत मोहि बीर।
मातंडबंसेस की सब जु तोहि भीर।

बसंततिलका—(ऽ।। ऽ।। ।ऽ। ।ऽ। ऽऽ)

भगन भगन जगनौ जगन द्वै गुरु अंत निहारि।
बसंततिलक यह जानियहु चौदह बर्न बिचारि ॥४८॥

उदा०—श्रीराम लक्ष्मन अगस्ति सनारि देखे।
स्वाहासमेत निजु पावकरूप लेखे।
अष्टांग बिप्र-अभिबंदन जाइ कीन्हो।
सौख्येन आसिष असेष रिषीस दीन्हो।

मनोरमा—(।।ऽ।।ऽ।।ऽ।ऽ।।)

चारि सगन द्वै अंत लघु चौदह बर्न प्रमान।
मनोरमा यह छंद है 'केसवदास' सुजान ॥४९॥

उदा०—उर में अति कोप सबै गुनघायक। बड़वानल सागर ज्यों दुखदायक।
अब ताकहँ तू फिरिकै किन दाहहि। कबहूँ अवतारन जौ चित चाहहि।

अथ पंचदशाक्षर—मालती—(।।।।।। ऽऽऽ ।ऽऽ ।ऽऽ)

आदि लघु पुनि तीनि गुरु अंत यगन द्वै मित्त।
होइ **मालती** छंद यह पंद्रह बर्न निमित्त ॥५०॥

उदा०—अति तनु धनुरेखा नेक नाँघी न जाकी।
खल खर सरधारा क्यों सहै तीक्ष्न ताकी।
बिड़कन घुन घूरे भक्षि क्यों बाजु जीवै।
सिवसिर ससि श्री कों राहु कैसे सु छीवै।

सुप्रिय (।।।।।।।।।।।।।।ऽ)

चौदह लघु गुरु एक अरु **सुप्रिय** छंद प्रकास।
अक्षर प्रतिपद पंचदस आनहु केसवदास' ॥५१॥

उदा०—बन महँ बिबिध बिकट दुख सुनिजै।
गिरि गहवर मग अतिमति गुनिजै।
कहुँ अहि हरि कहुँ निसिचर रहहीं।
कहुँ दव दहनु दुसह दुख सहहीं।

---

[४८] देखे—देख्यो (चंद्रिका ११।१०)। निजु—सुम। लेखे—लेख्यो। अष्टांग—साष्टांग क्षिप्र। सौख्येन—सानंद (वही)। [५०] तीक्ष्न—तिक्ष (चंद्रिका १३।६२)। घुन—घन (वही)। [५१] अति०—अगमहि (चंद्रिका ६।२५)। रहहीं—चरहीं। सहहीं—सरहीं (वही)।

निशिपालिका—(ऽ।। ।ऽ। ।।ऽ ।।। ऽ।ऽ)

भगन जगन रचि सगन पुनि नगन रगन दै अंत।
छंद कहौं **निसिपालिका** पंद्रह बर्न कहंत ॥५२॥

उदा०—राजतनया तबहि बोल सुनि यों कह्यो। जाउ चलि देवर न जाइ हम पै रह्यो।
हेममृग होइ नहि रैनिचर जानियै। दीनसुर राम किहि भाँति मुख भानियै

चामर—(ऽ।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ)

प्रतिपद गुरु लहु देहु क्रम पंद्रह बर्न बनाउ।
चामर छंद-कबित्त कहि 'केसवराइ' सुनाउ ॥५३॥

उदा०—देखि देखिकै असोक राजपुत्रिका कही।
मौहि आगि देहु देउ अंगि आगि ह्वै रही।
ठौर पाइ पौनपूत डारि मुंदरी दई।
आसपास देखिकै उठाइ हाथ मैं लई।

अथ षोडशाक्षर—नराच (।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ)

'केसव' चामर छंद के एक आदि लघु देउ।
प्रतिपद षोडस बर्नमय करि **नराच** कबि लेउ ॥५४॥

उदा०—अखर्ब गर्ब पर्बताग्र दुख्ख पुख्ख है चढ़ै।
अभूत कोप अग्नि लोह मोह बात तें बढ़ै।
असंत काम बामसंग तूल फूल का नचै।
अकालमेघ ज्ञानदृष्टि-बृष्टि होइ तौ बचै।

मनहरण—(ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ)

अंत एक गुरु दै करो षोडस अक्षर बर्न।
पंच भगन को होत है छंद भलो **मनहर्न** ॥५५॥

उदा०—साधुकथा कहिये जब 'केसवदास' जहाँ।
निग्रह केवल है मन को दिनमान तहाँ।
पावन बास सदा रिषि को सुख कों बरषै।
को बरनै कबि ताहि बिलोकत ही हरषै।

---

[५२] मानियै-आनियो (चंद्रिका १२।१५)। [५३] कही—कह्यो (चंद्रिका १३।६५)। देउ—तैं जु। मुंदरी-मुद्रिका। में—कै (वही)।

ब्रह्मरूपक—(ऽ।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ।)

गुरु लघु क्रमहीं देहु पद षोडस बर्न निहारि।
छंद **ब्रह्मरूपक** करौ 'केसव' बर्न बिचारि ॥५६॥

उदा०—अन्न देइ सीख देइ राखि लेइ प्रान जात।
राज बाप मोल लै करै जु दीह पोषि गात।
दास होइ पुत्र होइ सिष्य होइ कोइ भाइ।
सासना न मानई सु कोटिजन्म नर्क जाइ।

अथ सप्तदशाक्षर—रूपमाला (ऽ।ऽ ।।ऽ ।ऽ। ।ऽ। ऽ।। ऽ।)

आदि देहु र स जगन द्वै भगन गुरू लघु अंत।
प्रगट **रूपमाला** करौ सज्जन लोग चहंत ॥५७॥

उदा०—रामचंद्रचरित्र कों जु सुनै सदा सुख पाइ।
ताहि पुत्र कलत्र संपति देत हैं रघुराइ।
स्नान दान असेष तीरथ पुन्य को फल होइ।
नारि का नर बिप्र क्षत्रिय बैसु सूद्र जु कोइ।

पृथ्वी—(।ऽ। ।।ऽ ।ऽ। ।।ऽ ।ऽऽ ।ऽ)

जगन सगन जगनौ सगन यगन लहू गुरु अंत।
बर्न सप्नदस आदि लहुँ **पृथ्वी** छंद कहंत ॥५८॥

उदा०—अगस्ति रिषिराजजू बचन एक मेरो सुनौ।
प्रसस्त सब भाँति भूतल सुदेस जी में गुनौ।
सनीर तरुखंड मंडित समृद्धि सोभा धरैं।
जहाँ हम निवास कों बिमल पर्नसाला करैं।

अथ अष्टादशाक्षर—चंचरी (ऽ।ऽ ।।ऽ ।ऽ। ।ऽ। ऽ।। ऽ।ऽ)

सगन जगन द्वै भगन पुनि रगन आदि अरु अंत।
अष्टादस अक्षरन को **चंचरी** छंद कहंत ॥५९॥

उदा०—भूलिये नहि ग्राम धामहि बास कुंजर देखिकै।
पुत्र मित्र कलत्र सज्जन बंधु लोक बिसेषिकै।
पाइकै गुन जाति जोबन जोर सुंदरता घनी।
रामभक्तिविहीन दीनहि देह होत न आपनी।

---

[५६] भाइ–माइ (चंद्रिका ६।६६)। सु–तौ (वही)। [५७] सुख०–चित लाइ (चंद्रिका ३६।३८)। हैं–श्री। स्नान–जज्ञ। असेष–अनेक। पुन्य–न्हान (वही)। [५८] कों–की (चंद्रिका ११।१४)।

अथ एकोनविंशाक्षर—करुणा (ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ)

षट भगन रवि अंत गुरु उनइस अक्षर आनि।
प्रतिपद 'केसवदास' यह करुना छंद बखानि ॥६०॥

उदा०—देव अदेव जिते नरदेव सबै गुन मानत हैं।
सेवत हैं दिनही तिनसों कछु पावत जानत हैं।
श्रीरघुनाथ बिना परमानँद जी जनि जानहि रे।
बारहि बार कहै तिन 'केसव' काहि न गानहि रे।

मूल—(।।ऽ ।ऽ। ।ऽ। ।।ऽ ऽ।ऽ ।।ऽ।)

सगन जगन पुनि जगन भनि सगन रगन करि लेखि।
सगन अंत लहु मूल भनि उनइस अक्षर देखि ॥६१॥

उदा०—करि जज्ञ पूरन जानकीपति दान देत असेष।
बहु हीर चीर सनीर मानिक बर्षि बारिद बेष।
सुभ अंगराग तड़ाग बागनि बाजि रथ बहु भाँति।
अति भौन भूषन भूमि भोजन भूरि बासर राति।

अथ विंशाक्षर—गीतिका (।। ऽ।ऽ ।।ऽ ।ऽ। ।ऽ। ऽ।ऽ ऽ।ऽ)

आदि चंचरी छंद के लघु द्वै देहु सुजान।
होइ गीतिका छंद यह अक्षर बीस प्रमान ॥६२॥

उदा०—मुख एक है नत लोल लोचन लोक लोकन कों धरै।
....
तहँ एक मोतिन के बिभूषन एक फूलनि के किये।
जनु देवतागन छीरसागर-छीर कों छीटनि-छिये।

अथ एकविंशाक्षर—धर्म (ऽ।।।। ऽ।।। ऽ।। ऽ।।।ऽ)

चौकल प्रति गुरु चारि पुनि आदि देहु गुरु और।
इकइस अक्षर को करौ धर्म छंद सिरमौर ॥६३॥

उदा०—कीरति अति पावन मति श्रीपति रति तू न गहतु रे।
आवत मग जात जगत दारुन दुख जानु सहतु रे।
काम भरहि दूर करहि भीर धरहि हौ जु कहतु रे।
भेद भरम कोटि करम भूरि जनम को न दहतु रे।

अथ द्वाविंशाक्षर—मदिरा (SII SII SII SII SII SII SII S)

सात भगन करि अंत गुरु बाइस अक्षर छंद।
'केसव' **मदिरा** छंद यह कुसुमस्वेद मकरंद ॥६४॥

उदा०—बाग तड़ाग तरंगिनि तीर तमाल की छाँह बिलोकि भली।
तौ घटिका इक बैठि रहैं सुखु पाइ बिछाइ सु कास थली।
औ मग को श्रम दूरि करैं सिय को सुभ बाकल अंचल कै।
हैं श्रम तेउ हरैं तिनको कहि 'केसव' चारु दृगंचल कै।

अथ त्रयोविंशाक्षर—विजय (भ भ भ भ भ भ भ ग ग)

सात भगन करि दोय गुरु तिनको दीजौ अंत।
तेइस अक्षर को करौ **विजय** छंद बुधिवंत ॥६५॥

उदा०—आसन डासन बासु सुबासु बिलास रँगे अनुराग जिये हैं।
बारिन बाजि गुनी गुन धाम न बाम रहे मन हाथ लिये हैं।
भाँतिन भाँतिन भाजन भोजन भूषन भूरि भए न किये हैं।
रे चित चेत कहा परि पेलहि जानकिनाथहि आनि हिये हैं।

सुधा—(ल भ भ भ भ भ भ भ ग)

मदिरा सिर लघु एक दे **सुधा** छंद मन आनि।
अंत एक लघु देतहीं **बसुधा** छंद बखानि ॥६६॥

उदा०—हरोहर बाइ मनोहर को मनु माँगत है करि आरि घनी।
झुकाउ न 'केसव' कों कहि देउ दुराउ न अंगन में सजनी।
उघारहि घूँघट अँचल डारि उतारिकै कंचुकि तोरि तनी।
न पाइहि तौ फिरि जैहै भटू अरु पाइहि तौ सब बात बनी।

बसुधा—(भ भ भ भ भ भ भ ग ल)

उदा०—जा दिन तें ब्रजनाथ चले तब तें जग जानत झूठहि गेहु।
झूठहि केतिक धर्म सने अरु झूठ यहै बर भावत देहु।
'केसव' पापहि क्यों सरिहै मिलिबे बिन जानिय साँच सनेहु।
बातन के मिस या ब्रज में तुम आयहु ऊधव लेन सु लेहु।

---

(६४) बाग–(दुर्मिल) कहुँ बाग (चंद्रिका ६।४४)। तौ···रहैं–घटिका इक बैठत हैं। सु०–तहाँ कुस। औ···श्रम-मग को श्रम श्रीपति। कै–सों। है······केसव–श्रम नेऊ हरैं तिनको कहि केसव चंचल। कै–सों (वही)।

अथ चतुर्विंशाक्षर—माधवी (ल भ भ भ भ भ भ भ ग ल)

बसुधा के सिर एक लघु होइ **माधवी** छंद ।
'केसव' चौबिस बर्न को प्रतिपद आनंदकंद ॥६७॥

उदा०—सुपूरन प्रेम सुभावनि कौन सुने समुझै न षडानन सेसु ।
प्रबोध बियोग बिसेष असेषनि 'केसव' लै बिसरो उपदेसु ।
धरे सब देस के काम तथापि बिलोकि बिदेहन को गुरु बेसु ।
सुभावहि ऊधव गोपिन पास जु आए सिखावन सीखि चले सु ।

चंद्रकला—(८ सगण = ॥ऽ)

आठ सगन को चरन रचि बर्न चारु चौबीस ।
चंद्रकला 'केसव' करी धरी माल भव सीस ॥६८॥

उदा०—भवसागर को जन सेत उजागर सुंदरता सिगरी बस की ।
तिहु देवन की अति सुंदर सो गति सोध त्रिदोषन के रस की ।
कहि 'केसव' बेदत्रयी मति सी परितापत्रयी तल कों मसकी ।
सब बेद त्रिकाल त्रिलोक त्रिबेनिहि केसव-विक्रम के जस की ।

अमलकमल—(८ भगण = ऽ॥)

आठ भगन को चरन रचि अक्षरमय चौबीस ।
अमलकमल यह छंद है अक्षय 'केसव' ईस ॥६९॥

उदा०—मारहितैं सुकुमार मनोहर मानिनि कामिनि मानसफंदन ।
सोभन सूध सुधानिधि सीतल सूर सदा सब दूर निकंदन ।
'केसवदास' कलानिधि कोमल केलिकला कुहु की जगबंदन ।
ए सक का हिअ साझ करै रजनीकर कै सजनीं नंदनंदन ।

मकरंद—(७ भगण = ऽ॥, १ रगण = ऽ।ऽ)

सात भगन मइ छंद रचि अंत रगन सुखकंद ।
चौबिस अक्षर को सुनौ छंद भलो **मकरंद** ॥७०॥

उदा०—अंक लिये मृगनैननि कों ससि सी उपमा सु तहाँ अवरेखियै ।
पंकज में कमला बिलसै सुखलीन तहाँ जलकेलि बिसेखियै ।
आनँदपूर रसै बरसै सखि ईछन के सम और न लेखियै ।
भास कटाछ अनूप करै सखि तो सम रूपक तोहि में देखियै ।

गंगोदक—(८ रगण = ऽ।ऽ)

आठ रगन को छंद रचि चौबिस जानहु बर्न ।
गंगोदक यह छंद है 'केसव' पातकहर्न ॥७१॥

उदा०—राम राजान के राज आए इहाँ धाम तेरे महाभाग जागे अबै।
देवि मंदोदरी कुंभकर्नादि दै मित्र मंत्री जिते पूछि देखौ सबै।
राखिजै जाति कों भाँति कों काँति कों बंस कों साधिजै लोक पर्लोक कों।
आनिकै पाँ परौ देस लै कोस लै आसुहीं ईस सीता चलै आक्र कों।

तन्वी—(भ त न स भ भ न य)

भगन तगन नगनौ सगन भगन भगन फिरि जानि।
नगन यगन चौबिस बरन **तन्वी** छंद बखानि ॥७२॥

उदा०—बोलत कैसें भृगुपति सुनिजै सो कहिजै तन मन बनि आवै।
आदि बड़े हौ बड़प्पन राखियै जा हित कै जन जग सुख पावै।
चंदन ही मैं अति तन घरषैं आगि उठै यह सब गुन लीजै।
हैहय मारे नृपति सँघारे सो जसु लै किन जुग जुग लीजै।

अथ पंचविंशाक्षर—विजया (ल भ भ भ भ भ भ भ भ ग ल ल)

देहु माधवी के बरन अंत एक लघु आनि।
'केसव' पच्चिस बर्न को **बिजया** छंद बखानि ॥७३॥

उदा०—चढ़ीं प्रतिमंदिर सोभ चढ़ी तरुनी अवलोकन कों रघुनंदनु।
मनो गृहदीपति देह धरैं सु किधौं गृहदेवि कै मोहति है मनु।
किधौं कुलदेवि दिपैं कहि 'केसव' कै पुरदेविन को दरस्यो तनु।
जहीं सु तहीं इति भाँति लसैं दिविदेविन को मद घालति हैं जनु।

मदनमनोहर—(८ सगन ग)।

आठ सगन को एक पद अंत एक गुरु देखि।
मदनमनोहर छंद यह पच्चिस अक्षर लेखि ॥७४॥

उदा०—अँखियान मिली सखियान मिली- पति आवत जाने मिली तजि भौने।
सुभ ध्यान बिधान मिली मनहीं मन ज्यों मिल नैक मनोमय सौने।
कहि 'केसव' कैसेहु बेगि मिलौ नतु ह्वैहय हे हरि जो कछु होने।
तहँ पूरन प्रेमसमाधि मिलैं मिलि जैहैं तुम्हें मिलिहौ फिरि कौने।

माननी—(८ सगन ल)

आठ सगन के अंत लघु लहहु **माननी** छंद।
चारि छंद 'केसव' बरन पंचबीस आनंद ॥७४॥

---

[७१] भाँति०—पाँति कों बंस कों गोत कों (चंद्रिका १६।६)। [७२] कै०—तूँ सब जग जस (चंद्रिका ७।२२)। [७३] चढ़ी—बढ़ी (चंद्रिका २२।८)। कै—बि। कहि—अति। दरस्यो—हुलस्यो (वही)।

उदा०—सँग आए हैं एक रिषीसुर के नरदेवकुमार कि देवकुमार।
सरकोस कसें करिहाँ जु धरें धनुबानु मनोजहुँ के अवतार।
अति दीरघ लोचन बाल बहिक्रम स्यामल बीर सरीर उदार।
इनहीं महँ एकहि देइ सुता नृप ऐसि जौ क्योंहु करै करतार।

अथ षड्विंशाक्षर—हार (ल ज ज ज ज ज ज ज ज ल)

आठ जगन को होत पद आदि अंत लघु जानि।
हार छंद 'केसब' बरन छब्बिस अक्षर ठानि ॥७३॥

उदा०—मुनि सोधि सखी भरि लेत बिलोचन काँपत देखत फूले तमालहि।
अति भूले से डोलत बोलत नाहिन बाग गए किधौं तेरेई तालहि।
मुख देख्यो जौ चाहति देखि न आवति ऐसे में हौं न दिखाऊँ री लालहि।
कहि आजु कहा दिखसाध लगी जब देख्यो सुहाइ कछू न गोपालहि।

बर्नबृत्ति इहि भाँति करि बुधिबल जिय में आनि।
छब्बिस अक्षर तें उपर 'केसव' **दंडक** जानि ॥७७॥

अनंगशेखर

क्रमहीं लघु गुरु देइ पद, बत्तिस अक्षर जानि।
यह **अनंगशेखर** सदा दंडक छंद बखानि ॥७७॥

उदा०—

तड़ाग हीननीर के सनीर होत 'केसोदास' पुंडरीक-झुंड भौंर-मंडलीन मंडही।
तमालबल्लरी समेत सूखि सूखिकै रहे ति बाग फूलि फूलकै समूल सूल खंडही।
चितै चकोरनी चकोर मोर मोरनी समेत हंस हंसनी सुकादि सारिका सबै पढ़ैं।
जहाँ जहाँ बिराम लेत रामजू तहाँ तहाँ अनेक भाँति के अनेक भोग भाग सो बढ़ैं।

इत्यादि षड्विंशादिद्वात्रिंशांतं प्रथमचरणे गणागणं विलोक्य दंडकेति प्रसिद्धः।
इति श्रीकेशवरायविरचितायां छंदमालायां वर्णवृत्तिः समाप्ता।

---

[७८] जहाँ०—जहीं जहीं (चंद्रिका ६।२६)। तहाँ०—तहीं तहीं (वही)।

अथ छंदनामानि

श्री १, नारायण २, रमण ३, तरणिजा ४, मदन ५, माया ६, मालती ७, सोमराजी ८, संकर ९, सुखकर १०, बिज्झुहा ११, मंथान १२, ललिता १३, प्रमाणिका १४, मल्लिका १५, नगस्वरूपिणी १६, मनमोहन १७, बोधक १८, तुरंगम १९, नागस्वरूपिनी २०, तोमर २१, हरिणी २२, अमृतगति २३, तोमर २४ संजुती २५, अनुकूला २६, सुपर्णप्रयात २७, इंद्रवज्रा २८, उपेंद्रवज्रा २९, मौक्तिक दाम ३०, त्रोटक ३१, सुंदरी ३२, मोदक ३३, भुजंगप्रयात ३४, तामरस ३५, द्रुत-विलंबित ३६, कुसुमविचित्रा ३७, चंद्रब्रह्म ३८, मालती ३९, वंशस्वनित ४०, प्रमिताक्षरा ४१, स्रग्विनी ४२, पंकजवाटिका ४३, तारक ४४, कलहंस ४५, हरि-लीला ४६, वसंततिलका ४७, मनोरमा ४८, मालती ४९, सुप्रिया ५०, निशिपालिका ५१, चामर ५२, नराच ५३, मनहरण ५४, ब्रह्मरूपक ५५, रूपमाला ५६, पृथ्वी ५७, चंचरी ५८, करुणा ५९, मूल ६०, गीतिका ६१, धर्म ६२, मदिरा ६३, विजय ६४, सुधा ६५, वसुधा ६६, माधवी ६७, अमलकमल ६८, मकरंद ६९, गंगोदक ७०, तन्वी ७१, जया ७२, मदनमनोहर ७३, माननी ७४, हार ७५, घत्ता ७६, रोला ७७, मरहठा ७८, सोरठा ७९, सिहावलोकन ८०, अनंगशेखर ८१, जमुन ८२, रूपमाला ८३, हलना ८४ ।

२

बिघनगन बिनासै बुद्धिदाता सदा है, सुर नर मुनि बंदै दीह दोषीन दाहै।
बदन रदन एकै एक रूपै बतावै, जगत बिदित माया चित्तजीवै दिखावै ॥१॥
सकल भुजगराजा पिंगलौ एक चंदै, दिसि दिसि सुखभर्ता दुख्खकर्ता निकंदै।
सुभर चरन जाके जुग्म नौका बिचारै, बिसद बिबिध मात्रा बर्न कों पार तारै ॥२॥

(दोहरा)—भाषा सुरतरु की प्रगट साखा तीनि प्रकार।
सुरभाषा भाषा - सरप नरभाषा संसार ॥३॥
सुरभाषा के प्रथम ही बालमींकि बड़भाग।
अहिभाषा के महसु नरभाषा पिंगल नाग ॥४॥
भाषा तीनहु के सुकबि द्वैबिध करत कबित्त।
बर्नबृत्ति है एक औ कलावृत्ति फिर मित्त ॥५॥
बर्नबृत्ति के सम बरन चारौं चरन प्रकास।
कलाबृत्ति के सम बिषम पद करि 'केसवदास' ॥६॥
कनकतुला जो सहत नहि तोलत अधतिल अंग।
श्रवनतुला तें जानियो 'केसव' छंदोभंग ॥७॥
अबुध बुधनि में पढ़तहीं निझुकत लक्षनहीन।
भृकुटी अग्र खरग्ग सिर कट्तु तथापि अदीन ॥८॥
बरनबृत्ति के बरन लिय बिबिध भाँति के छंद।
कल्पबृक्ष कहि कहत अब सुनियहि आनँदकंद ॥९॥
....

गनागनन के दोषजुत गुन षटपद मति बुद्धि ॥१०॥

अथ गाथा

प्रथम चरन बारह कला दूजें दस अरु आठ।
तीजें बारह पंचदस चौथें पढ़ियत पाठ ॥११॥

यथा—रामचंद्रपदपद्मं वृंदारकवृंदाभिवंदनीयम्।
केशवमतिभूतनयालोचनं चंचरीकायते।

सत्ताइस गुरु तीन लहु लक्ष्मी गाथा जानि।
गुरु टूटै जहँ लहु बढ़ै सप्तबीस परमानि ॥१२॥

१ लक्ष्मी, २ सिद्धि, ३ बुद्धि, ४ लज्जा, ५ विद्या, ६ क्षमा, ७ देही, ८ गौरी, ९ धात्री, १० घूर्णा, ११ छाया, १२ कांति, १३ महामाया, १४ कीर्ति, १५ सिद्धा, १६ मनोरमा, १७ रामा, १८ गाहनी, १९ विश्वा, २० वासिता, २१ शोभा, २२ हरिणी, ३२ चित्रा, २४ सारसी, २५ कुररी, २६ सिंही, २७ हंसा।

तेरह लघु लौं बाँभनी क्षत्रिय लघु इकईस।
सत्ताइस लघु बैसिका और सूद्रिका तीस ॥१३॥
जा गाहा के प्रथम कल तीजें जगनहि जानु।
पाँचें सप्तें गुरु रहत ताहि गुर्वनी मानु ॥१४॥

अथ बिग्गाहा

'केसव' करियहि प्रथम पदु मात्रा सत्ताईस।
बिग्गाहा दल दूसरें कला करहु भरि तीस ॥१५॥
यथा—सुनहु सुहागिनि सुंदरी प्रीतम पाय परो तिहि देखि।
कंठ उठाइ लगावहि सज्जन सखी जनम सुफल करि लेखि।
ईहि बिधि सब गाथान के जानहु भेद अपार।
ग्रंथ बढ़ै तेहि तें न मैं बरनी एकहि बार ॥१६॥

अथ दोहा

प्रथम पाद तेरह कला दूजें ग्यारह आनि।
तीजें तेरह जानियै चौथें ग्यारह जानि ॥१७॥
भँवरु भावँरु सरभु स्येन मँडुक मर्कट करम मराल।
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८
मनुष मत्तगजराज पयोहर बल बानर 'रु त्रिकल्ल।
९ १० ११ १२ १३ १४
मीन कच्छप करि देखहु सर्दुल अहिबर और बिडाल।
१५ १६ १७ १८ १९
पुनि बाघहि लेखहु कहि 'केसव' उँदर सर्प अरु ब्याल ॥१८॥
२० २१ २२ २३
..............................दोहान भेद बखानियो।
अब जो गुरु करै लघु बढ़ै सो सो नामहि जानियो ॥१९॥
भ्रमरु होइ लघु चारि को षट लघु भ्रामरु जानि।
सरभु आठ लघु स्येन दस क्रमहीं नाम बखानि ॥२०॥

लघु जिनमें ऐसो यथाक्रम नाम—मंडूक १२, मर्कट १४, करभ १६, मराल १८, मनुष्य २०, गजराज २२, पयोहर २४, बल २६, बानरु २८, त्रिकलु ३० मीन ३२, कच्छप ३४, सादूर्ल ३६, अहिबर ३८, बिडाल ४०, बाघ ४२, ऊँदर ४४, सर्प ४६।

बारह लघु को बिप्र कहि क्षत्रिय बाइस जानि।
बत्तिस लघु को बैस है और सूद्र करि मानि ॥२१॥
जा दोहा के प्रथम पद जगन तीसरें देखि।
जानहु ताहि बिडारिकै मन क्रम बचन बिसेखि ॥२२॥

अथ कबित्त

प्रतिपद 'केसवदास' भनि करि मत्ता चौबीस।
चौपद करहु **कबित्त** जग प्रगट कर्‌यो अहिईस ॥२३॥
यथा—रामचंद्र संग्राम जुरे रावन जग रावन।
बान चलत परिमान दीन दुख ससि दुखदावन।
कटत बृक्ष उचटत पखान गिरि घटत दीह गन।
उठत अगिन सूखत समुद्र जल होत छीन छन।

अथ चतुष्पदी

सात चतुष्कल को चरन अंत एक गुरु जानि।
ऐसे चारौ चरन **चौपैया** छंद बखानि ॥२४॥
यथा—जिनको जसहंसा जगतप्रसंसा मुनिजनमानसरंता।
लोचनअनुरूपनि स्यामसरूपनि अंजनअंजित संता।
कालत्रयदरसी त्रयगुनपरसी होत बिलंबु न लागै।
तिनको गुन कहिहौं सब सुख लहिहौं पाप पुरातन भागै।

अथ घत्ता

सात चतुष्कल आदि दै अंत तीन लघु देखु।
दुहूँ चरन 'केसव' कला जग **घत्ता** अवलेखु ॥२५॥
यथा—मन मति कहँ रोकहु जग अवलोकहु आप रूप जहँ सत्य गुन।
परमानँद पावहि जनम नसावहि राम रूप जहँ होइ बन।

अथ नंद

ग्यारह कला बिराम रचि बहुरि सात पै जानु।
तेरह कला बिराम पुनि छ-पद **नंद** परमानु ॥२६॥
यथा—सरि साधनि के संग, एकहि रंग, काम कामना संगरहि।
होइ सकल संसार, बित्त अपार, राम राम रसिबो करहि।

अथ उल्लास

पंद्रह कला बिराम करि, तेरह बहुरि निहारि।
पुनि पंद्रह तेरह द्विपद, **उल्लालहिं** सु बिचारि ॥२७॥

[२४] त्रयगुन-निर्गुन (चंद्रिका १।२०)। तिनको-तिनके (वही)।

यथा—सुभ छत्र धरैं श्रीरामजू छबि बर्नत 'केसवदास'।
जनु मूरतिवंत सिंगार सिर सुभ कीन्हों सुजस प्रकास।

अथ षट्पद

पहिले चरन कबित्त कहि पुनि उल्लालहि देउ।
'केसवदास' बिचारिज्यो यों षटपद को भेउ॥२८॥

यथा—सिखावान कर कलित जलज अक्षत सिर सोहै।
हरिचरनोदकबृंद कुंददुति अति मन मोहै।
अंग बिभूति बिभूतिसहित गनपति सुखदायक।
बृषवाहन संग्रामसिद्ध 'केसव' जसलायक।
उर चतुर चोर चक्री बसतु संग कुमारह रमापति।
जय जयकारन संकाहरन पारबतीपति सिद्धगति।

चवालीस गुरु कबित्त के उल्लालहि छब्बीस।
एकत्रह दुहूँ छंद गुरु 'केसव' सत्त गिरीस॥२९॥
सत्तर गुरु गनि अजय के बारह लघु उच्चारि।
जो गुरु टूटै लघु बढ़ै सो सो नाम बिचारि॥३०॥

बारह मत्ता अजय बिजय चौदह कल जानहु।
सोरह लघु बलिबंड बीर अट्ठारह मानहु।
बीस कला बेताल होय बाईस बिहंकरु।
....।

हरि अट्ठाइस कला करि ब्रह्म तीस लघु लेखिजै।
करि इंद्र कला बत्तीस चंदन चौंतिस देखिजै॥३१॥

शुभकर्ण ३६, श्वान ३८, सिंह ४०, शार्दूल ४२, कूर्म ४४, कोकिला ४६, खर ४८, कुंजर ५०, मदन ५२, मत्स्य ५४, तालक ५६, शेष ५८, सारंग ६०, पयोहर ६२, कमल ६४, कंद ६६, वारण ६८, शरभ ७०, धाम ७२, जड़ ७४, जंगम ७६, सुरगुर ७८, समर ८०, सारस ८२, करभ ८४, मेरु ८६, मंदर ८८, मलय ९०, सम ९२, सिद्ध ९४, बुद्धि ९६, कलाकर ९८, कमलाकर १००, सुखद १०२, धवल १०४, अरुण १०६, हरित १०८, पीत ११०, दरद्य ११२, रजत ११४, मोह ११६, गरुड़ ११८, शशि १२०, सूर १२२, नवरंग १२४, गण १२६, रतन १२८, हीर १३०, भ्रमर १३२, सेहर १३४, कुसुमकर १३६, विप्र १३८, क्षत्रिय १४०, वैश्य १४२, शूद्र १४४, गुरु १४६, गणेश १४८, सबद १५०, मुनि १५२।

अथ जाति

बत्तिस लघु लौं बिप्र गनि क्षत्रिय चालिस चारि।
बैस्य अट्ठतालीस लौं सेषन सूद्र बिचारि॥३२॥

दोष महा—मत्त अधिक बावरो मत्त घटि पंगु गनिज्जै।
बधिर ति सबदबिरुद्ध अंध अति अज्ञ मनिज्जै।
अलंकार बिनु नगन अर्थ बिनु मृतक कहावै।
बालक गनि पुनिरुक्ति व्यर्थ क्रमहीनहि गावै।
अतिमित्त अमित्त जु पद अपर अर्थबिरोध न आनियौ।
दोषसहित रसरहित सब छप्पय ये न बखानियौ॥३३॥

अथ पद्धटिका

प्रथम चतुष्कल तीन करि एक जगन दै अंत।
इहि बिधि **पद्धटिका** करहु 'केसव' कबि बुधिवंत॥३४॥

यथा—हरिबदन सोभसरसी सुरंग। जनु कमल नयन नासा तरंग।
जनु भृकुटि भृंग सौरभ प्रसंस। सुभ श्रवननि मुक्ताफल सु हंस।
अतिअमल'कमलिनीदल कपोल। तिनपर श्रमजल सीकर अमोल।
सब ब्रजजनमन गति लीन मींन। यों केसवरायहिं भजि प्रबीन।

अथ अरिल्ल

अंत भगन भनि पाय पुनि बारह मत्त बखान।
चौसठ मत्ता पाय चहुँ यों **अरिल्ल** मन मान॥३४॥

यथा—देखि बाग अनुराग उपज्जिय। बोलत कोकिल कल धुनि सज्जिय।
राजति रति की सखिय सुबेपनि। कहत मनहु मनमथसंदेसनि।

अथ पादाकुलिक

बारह मत्ता प्रथम चहूँ दोइ देउ गुरु अंत।
सोरह मत्ता चरन प्रति **पादाकुलिक** कहंत॥३५॥

यथा—बहुवनवारी सोभित भारी। तपमय लेखी ग्रहयिति देखी।
सुभ सर सोभैं मुनिमन लोभे। सरसिज फूले अलि रसभूले।

अथ राजसैन को नवपदी

तीजें पाँचें प्रथम पद पंद्रह मत्त प्रभाउ।
चौथें ग्यारह दूसरे बारह कला बनाउ॥३६॥
आगें दोहा देखि इक नवपद ताकें जान।
राजसैन की एक सौ सोरह मात्त प्रमान॥३७॥

यथा—१ इमि अमल कमल फूले सरनि,
२ सुदिसि विदिसिहि उपबंग।
३ छवि देखि देखि सखि फूलियो,

[३४] कोकिल०—कल ध्वनि कोकिल (चंद्रिका १।३०)।

४ भँवर मनोहर संग।
५ हम भौरनि ज्यों किमि भूलियो,
६ साधि केलि कुल राधिके,
७ सौतिन के उर दाह।
८ पाए पूरब पुन्य तें,
९ सुखदायक हरि नाह।

अथ पद्मावती

मत्त अठारह बिरम करि पुनि चौदह परमानं।
प्रतिपद केवल बत्तिसै **पदमावती** बखान ॥३८॥

यथा—रघुनंदन आए सुनि सब धाए पुरजन जैसे कहु तैसे।
दरसनरस भूले तन मन फूले बहु बरने जाहिं न वैसे।
पिय के सँग नारी सब सुखकारी तिन यों रामहि दृग जोरी।
जहँ तहँ चहुँ ओरनि मिली चकोरनि ज्यों चाहत चंद चकोरी।

अथ सोरठा

उलटो दोहा पढ़तहीं तहीं **सोरठा** होइ।
'केसवदास' प्रकासहीं समुझत हैं सब कोइ ॥३९॥

यथा—जग जसवंत बिसाल, राजा दसरथ की पुरी।
चंद्र सहित सुभ काल, भालथली जनु ईस की।

अथ कुंडलिया

कीजै दोहा प्रथम पद पुनि अघ कबित बखान।
अंत सोरठा सोहिये **कुंडलिया** परमान।
कुंडलिया परमान मगन चौथें फ़िरि पढ़िये।
ग्यारह मत्ता अंत तहाँ तैसी बिधि बढ़िये।
हरिगुन गनहु अनंत संत पदवी पदु दीजै।
'केसवदास' प्रकास आदिपद अंतहि कीजै ॥४०॥

यथा—देही अबिनासी सदा देह बिनास बिचारु।
....घटत बढ़त नहि बारु।
घटत बढ़त नहि बारु चारुमति बूझि देखि अब।
बेद पुरान अनंत साधु भगवंत सिद्धि सब।

---

[३८] वैसे-जैसे (चंद्रिका २२।११)। पिय-पति (वही०)। [३९] सुभ-सब (चंद्रिका १।४६)।

बेद पुरान अनंत कहत आपुनपौ नेही।
यों छाड़त जग संत देह ज्यों छाड़त देही।

अथ चूड़ामणि

दोहा के दुहुँ पदन दै पंच पंच कल देख।
सब **चूड़ामनि** छंद के मत्त अठावन लेख ॥४१॥

यथा—राधा बाधा मीन के बेधहु जिनि तू रूप तपोधनु।
जगजीवन की जीविका ब्रजजन लेखन पृष्ठ देवगनु।

अथ हाकलिका (सोरठा)

करै सुकबि नृप जानि, मगन तीनि दै अंत गुरु।
हाकलिका परमानि, प्रतिपद चौदह मत्त सब ॥४२॥

यथा—आवत श्री ब्रजराज बने। केवल तेरेहि रूप सने।
तूं तिनसों हँसि बात कहै। सौतिन को गन दुख्ख दहै।

अथ मधुभार (दोहा)

चारि मत्त के दोइ गन छंद गनौ **मधुभार**।
चौहूँ पद बत्तीस कल छंदहु कोटि बिचार ॥४३॥

यथा—ऊँचे अवास। प्रतिधुज प्रकास। सोभा बिलास। सोभै अकास।

अथ आभीर

ग्यारह मत्ता को चरन जगनहि अंत निहारि।
कला जानि **आभीर** की चहुँ पद चारहिं चारि ॥४४॥

यथा—सुंदर दूलह राम। देह धरें जनु काम।
धनुष चढ़ावहिं ईस। सब मिलि देहिं असीस।

अथ हरिगीत

मध्य कला करि बीस रुचि देहु रगन इक अंत।
द्वै लघु आदि बनाइ **हरिगीतहिं** गावत संत ॥४५॥

यथा—कुस मुद्रिका समिधै श्रवा कुस के कमंडल कों लिये।
कटिमूल सुबरन तरकसी भृगुलता सी समुझै हिये।
धनुबान तिच्छ कुठार 'केसव' मेखला मृगचर्म स्यों।
रघुबीर को यह देखियै रसबीर सात्विक धर्म स्यों।

---

[४५] समुझै-दरसै (चंद्रिका ७।१५)।

अथ त्रिभंगी

बिरमहु दस पर आठ पर बसु पर पुनि रस रेख।
करहु **त्रिभंगी** छंद कहँ जगनहीन इहि बेष ॥४६॥

यथा—बाजे बहु बाजत तारिन साजत सुनि सुर लाजत दुख भारी।
नाचत नव नारी सुमनसिंगारी गति मनहारी सुखकारी।
बीनानि बजावैं गीतनि गावैं मुनिन रिझावैं मन भीजै।
भूषन पट दीजै सब रस भीजै देखत जीजै हँसि लीजै।

अथ हीर

एक गुरुहि तर चारि लघु तीनि ठौर मति धीर।
अंत रगन तेईस कल होइ एक पद **हीर** ॥४७॥

यथा—सुंदरी सब सुंदर प्रति मंदिर पर यों बनी।
मोहन गिरि स्रृंगनि पर मानहु मनमोहनी।
भूषन नग भूषित तन भूरि चितनि चोरहीं।
देखत तनु रेखति जनु बान-नयन-कोरहीं।

अथ मदनमनोहर

मदनमनोहर छंद की कला एक सौ साठ।
प्रतिपद अक्षर तीस को तब पढ़ियत है पाठ ॥४८॥

यथा—यह मदनमनोहर आवत ता घर उठि आगें कै लै सजनी सुखदै रजनी।
सुनि राधाकरनी हरि अभिमानी जानी समान सब लायक अरु बहुनायक।
सुख साधन साधहि मौन समाधहि पतिहि अराधहि रामथली सब भाँति भली।
पिय के संग बसिकै रसिरस रसिकै गोपसुता गुनग्रामयुता.............।

अथ मरहठा

दस पर बिरमहु आठ पुनि ग्यारह कला बखान।
गुरु लहु दीजै अंत यह **मरहट्ठा** परमान ॥४९।

यथा—पुरजन सुख पावत रघुपति आवत करत तिदौरा दौरि।
आरती उतारैं सर्बसु वारैं अपनी अपनी पौरि।
पढ़ि मंत्र असेषनि करि अभिषेकनि पै आसिष सबिसेष।
कुंकुम कर्पूरनि मृगमय चूरनि बरषत वर्षा बेष।

इति श्रीसमस्तपंडितमंडलीमंडितकेशवदासविरचिता छंदमाला समाप्ता।

---

[४७] पर–पुर (चंद्रिका ८।८)। तनु–जनु। जनु–तनु (वही)। [४९] पुरजन०–आनंद प्रकासी सब पुरवासी (चंद्रिका ८।१६)।

शिखनख

गीर्वाणवाणीषु विशेषबुद्धिस्तथापि भाषारसलोलुपोऽहम् ।
यथा सुराणाममृतेषु सत्सु स्वर्गाङ्गनानामधरासवे रुचिः ॥

अथ केश-वर्णन——(कवित्त)

जोबन-सरोवर के कोमल सिवारमूल मखतूल कामतंतु-तूल के से तार हैं ।
पंचसर-सिंधुर के स्याम चौंर किधौं भौंर किधौं सिर सहज सिंगाररस-सार हैं ।
माथे मार-मरकतमनि के मयूख किधौं किधौं घेरे चंद कों तिमिर-परिवार हैं ।
लामे लामे जामे जोतिलता के बितान किधौं किधौं स्यामबरन छबीले छूटे बार हैं ॥१॥

अथ माँग-वर्णन

किधौं तरुनी की तरुनाई ही के तोलिबो कौं अति ही अनूपरूप तुला की सी डाँडी है ।
सरिता सुधा की मुखसुधाकर-मंडल तें ऊरध कों उठी मिली धाराधर चाँडी है ।
ऊवत अकेली पाइ कचतमतोम किधौं दिनकरकिरनि नवीन बाँधि छाँड़ी है ।
सीस पर सखी की सँवारी माँग सोभियत किधौं दुहूँ पाटिन की मेड़रेख माँडी है ॥२

अथ पाटी-वर्णन

चंद के ऊपर-भाग किधौं उठी घनघटा किधौं स्यामघन-मन घेरिवे की घाटी है ।
लीलामृग-नैन तिनपर बाँधी सोधि मैन मरकतमनि के मयूखनि की टाटी है ।
तकिया सों ठिकि बैठी पीठि की चपेट परें किधौं वेनी पन्नग की फन परिपाटी है ।
ओंछिओंछि करतल पोंछिपोंछि घोटिघोटि पाटी किधौं कामविद्या पढ़िबे की पाटीहै३

अथ वेणी-वर्णन

सीस तें सरस ह्वै कै पीठ की पनारी छ्वै किधौं धँसी धार रस सिंगार रसाल की ।
निसापति-अंक तें किधौं निसा रिसाइ चली छाँह कै छबीली मुखनलिन के नाल की ।

---

(१) तंतु-तन (सुधा०) । मखतूल--फूलसूल (वाल०) । मार--मनि (वही) । मनि के--मन के (वही) । घेरे--घेरे (सुधा०) । किधौं स्याम०--लीले लेत मन कों (वाल०)। (२) सरिता--तारिनि (अमय०) । (३) तिन--जिन (बाल०) । ठिकि--तकि (वही)। चपेट०--वधेट पर (वही) । पन्नग--फनिग (वही) । परि०- पर फाटी (वही) । घोटि--घोटी पारी (वही) ।

तम की तरंगिनी कि चढ़ी तरुनी के तन किधौं अवलंबी बेलि अतनु-तमाल की।
काम के बिलासनि की बिजैमाला किधौं किधौं नागरूप काछे आछी बेनी सोहै बाल की ४

अथ भाल-वर्णन

बार अंधकार सम सीसफूल तारागन पाटी-नभ नीचे अर्धचंद को सो घाटु है।
बंदन को बिंदु अरुनोदय को प्राचीभागु तिलक तखतभाग को सुहाग-पाटु है।
रूप के रतन जड़्यो हाटक के पाट पर घूँघट में प्रगट अखिल अंगराटु है।
केलि के समय प्रिय प्रतिबिंब को बैठकु 'केसोदास' भामिनी को सोभित ललाटु है ॥५।

अथ भृकुटी-वर्णन

किधौं नैन-दीपकनि ऊपर काजर-लीक किधौं महराब मुखसुधाकर-धाम की।
किधौं जुग कुंभरेख लिखी है आँखिन पर किधौं दलदुति नासावंस अभिराम की।
किधौं पाटी भौंरन की झाईं झिलमिलै स्याम किधौं भयभूमि बंक भाइनि सुभाम की।
रोष ही चढ़ति उतरति नेक ही के भाइ भामिनी की भृकुटी किधौं कमान काम की ॥६

अथ नेत्र-वर्णन

बंधु-बिधु-कोरा में चकोर को सो जोरा बैठ्यो किधौं मैन मृगबाल हित कै बढ़ाए हैं।
किधौं मीनकेत के जुगल मीन जंग जुरे किधौं खंजरीट एक पिंजर पढ़ाए हैं।
मिलत जिवाइबे कौं बिछुरत मारिबे कौं बान कै पियूष बिष बोरिकै कढ़ाए हैं।
किधौं बिधु पूरन मयंकमुख पूजा करी अलिन सहित किधौं नलिन चढ़ाए हैं ॥७

अथ तारे-वर्णन

पलक-संपुट मधि सालिग्राम-सिला एक कमलदलनि पर भौंरनि के बारे हैं।
किधौं मरकतमनि मुकतनि पर खँचे किधौं रतिनायक के सायक बिसारे हैं।
मृगमद-बिंद के लसत प्रतिबिंब किधौं दीपक-दृगनि पर काजर के पारे हैं।
पियमन तारिबे कौं अवतारे कारे भारे बरुनी-किवारि माँझ तरुनी के तारे हैं ॥८॥

---

[४] छ्वैकै—पूरि (बाल०)। चढ़ी—घटी (वही)। आछी०—पाछै आली वेनी बाल की (अभय०)। [५] भागु—भामु (बाल०)। जड़्यो—जटे (अभय) । पिय०—प्रतिबिंब को मुकुर अति (बाल०)। 'केसोदास' ०—सुंदर सुहागिन को लसत (अभय०)। [६] दीपकनि०—दीप काली काजर की लीक किधौं (बाल०)। जुग—गज (अभय०)। झौंरन—डोरन (बाल ०); औरनि (अभय०)। भय०—भूमि वंक माइ सुंदरी (बाल०)। [७] मैन०-मैन साथ मृगबाल द्वै (अभय० (; मृग मीनबाल हित कै (सुधा०)। मीनकेत—कामराज (वही)। किधौं खंजरीट०— खंजरीट राखि मानौ पींजर (वही)। बान०—बानिक। (बाल०, सुधा०)। बोरि—घोरि (बाल०)। कढ़ाए—गढ़ाए (वही)। सहित—समेत (अभय०)। किधौं—नैन (अभय०); मानौ (सुधा०)। [८] पलक०—फटिक के संपुट में (सुधा०)। मधि—सोई (अभय०)। सम—सोई (सुधा०)। भौंरनि०—

अथ श्रवण-वर्णन

किधौं उर आइबे कौं पिय के सुभग मग किधौं साखीभूत दूत गुनगीत नाम के।
साजन की कीरति के सहज भाजन किधौं तार्टक झाँपे केलिकिंसुक कै काम के।
किधौं केलिकलह निमित्त बिवि पीढ़े मित्त सुखदै सुनैया चित्तचरित ललाम के।
किधौं रसबातिन कौं रसायन राखे भरि सोने की सुकति किधौं श्रवन सुबाम के ॥९

अथ नासा-वर्णन

लोचन-सरोजनि के नालटूक एक बेह बिरचे उभय वेह सों सँवारि सूल की।
भौंह के जराय जरी नावक सी नीकी लागै मार-राजकुमार के तूनीर के तूल की।
बाम के दछिन बाम अंगन की मधिबेला मुख को मंडल मीन लाजबेली मूल की।
नासिका सुवास की प्रकासिका प्रकासमान डारौं वारि तापर तिरष तिलफूल की ॥१०

अथ कपोल-वर्णन

ढारि के सुढारि लीने मेदुर बँधूकफूल किधौं अति नवरस माधुरी के वाढ़े हैं।
किधौं दरदले मुख कनककमल-दल कुंकुमरंजित लाल गोरताई गाढ़े हैं।
किधौं दोऊ कंदर्प के दर्पनमंडल माँजे देखियत तिन माँझ प्रतिबिंब ठाढ़े हैं।
किधौं कमनीय गोल कामिनी-कपोलतल किधौं कलधौत के तबक ताइ काढ़े हैं ॥११

अथ अधर-वर्णन

प्रीति की अमरबेलि ताके किसलय कितौं किधौं हेत पुरवत सुरनि के साके हैं।
दाभ ही के बीरे हैं कि विद्रुम उकीरे हैं कि किधौं बरबंधु बर बंधुकप्रभा के हैं।
लाल लाल ओप सब अंगनि ऊपर लसै दंत दार्‌या-बीजन के रूप जिहि ढाके हैं।
सौति के सुरत सुखभूतनि भुलाइबे कौं अधर अरुन किधौं बिंब रसपाके हैं ॥१२॥

अथ दंत-वर्णन

विद्रुम के संपुट में किधौं मोतीलर किधौं कंजकोस बीच बीज दारचौं से लसत हैं।
बीजुरी सी दमकति किधौं चूनी चमकति जोति के जराउ मधि हीरा से हसत हैं।

मौंर से निहारे (अभय०, सुधा०)। सुकतिन०--मुक्ति सुकतिन पर (अभय०) । मुकुत मुकुत पर (सुधा०)। के--ने (वही)। दीपक--दीपत (वही)। पारे-बारे (वही)। कारे--तारे--(वही) किवारि--कीवरी (अभय०)। माँझ--मानो (सुधा०)। [९] दूत--पूत (अभय०)। के०--सहज सुभाजन (बाल०)। चरित--तरुन (वही)। किधौं रस०--रहस-बातनि के (अभय०) । [११] बँधूक--मधूक (अभय०)। अति०--अमित सुरस (बाल०)। कंदर्प--मदन (वही)। तल--लोल (वही) । [१२] किधौं हेत--दयित के (अभय०)। बीरे--चीरे (बाल०)। हैं कि--किधौं (बाल०)। ओप--आप (बाल०)। भूतनि०-भूलत चाखत रस (अभय०)। अरुन-सधर (वही)।

भोर-कुंदकोरक कि तारिका-किसोरक कि तारापति बिंब में विलास विलसत हैं।
सुदती के दंत किधौं किधौं बर मेरे जान बत्तिस बदन माँझ अक्षत बसत हैं ॥१३॥

अथ चिबुक-वर्णन

किधौं यह प्रभा के प्रबाह की भाँवरी परी उपमा सुरंग किधौं नारँग अनूप की।
कंदर्प के दर्पन अमोल की कि मूल गाँठि किधौं सीवाँ सोभित मनोज-जयजूप की।
अध अरु ऊरध की सोभा की अवधि किधौं बिधि बानीमुख मधि बेदी सोहै रूप की।
किधौं चंदबदनी को चिबुक बिराजमान किधौं चारु चावरी बदन-चंदभूप की ॥१४॥

अथ मुख-वर्णन

जीत्यो न जुनति-गुख मंद न सूरजतेज अमरसमूह याको करत न पानु है।
चारहू दिसा तें उए राहु न रोकत राह कलँकरहित सुद्ध सुख को निवानु है।
छ-दस कला को कुहू कौमुदीबिलास लसै पून्यौ सो पूरन निसि दिवस समानु है।
चारु चंदबदनी को बदन बिचारु किधौं बैठ्यो हेमखंभ पर हिमकरु आनु है ॥१५॥

अथ ग्रीवा-वर्णन

पंचबान किंनर को किधौं बर बीनदंड सुललित सातौ सुर ताको अंतरालु है।
किधौं पियभुजबेलि-अवलंबु किधौं कंबु अंबुनिधि नातें याकों मिल्यो मुत्तिजालु है।
लाजत कपोत देखें राजत त्रिबलिरेखैं मारमल्ल खंतुखाँडु रंग को रसालु है।
कुंदन को भाथो सो कुँवरि राधिका को कंठ किधौं साँचे ढारयो मुखपंकज को नालु है

अथ भुजमूल-वर्णन

कंचन के कलस कि जोबन-भवन तन किधौं एक सूल कूल हारावलि-गंग के।
मानगढ़ गुरजैं बिराजमान दोऊ किधौं चवगान-गाँस किधौं भूपति अनंग के।
सबै बर अंगनि के मंडलीक मेरे जान किधौं सेल-सामुहे सुरत-रसरंग के।
जोबन सुढार भार भामिनी के भुजमूल बाढ़े हैं कुसुमसर साहिब के संग के ॥१७॥

---

[१३] के संपुट०--दुबीच किधौं मोती की दुबर लर (अभय०)। कंज०--किधौं कंजकोस बीज (वही) । से--के (वही)। बीजुरी०--किधौं मन्यै (वही)। सुदती सुंदरी (बाल०)। अक्षत--लछन (अभय०) । [१४] नारंग--इंगति (बाल०) । कंदर्प०--मदन के मुकुरक आगोल की कि मूल (वही)। सीवाँ- गाँठि (वही)। बिधि०--किधौं बिधि बानी मुख मधि बेदी वेदी रूप की (अभय०)। सुद्ध--सब (बाल०)। खंभ--वल्ली (अभय)। [१६] ताको- याको (अभय०)। किधौं पिय०--अंबुनिधि नाते चंद्रमा सों मिल्यो आनि पाँति पाँति ग्रीवा मधि बन्यो मोतीमालु है (बाल०)। भाथो--थाँम (वही)। कुँवरि-कुँवरि कामकामिनी को (अभय०)। किधौं०--कंठ किधौं किधौं मुख (वही)। [१७] गाँस--गोइ (बाल०)। जोबन--सोबन (अभय०)।

अथ भुज-वर्णन

इकसरे चंपे के चौसर किधौं एक खंभ बाँधे नवकामरस-उक से हैं नेम के।
किधौं बिपरीत नाल उए करकंजन तें किधौं आदिकोरक सुरत-बेलि खेम के।
केलि-अवसान उपधान होत सेज पर सहज बिराजत मृनाल किधौं हेम के।
चलत हलत पलपल पुलकत अलि किधौं पियकंठ के सुदृढ़ पास प्रेम के॥१८॥

अथ अंगुली-वर्णन

अंगुल सदल दल बसन तल मिलित मयूख नखमनि को प्रकासु है।
लेखनी बिरंचि रची निकाई की लिखिबे कौं देखियै सुरेखा सी सोभा को सुबासु है।
मानिनी-आनन पर किरन-मयंक ढरि नीचेई रहत जंघ-कदली के पासु है।
किधौं कर जमल कि काम के कमल दोऊ किधौं ये सहज कामदेव के खवासु है॥१९॥

अथ कुच-वर्णन

किधौं मत्त-मनोभव-इभ-कुंभ देखियत अंचल ते ऊपजे सुभाव ही के ढाल के।
किधौं चक्रवाक जुग किधौं एकताल गिरि किधौं पकबेलफल किधौं फल ताल के।
द्वै स्वयंभु संभु किधौं रहे अंग अंग मिलि मंगल-कलस किधौं काम-नरपाल के।
रोमावली एकनाल कमलकोरक जुग किधौं उच्च ओरनि कठोर कुच बाल के॥२०॥

अथ कुचाग्र-वर्णन

तरनि के प्रतिबिंब किधौं देखियत किधौं कमलकलीन पर भँवर सुसीले हैं।
पीय-परिरंभन के प्रथम मिलन किधौं हेमकलसनि पर खँचे मनि नीले हैं।
किधौं रतिपति स्याम उभै संभुसीस पर किधौं पति-पानिन के परस सलीले हैं।
किधौं काम जीति जग उलटि नगारे पूजे अतसी-पुहुप किधौं चूचक छबीले हैं॥२१॥

अथ कुचांत-वर्णन

मोती-जोन्ह-जोति मिली एक होत मंडन सो भूषन-प्रभा सुभासि कंठ के निकट की।
बंकट अटक किधौं मन के निवास कौं कि बिरचि सँवारी रंगभूमि काम-नट की।

---

[१८] चंपे०--सों सुरस किधौं खंभ बाँधे (बाल०)। बाँधे०--नवरस कामरस (वही)। ऊक०--ऊक के (अभय०)। कीरक--कारन (वही)। बेल-खेल (वही)। सहज०--चलत हलत किधौं दोलादंड (वही)। चलत०--वेलि यों बलित सु ललित भुज भामिनी के (वही)। [१९) दल-अरु (बाल०)। लिखी- ताकि (वही)। [२०] अंचल--अचल (अभय०)। ऊपजे०--उपजत सुभाउ ही ढाल (वही)। पक०-प्रीति-वेलि फली (बाल०)। फल--पल (अभय०)। अंग०--अँन अंग (बाल०)। ओरनि०--डोरनि कटोरे (वही)। [२१) भँवर०--भौंर सिसु लीले (बाल०)। खँचे--धरे (अभय०)। रतिपति--रतिपिय (वही)। पानिन०--पान के सुपरसन लीले (बाल०)।

यहै जानि कोमल सुकंचुकी लपेटिजति पंचबान लगे प्रियग्रीवा रहे लटकी।
ऊँची नीची छाती कि उरोजन के आसपास सोने की सी सीमा कि सुमेरुगिरितट की

अथ रोमराजि-वर्णन

किधौं अलिमाल उड़ी नाभि नीके नीरज तें किधौं चित्ररेख एक रेख की सिंगार की
गोरे थोरे तन किधौं बेनी की परति झाइँ किधौं सुललित सिरी मत्तगज-मार की।
किधौं नीबी मरकतमनि की मयूख मिली कटि के सुहाइ कौं किधौं सलाका सार की।
कुच चक्रवाकनि के नीचे रोमावली किधौं गिरि-पारि मानौ मंजु मंजरी सिवार की ॥२३

अथ उदर-वर्णन

पान ऐसो पेखियत जलजात देखियत बास ही अघान महँ साँस ही डगतु है।
चंपे के कोमल दल एक ही सों दबि रहे काम की यों छीन तनु त्रिबली बगतु है।
तिनु अनुधामु काम किधौं तपसिद्धि स्याम हेमकंजकूल सूल कहतु जगतु है।
कबिबर बरनत उदर परमलघु है कि नाहीं मेरे जान भ्रमु सो लगतु है ॥२४॥

अथ नाभि-वर्णन

किधौं कूप किधौं रूपनदी माँझ भौंर उठ्यो कै अमी अनंग को गभीर नद भर्‌यो है।
आदिबेदपाठक बिरंचि किधौं रचि पचि केलिकृत-काजैं ओड़ो कुंडु खोदि धर्‌यो है।
किधौं भयभीत भवनैननि अदृष्ट ठौर मानि कामदेव आनि निम्नधाम कर्‌यो है।
बहुत बिचारत हौं बरन्यो न जात तऊ बूड़ि गयो चित्त नाभिचक्र माँझ पर्‌यो है ॥२५।

अथ त्रिबली-वर्णन

किधौं नवजोबन-तरंगिनि-तरंग उठै समर सँवारे किधौं सोपान बिसेष है।
किधौं करतार कर अंगुली की लीक लघु, उच्च कुच-गढ़ तर किधौं खाईं भेष है।
किधौं कामरथ-नेमि, उदित उदर माँझ देखियत कोऊ अरु कोऊ कौं अदेख है।
तरुनी तरुन तनु तुल्य कों न त्रिभुवन त्रिबली न होइ तीन्यौ निकाई की रेख है ॥२६

---

[२२] मोती०--पोति मोतिजोनि (अभय)। सुभासि--सभा कि (वही) बंकट०--टाँक टकटक (बाल०)। यहै०--यहै जिय जानिकै मिले (वही)। [२३] नीके--नव (अभय०)। सिंगार--मगार (वही) । मत्त०--मन गजराज (बाल०)। सलाका--सरागें (अभय०)। मंजु--मख (वही)। [२४] पान--पात (बाल०)। [२५] कूप०--बरकूप (बाल०)। उठ्यो--घोर (वही)। अमी--आनि (वही)। नैननि--नैनहू (अभय)। मानि०--मानौ कामदेव जू ने भुवि (बाल०)। बहुत०--भाँति भाँति बिचारत बरन्यो बरन्यो न जात (अभय०)।

अथ श्रोणी-वर्णन

अंगनि में महागुरु जोबन-गरब-गाँठि कुच गिरि रहे किधौं हेतु मंद चाल की।
कामरथ चक्र की आकृति यामें पाइयत केलि कौं बैठकि पिय रसिक रसाल की।
बिपरीतिमंडित जघन-खंभ नीवँ किधौं लाह की गिरद गादी मैन महिपाल की।
अंमृत सों सानी किधौं सोने की सरस पींडि सोभियत सुंदर सुबर्न श्रोनी बाल की ॥२७

अथ चरण-नख-वर्णन

कंज के दलनि पर हिमकर-बिंदु किधौं किधौं अरबिंद इंदु कामतेज भाम के।
किधौं गति रानी के तखत लसैं बैठकैं ये किधौं दीपमाल सोभियत गतिधाम के।
किधौं रतिराज पंच पंच परिपंच जोरि सेवत सुभाइ यान कमला ललाम के।
किधौं कामसायक के जोति वंत मानियत फल किधौं मेरे जान सुनख सुबाम के २८

इति श्रीकेशवपंडितविरचितशिखनखवर्णनं समाप्तम्।

---

[२७] रहे०—हेतु कोऊ (अभय०)। चक्र०--चक्रिका अजीत (बाल०)। सुबर्न--सोवन (अभय०)। [२८] 'बाल०' में नहीं है। 'अभय' में इसके अनंतर सारी, समस्त भूषण और अंगवास वर्णन के वे ही छंद हैं जो 'कविप्रिया' के चौदहवे प्रभाव में क्रमश: ८५, ८६, ८४ हैं। इसके अनंतर उसी प्रभाव का ६३ छंद है। बाल०' के अंत में 'कविप्रिया' के उक्त प्रभाव का छन्द ६४ है।